प्रथम संस्करण का प्राक्कथन

आज प्रस्तुत पुस्तक को छोटी-छोटी कक्षाओं में हिन्दी पढने वाले विद्यार्थियों के समक्ष रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष है। वैसे तो यह पुस्तक विशेषतः हाईस्कूल परीक्षा मे सम्मिलित होनेवाले विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है, पर विशेष-योग्यता, प्रथमा, मध्यमा, आदि परीक्षाओं के विद्यार्थी भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। इसमें कुछ निबन्ध ऐसे भी रक्खे गए हैं जिनका उपयोग इण्टरमीडिएट के विद्यार्थी भी कर सकते है। इस प्रकार पुस्तक का क्षेत्र विस्तृत बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक मे निबन्धों के अतिरिक्त पत्रो का भी समावेश है। परिशिष्ट में पत्र-लेखन पर एक छोटा सा लेख लिखकर प्रधान-प्रधान पत्रों के नमूने दिए गए हैं।

भूमिका में निबन्ध-रचना के कुछ स्थूल नियमों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। आशा है विद्यार्थी-गण उन पर विशेष ध्यान देकर निबन्ध लिखने में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक में प्रत्येक निबन्ध के साथ रूप-रेखा (संकेत या ढाँचा) दी गई है। विद्यार्थियो को चाहिए कि वे किसी निबन्ध को पढ़ने के पश्चात् उसकी रूप-रेखा की सहायता से स्वयं निबन्ध लिखें, उसे रटने की चेष्टा न करें। ऐसा करने से उन्हें अधिक लाभ होगा। पुस्तक मे कुछ विस्तृत रूप-रेखाएँ इसलिए दे दी गई हैं कि विद्यार्थी उनको आधार बनाकर निबन्ध-रचना का अभ्यास करें।

इस बात का मुझे सदैव ध्यान रखना पड़ा है कि कहीं यह पुस्तक उन विद्यार्थियों की समझ के बाहर की वस्तु न हो जाय जिनके लिए यह लिखी गई है। अतः निबन्धों का विस्तार कम रक्खा गया है, विषय-प्रतिपादन सुबोध शैली में किया गया है और भाषा सरल एवं चलती हुई प्रयोग की गई है। वैसे भाषा की क्लिष्टता को मैं रचना का दोष समझता हूँ गुण नहीं।

निबन्ध-रचना का यह मेरा प्रथम एवं लघु प्रयत्न है। इस प्रयत्न मे मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय पाठक-वृन्द ही कर सकेंगे। यदि इसमे हिन्दी के विद्यार्थियों का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

अन्त में मै उन समस्त लेखको तथा कवियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता जिनकी रचनाओं से मैंने प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में किसी-न-किसी प्रकार की सहायता ली है।

नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा
गङ्गा दशहरा, संवत् १९९५ वि०

शिवप्रसाद अग्रवाल

तृतीय संस्करण का प्राक्कथन

'निबन्ध-निकुञ्ज' का यह तृतीय संस्करण पाठकों के सम्मुख रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष है। दो वर्ष के अल्प काल में इस पुस्तक का तृतीय संस्करण हो जाना इसकी सर्व-प्रियता और उत्कृष्टता का पर्याप्त प्रमाण है।

इस संस्करण में निबन्धों में यथास्थान परिवर्तन एवं संशोधन किया गया है। साथ में कुछ आवश्यक निबन्ध और जोड़ दिए गए हैं। परिशिष्ट की भी आकार-वृद्धि की गई है। उसमें कुछ नवीन प्रकार के पत्रों का समावेश और कर दिया गया है। आशा है प्रस्तुत रूप में यह पुस्तक पाठकों को अधिक रुचेगी।

अन्त में मैं उन समस्त सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता जिन्होंने मेरी इस पुस्तक को अपनाकर मुझे मातृभाषा की सेवा के लिए प्रोत्साहित किया है।

आगरा,
२४ जुलाई, १९४० ई०

शिवप्रसाद अग्रवाल

भूमिका

निबन्ध—लेखन

निबन्ध वह गद्य-रचना है जिसमें किसी विषय पर आकर्षक और सरस शैली मे किसी लेखक के क्रमबद्ध विचार प्रकट किए गए हों। निबन्ध में कोई लेखक कुछ विचार प्रकट करता है और कोई कुछ। अतः एक ही विषय पर लिखे हुए कई निबन्धों मे पर्याप्त अन्तर देखा जाता है। विस्तार के सम्बन्ध मे भी यही बात है। किसी लेखक का निबन्ध लम्बा होता है और किसी का छोटा। कहना न होगा कि छोटा निबन्ध बड़े की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है क्योकि बड़े निबन्ध मे सुन्दरता की रक्षा नही हो सकती। निबन्ध के प्रधान अङ्ग दो हैं—(१) विचार समूह या सामग्री (Matter) और (२) शैली (Style)।

यद्यपि निबन्ध-लेखन की सफलता बहुत कुछ सुन्दर शैली पर निर्भर है तथापि हमें सामग्री की उपयोगिता स्वीकार करनी पड़ेगी। चाहे शरीर को कितना ही सजाया जाय पर प्राणो के अभाव मे वह सुन्दर नहीं लगेगा।

विचार-समूह या सामग्री

किसी विषय पर लेखनी चलाने के पूर्व उसकी सामग्री जुटाने के लिए उस पर मनन करना चाहिए। मनन करने से जो विचार मस्तिष्क में आवें उन्हे लेखक लिख ले। किसी विषय-सम्बन्धी विचार उसी लेखक के मस्तिष्क में अधिक आ सकते हैं जिसने

उस विषय का अच्छा अध्ययन किया है। वास्तव में निबंध-लेखन के लिए विस्तृत अध्ययन और निरीक्षण की नितान्त आवश्यकता है। अतः विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने ज्ञान-भण्डार को अध्ययन और निरीक्षण द्वारा बढ़ाए। सामग्री जुटाने का सबसे सरल साधन यह है कि लेखक विषय के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न अपने से पूछे। क्या ? क्यों ? कैसे ? आदि प्रश्न-वाचक शब्द उसे पर्याप्त सामग्री प्रदान कर सकेंगे। जैसे—'सफाई' नामक विषय पर निबन्ध लिखना है। उसे इस प्रकार के प्रश्न पूछने चाहिएँ:—

(१) सफाई क्या वस्तु है ?
(२) सफाई क्यो रखनी चाहिए ?
(३) सफाई से क्या लाभ है ?
(४) क्या हम स्वच्छ रहते है ?
(५) सफाई कैसे प्राप्त की जा सकती है ?

इन प्रश्नों के उत्तर ही उसके निबन्ध की सामग्री होंगे।

इस प्रकार निबन्ध लिखने के पूर्व उसकी रूप-रेखा (ढाँचा या संकेत) बनानी चाहिए। रूप-रेखा मे दो बातो का ध्यान रखना आवश्यक है। अनावश्यक बातें जहाँ तक हो न रक्खी जायँ और विचारो को क्रमबद्ध लिखा जाय। जैसे—'महात्मा गांधी' पर निबन्ध लिखना है। लेखक को चाहिए कि अपनी रूप-रेखा मे पहले 'गांधीजी के आविर्भाव के समय भारत की दशा' लिखे, और 'उनका प्रारम्भिक जीवन', 'वकालत', 'अफ्रीका मे सत्याग्रह' आदि अन्य बातें लिखे। यदि वह पहले 'प्रारम्भिक जीवन' लिख-कर फिर 'आविर्भाव के समय की दशा' लिखेगा तो क्रम भंग हो जायगा जिससे निबन्ध का सारा मजा मिट्टी हो जायगा। रूप-रेखा के एक-एक विचार को बढ़ाकर निबन्ध के एक-एक परिच्छेद या पैराग्राफ मे लिखना चाहिए। इसके आदिम और

अन्तिम विचार या बात को क्रमशः 'प्रस्तावना' और 'उपसंहार' नाम देना चाहिए। यह ध्यान रहे कि कोई भी ऐसी बात निबन्ध में न लिखी जाय जो विषय की सीमा से बाहर हो।

शैली

शैली में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु भाषा है। निबन्ध की भाषा सरल और सुबोध हो। बहुत से विद्यार्थी समझते हैं कि क्लिष्ट भाषा से निबन्ध में सुन्दरता आती है। ऐसा समझना उनकी भूल है। वास्तव मे क्लिष्ट भाषा से निबन्ध भद्दा हो जाता है। भाषा मे धारा-प्रवाह का भी गुण होना चाहिए। निबन्ध के पढ़नेवाले को कहीं भी रुकावट का अनुभव न हो। वह भाषा के एक वाक्य से दूसरे वाक्य तक सरकता-सा चला जाय। धारा-प्रवाह के लिए वाक्यों मे स्वाभाविक सम्बन्ध होना चाहिए। वे आपस मे एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हो जिस प्रकार शृङ्खला की कड़ियाँ। भाषा का कष्ट-साध्य (Laboured) होना धारा-प्रवाह पर कुठाराघात करता है। वाक्य छोटे-छोटे लिखने चाहिएँ। लम्बे-लम्बे वाक्यो का कभी-कभी मतलब गुम हो जाता है और साधारण विद्यार्थी उनका ठीक-ठीक निर्वाह नहीं कर सकता। उनसे पढ़नेवाले का चित्त भी उकता जाता है। भाषा संस्कृत-गर्भित हो या व्यावहारिक, इस विषय पर बहुत दिनो से विवाद चल रहा है। कुछ विद्वानो का कथन है कि हिन्दी-भाषा संस्कृत की ओर झुकी रहे और उसमे एक भी विदेशी शब्द न प्रयुक्त हो। कुछ का कहना है कि साहित्य की भाषा उसी प्रकार की हो जिस प्रकार की बोल-चाल की भाषा है। अर्थात् उसमें उर्दू, अँगरेजी आदि के चलते हुए शब्द प्रयुक्त हो। हमारी समझ मे विद्यार्थियो को मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उनकी भाषा न तो संस्कृत-गर्भित हो और न विदेशी-शब्द-बहुला। यत्र-तत्र हिन्दी मे बहुत प्रचलित विदेशी शब्दो को भी स्थान दिया जाय।

पर वे पूर्णतया हिन्दी के व्याकरण से अनुशासित रहें। जैसे—'ज़रा' को 'जरा', 'मकानात' को 'मकानों' और 'स्कूल्स' को 'स्कूलो' लिखना चाहिए। भाषा सशक्त (Forceful) लिखी जाय। वह फड़फड़ाती हुई हो जिससे पाठक प्रभावित होकर निबन्ध को अन्त तक पढ़ता हुआ चला जाय। इसके लिए इस बात का ध्यान रहे कि वाक्य के जिस अंश पर जोर देना हो उसे वाक्य के आदि अथवा अन्त मे रक्खा जाय।

कभी-कभी किसी बात को जोरदार बनाने के लिए उसे प्रश्नवाचक वाक्य मे लिखते है अथवा विस्मयसूचक वाक्य मे। जैसे—(१) ज्ञान-प्रसार मे किस प्रकार विदेशी भाषा मातृ-भाषा की अपेक्षा सफल हो सकती है ? [पृष्ठ ३१] (२) कैसे रमणीय, कैसे सुहावने, कैसे सुन्दर दृश्य है ! [पृष्ठ १११] यदि इन वाक्यों को साधारण रूप मे—(१) ज्ञान-प्रसार में विदेशी-भाषा मातृ-भाषा की अपेक्षा सफल नहीं हो सकती है। (२) दृश्य रमणीय, सुन्दर और सुहावने हैं—रख दिया जाय तो ये शिथिल हो जायँगे। कहीं-कहीं वाक्यांश या वाक्य के आरम्भ अथवा अन्त में एक ही शब्द या शब्द-समूह का बार-बार प्रयोग करने से भाषा मे अच्छी शक्ति आ जाती है। जैसे-(१) जब मिट्टी से रत्न पैदा करनेवाला मौन तपस्वी किसान भर पेट भोजन पायगा, जब उसे शरीर ढकने को वस्त्र मिलेगा, तभी यह देश पुनः अपनी प्राचीन समृद्धि को प्राप्त करेगा, तभी यह देश धन-धान्य से अट जायगा, तभी यह देश अपनी खोई हुई लक्ष्मी को पुनः प्राप्त करेगा। (पृष्ठ ५) (२) भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने वाले आप ही है। भारतवर्ष मे जागृति करनेवाले आप ही हैं। भारत-माता की सूखी नसो मे रक्त का संचार करनेवाले आप ही हैं। देश के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सबके हृदय-सम्राट् आप ही हैं। (पृष्ठ ७५)

निबन्ध का सौन्दर्य अलङ्कारों के प्रयोग से बढ़ जाता है, पर उनकी भरमार अच्छी नहीं। जहाँ जो अलङ्कार स्वतः विचार-प्रवाह में आ जायँ उन्हीं को निबन्ध मे स्थान दिया जाय। सिर खुजला-खुजलाकर रचना में अलङ्कार बिछाना ठीक नहीं है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलङ्कार भावों को स्पष्टता प्रदान करते हैं। अतः इनका प्रयोग करना चाहिए। पर स्मरण रहे कि अलङ्कारों का प्रयोग करना सरल नहीं होता। वही विद्यार्थी उनका प्रयोग करे जिसे उनका ठीक ज्ञान हो।

निबन्ध मे मुहावरों तथा लोकोक्तियों का स्थान-स्थान पर प्रयोग होना चाहिए। इससे उसमे रोचकता आ जाती है। जैसे—विदेशी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। (पृष्ठ ३२) यह वाक्य "विदेशी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना कठिन काम है" इस वाक्य से कहीं अधिक रोचक है। मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि अन्य भाषाओं से उनका अनुवाद करके अपनी भाषा में न रक्खा जाय। अँगरेजी के मुहावरे 'To put the cart before the horse' का हिन्दी-अनुवाद 'घोड़े के सम्मुख गाड़ी रखना' कितना हास्यास्पद है!

निबन्ध मे किसी कवि या लेखक की ऐसी उक्ति देना अच्छा है जो विषय पर ठीक लागू होती हो। पर इस प्रकार की उक्तियो की संख्या अधिक न हो, क्योंकि निबन्ध में निबन्ध-लेखक के विचारों की ही प्रधानता रहनी चाहिए। अपने विचारों के समर्थन में किसी विद्वान् के वचन देने से निबन्ध की शोभा बढ़ती है। उक्ति ऐसे स्थान पर रक्खी जाय जहाँ वह ठीक बैठ जाय।

निबन्ध-रचना के लिए हास्य अथवा विनोद की सामग्री की भी आवश्यकता होती है। इससे निबन्ध में रोचकता आ जाती

है और पाठक का मन नहीं ऊबता। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि हास्य कुरुचि-उत्पादक अथवा मर्यादा के विरुद्ध न हो।

निबन्ध में यथास्थान उदाहरण देकर विचारों को स्पष्ट और पुष्ट करना चाहिये। जहाँ कोई सूक्ष्म विचार प्रकट करना हो वहाँ तो उदाहरण अवश्य दिया जाय, अन्यथा विचार प्रकाशन ठीक तरह से न हो सकेगा और पाठक उसे हृदयङ्गम न कर सकेगा। जहाँ विचार साधारण हो वहाँ उसके प्रकाशन के लिए तो उदाहरण की आवश्यकता नहीं होती, पर उसकी पुष्टि में यदि कोई उदाहरण दे दिया जाय तो निबन्ध की शोभा बढ़ जायगी। यह अवश्य स्मरण रहे कि उदाहरणों की संख्या अधिक न होने पाए।

निबन्ध का प्रारम्भ या प्रस्तावना

शैली में निबन्ध के प्रारम्भ करने का ढङ्ग विशेष महत्व रखता है। निबन्ध का प्रारम्भ करना है भी बड़ा कठिन कार्य। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। कोई ऐसा नियम नहीं है जो इसके लिये बतलाया जा सके। केवल अभ्यास से इस कला में कुशलता प्राप्त की जा सकती है। आरम्भ बड़ा आकर्षक होना चाहिए जिससे पढ़नेवाला निबन्ध की ओर आकर्षित हो। यदि ऐसा न होगा तो पाठक का मन पहले से ही मुरझा जायगा और वह निबन्ध को अन्त तक पढ़ने के लिए इच्छुक न होगा। अतएव प्रारम्भ में लेखक को विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। आरम्भ की भाषा फड़-फड़ाती हुई हो और विचारों में भावात्मक पुट रहे। ज्यों-ज्यों पाठक वाक्यों को पढ़े त्यों-त्यों उसे अधिक आनन्द मिलता जाय। वस्तुतः निबन्ध की श्रेष्ठता बहुत कुछ उसके आरम्भ पर निर्भर रहती है। कई प्रकार से निबन्ध का आरम्भ किया जाता है:—

(१) कोई लेखक आरम्भ मे निवन्ध के विपय की परिभाषा देता है या उसका अर्थ बतलाता है।

(२) कोई लेखक किसी अच्छी कहावत या कविता से निवन्ध का श्रीगणेश करता है।

(३) कोई लेखक एकदम (Abrupt) विपय का प्रतिपादन करता हुआ आगे बढ़ता है।

(४) कोई लेखक किसी दृश्य से निवन्ध का आरम्भ करता है।

(५) कोई लेखक आदि में विपय से सम्बन्धित कुछ बातों का उल्लेख करता हुआ विपय मे प्रविष्ट होता है।

इनमें से पहला या तीसरा ढंग अच्छा नहीं गिना जाता। चौथा ढंग बहुत आकर्षक होता है, पर यह सब प्रकार के निवन्धो के लिए नहीं हो सकता। विद्यार्थी को चाहिए कि विपय के अनुसार दूसरे, चौथे या पाँचवें प्रकार से अपने निवन्ध का आरम्भ करे। प्रस्तुत पुस्तक मे 'स्वदेश-प्रेम' का आरम्भ दूसरे प्रकार का, 'भारतीय किसान' का चौथे प्रकार का, और 'शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो' का पाँचवें प्रकार का है।

निवन्ध का मध्य

निवन्ध के मध्य भाग में रूप-रेखा की प्रस्तावना और उपसंहार नामक बातो (Points) को छोड़कर अन्य बातो मे से प्रत्येक को लेकर उस पर एक-एक पैराग्राफ लिखना चाहिए। एक पैराग्राफ समाप्त करने पर दूसरे में वह बात लिखी जाय जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार पहली बात से हो जिससे पाठक यह न अनुभव करें कि वह कहीं का कहीं आ गया। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि प्रधान बात विस्तार के साथ लिखी जाय और साधारण बात थोड़े मे।

निबन्ध का अंत या उपसंहार

जिस प्रकार निबन्ध का प्रारम्भ करना कठिन है उसी प्रकार उसकी समाप्ति भी सरल नहीं। वास्तव में आरम्भ और अन्त निबन्ध के प्राण हैं। अतः लेखक को इनकी रचना में अधिक सतर्क रहना चाहिए। यदि निबन्ध को एकदम समाप्त कर दिया जायगा तो पाठक को धक्का सा लगेगा और उसका सब आनन्द किरकिरा हो जायगा। इसलिए उपसंहार ऐसा लिखा जाय कि पाठक अबाध रूप से निबन्ध का रसास्वादन करता हुआ अन्त तक पहुँच जाय जहाँ उसको सर्वाधिक आनन्द की प्राप्ति हो। इस प्रकार के उपसंहार के लिए कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। पर कुछ स्थूल बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। निबन्ध के अन्त मे उसका सारांश दिया जाय अथवा कोई परिणाम निकाला जाय अथवा शिक्षा दी जाय अथवा अपनी सम्मति प्रकट की जाय अथवा किसी कवि या लेखक की उक्ति लिखी जाय अथवा विषय का भविष्य बतलाया जाय अथवा विषय का महत्व कहा जाय अथवा सुधार के लिए अपील की जाय। स्मरण रहे कि अन्तिम पैराग्राफ के लिखने मे जितनी अधिक चतुराई से काम लिया जायगा उतना ही अधिक प्रभाव पाठक पर पड़ेगा और परीक्षार्थी को परीक्षा में उतने ही अधिक अंक मिलेंगे। अतः निबन्ध का अन्त अत्यन्त सशक्त और प्रभावशाली होना चाहिए।

शैली के भेद

निबन्ध प्रायः दो प्रकार की शैलियों में लिखे जाते हैं, जो ये हैं—(१) आलंकारिक शैली और (२) साधारण शैली। पहली में विचारों को अलंकार-गर्भित भाषा में व्यक्त किया जाता है और दूसरी मे सरल और सुबोध भाषा में। विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने निबन्ध में इन दोनों का समुचित संयोग करे।

निबन्ध के भेद

वैसे तो विषय-भेद से निबन्ध अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे—ऐतिहासिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक, दार्शनिक, धार्मिक, स्वास्थ्य-सम्बन्धी, गुणात्मक, तुलनात्मक, सामाजिक आदि। पर साधारणतः उनके तीन भेद किए जा सकते हैं। ये इस प्रकार हैं:—

(१) वर्णनात्मक (Descriptive) निबन्ध
(२) विवरणात्मक (Narrative) निबन्ध
(३) विचारात्मक (Reflective) निबन्ध

इन तीनो भेदों के अन्तर्गत सभी विषय रक्खे जा सकते हैं।

वर्णनात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी स्थान, दृश्य, भवन आदि जीवधारी या निर्जीव वस्तु का वर्णन किया जाता है। विद्यार्थी इसमे तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जब वह अपने देखे हुए पदार्थ का ऐसा वर्णन करे कि पढ़नेवाले के नेत्रों के सम्मुख वर्णनीय पदार्थ का जीता-जागता चित्र-सा उपस्थित हो जाय और उसे ऐसा प्रतीत हो कि वह उसको स्वयं देख रहा है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत पुस्तक के 'प्रकृति-सौन्दर्य' शीर्षक लेख के कतिपय अंश देखिये—

"कही वृक्षो की डालियो पर कीश-मण्डली मचक-मचक कर खेल रही है और डालियाँ बोझ से लचक रही है। कही चंचल मयूर अपने पङ्खो से जमीन को झाड़ता हुआ भाग रहा है। कही कोई पक्षी अपना एक पंख फैलाए छाती के बल धूल मे बैठा है। कहीं कोई चिड़िया जल को इधर-उधर उछालती हुई स्नान कर रही है।" (पृष्ठ १११)

"सरोवरों में लाल, पीले, नीले और सफेद कमल खिल रहे हैं। उनके चारो ओर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। लहराते हुए नीले जल पर हरी सेवार छाई हुई है।" (पृष्ठ १११)

विवरणात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी घटना आदि का वर्णन किया जाता है। जीवन-चरित्र, ऐतिहासिक घटना, आत्म-कहानी आदि इसी के अन्तर्गत है। इस प्रकार के निबन्धों मे घटनाओ का वर्णन काल-क्रम के अनुसार होना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा न होगा तो निबन्ध भद्दा होजायगा। किसी व्यक्ति का जीवन-चरित्र बतलाते हुए यदि पहले उसकी मृत्यु का विवरण दिया जाय और तत्पश्चात् उसके कार्यों का तो वह किसे अच्छा लगेगा ? क्रम के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि घटनाओं का वर्णन इतिहास की भाँति रूखा-सूखा न होने पाए। आदि से अन्त तक पाठक की निबन्ध में रुचि बनी रहे।

विचारात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी अमूर्त (Abstract) विषय पर विचार प्रकट किए जाते हैं अथवा किसी विषय पर वाद-विवाद या तर्क किया जाता है ; जैसे—सफाई, स्वदेश-प्रेम, सच्चरित्रता, ग्राम-निवास अथवा नगर-निवास, शिक्षाका माध्यम मातृभाषा हो, स्त्री-शिक्षा, बेकारी की समस्या आदि। प्रायः देखा जाता है कि इस प्रकार के निबन्धो के आदि में विद्यार्थी परिभाषा देते हैं; जैसे—सफाई क्या वस्तु है ? स्वदेश-प्रेम किसे कहते हैं ? मातृ-भाषा क्या है ? बेकारी से क्या तात्पर्य है ? यह अच्छा नहीं। अत्यन्त जटिल विषय हो तो परिभाषा दी भी जा सकती है, पर साधारण विषय की परिभाषा देना बहुत खटकता है। अमूर्त विषयो पर लिखे गए लेखो में

प्रायः विषय के हानि-लाभों का विवेचन रहता है और तर्क-सम्बन्धी निबन्धो मे तर्क-वितर्क द्वारा अपने मत का प्रतिपादन किया जाता है। वस्तुतः विचारात्मक निबन्ध लिखना वर्णनात्मक या विवरणात्मक लेख लिखने की अपेक्षा कहीं कठिन है। इसके लिए विद्यार्थी को बहुत सोचने की आवश्यकता है। तर्क-सम्बन्धी निबन्ध मे विभिन्न मतों को मन मे तोलना पड़ता है और फिर बुद्धि-संगत बातो द्वारा अपनी मति का प्रतिपादन करना पड़ता है। विचारात्मक निबन्धो के लिए विद्यार्थी का अध्ययन विस्तृत होना चाहिए और उसमे तीव्र बुद्धि भी वांछनीय है।

अन्त में यही कहना है कि निबन्ध-लेखन एक कला है। इसमें कुशल बनने के लिए अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है। विद्यार्थी को चाहिए कि वह निबन्ध की पुस्तकों का अवलोकन करे, मासिक पत्र-पत्रिकाओ को पढ़े और कम से कम दो सप्ताह पश्चात् तो एक निबन्ध लिखकर उसे किसी योग्य व्यक्ति को दिखा ही दिया करे। आजकल देखा जाता है कि विद्यार्थी-गण निबन्ध लिखने से बहुत जी चुराते है। इसका यह दुष्परिणाम होता है कि वे परीक्षा-भवन मे बैठकर बहुत बुरा निबन्ध लिखते है और बहुत कम अंक पाते है। यहाँ तक कि बहुत से विद्यार्थी अच्छा निबन्ध न लिख सकने के कारण ही परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते है और इस प्रकार अपने वर्ष भर के परिश्रम पर पानी फेरते है।

भारतीय किसान

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—गरमी की दोपहरी का दृश्य

(२) भारतीय किसान का कठोर और दुःखपूर्ण जीवन।

(३) भारतीय किसान की दरिद्रता

(४) खेती की शोचनीय दशा

(५) भारतीय किसान की बेकारी

(६) भारतीय किसान की निरक्षरता

(७) उपसंहार—भविष्य, किसान की उन्नति से भारतवर्ष का उत्थान

विकट गरमी पड़ रही है। भगवान् भास्कर अपनी प्रचण्ड किरणों से पृथ्वी को जलाकर तवा सा बना रहे हैं। वायु सूर्य के ताप से गरम होकर कोड़े से मार रही है। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। पशु-पक्षी जलाशयो के निकट वृक्षों की छाया में शरण ले रहे हैं। छाया भी भीषण सूर्य-कोप से भयभीत होकर शरीर को सिकोड़े हुए वृक्षो के नीचे छिपी हुई है। दोपहर का समय है। इस समय क्या धनवान्, क्या दरिद्र, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या चेतन, क्या जड़, सभी विश्राम कर रहे है। पर अभागा किसान निरन्तर परिश्रम करने मे संलग्न है। उसका शरीर धूप से जलकर काला हो गया है, आँखें बैठी हुई हैं, मुख म्लान है, शरीर पर एक जीर्ण-शीर्ण धोती लिपटी हुई है और नंगे पैर खेत की तप्त मिट्टी से भुने जा रहे हैं। शिखा से नख तक वह पसीने में तर है, परन्तु अपनी कठिन तपस्या से विरत नहीं होता। जिस प्रकार वह ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की असह्य गरमी और लू के थपेड़ों को सहता है उसी प्रकार वर्षा मे मेघों की मूसलाधार झड़ी और शीतकाल मे ठण्ड के कसाले सहता है।

भारतीय किसान का जीवन, परिश्रम, सन्तोष, त्याग और करुणा का जीवन है। प्रातःकाल पौ फटने पर जब सारा संसार सोता रहता है वह जग जाता है और अपने बैलों को खोलकर खेत को रवाना होता है। वहाँ पहुँचकर वह कठिन परिश्रम मे लग जाता है। इधर उसकी स्त्री चक्की चलाना, कुएँ से पानी खींच कर लाना, गोबर थापना, बच्चो की सेवा करना, भोजन बनाना आदि कार्यों में जुटती है। मध्याह्न को रूखा सूखा भोजन लेकर वह कृषक-भार्या बच्चों के साथ खेत का मार्ग ग्रहण करती है। खेत पर पहुँचकर पहले अपने पति को खाना खिलाकर फिर वह आप बचा-खुचा खाती है। इसके पश्चात् वह उसके कठोर कार्य मे हाथ बटाती है। मखमल के फर्श पर पैर छीलने वाली अथवा गुलाब की पंखड़ियों से शरीर में खरोट डालनेवाली कोमलता विधाता ने उसको नहीं प्रदान की है, यह अच्छी बात है। अन्यथा बेचारा किसान उससे कैसे अपना कार्य चलाता? सूर्यास्त के पश्चात् वह दम्पति थककर घर लौटता है और आवश्यक घरेलू कार्यों से छुट्टी पाकर निद्रादेवी की शान्त और सुशीतल गोद मे विश्राम करता है।

भारतीय किसान सदैव दरिद्र रहता है। उसकी दरिद्रता के प्रमुख कारण ऋण-भार, लगान की दुर्व्यवस्था, उपज की न्यूनता आदि हैं। न तो उसके तथा उसके बाल-बच्चों के लिए खाने को भरपेट भोजन है और न पहनने को साबूत वस्त्र। न तो उसके लिए रहने को वर्षा, गरमी और शीत से बचानेवाला घर है और न मनोरंजन का कोई साधन। वह सर्वदा ऋण-भार से दबा रहता है। कभी जमींदार को भेज देनी है तो कभी महाजन के रुपए चुकाने हैं। बेचारे को दोनों की चढ़ी हुई त्यौरियाँ देखनी पड़ती हैं। बेचारे को दोनों के दबाव सहने पड़ते हैं। बेचारे को दोनों की गालियाँ सुननी पड़ती हैं। कभी जमींदार खेत पर सहना बैठा देता

है, तो कभी महाजन घर की कुड़की कर ले जाता है। कभी जमींदार खेत छीन लेता है, तो कभी महाजन जेल की हवा खिलाता है। वस्तुतः उसका जीवन कण्टकाकीर्ण होता है। अनेक प्रकार की चिन्तायें उसके रुधिर को पान करती रहती हैं। उसका शरीर भूखके कारण घुला जाता है। पर धीर और सन्तोषी किसान सब कुछ सहता है। हरे-भरे खेत को देखकर वह फूला नहीं समाता। खेत के दाने-दाने को एकत्रित करते समय उसके आनन्द का समुद्र बेतरह तरंगित हो उठता है। उस समय क्षण भर के लिए चिन्तायें उससे दूर होजाती हैं।

भारतीय किसान अन्य देशो के किसान की अपेक्षा कही दयनीय और दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। इसका सबसे बड़ा कारण है खेती की शोचनीय दशा। जहाँ जर्मनी, जापान, अमरीका आदि देशो का किसान छोटे से छोटे भू-भाग से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करता है, वहाँ हमारे देश का किसान बड़े-बड़े खेतो से भी बहुत थोड़ी उपज पाता है। किसी भी देश मे प्रति एकड़ भारतवर्ष को बराबर कम पैदावार नहीं होती। कारण यह है कि अन्य देशो मे विज्ञान ने खेती के कार्य मे बड़ी सहायता दी है। पर भारतवर्ष मे खेती के क्षेत्र मे विज्ञान का प्रवेश नहीं हो पाया है। यद्यपि वैज्ञानिक इस बात का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं कि किसान खेती करने मे वैज्ञानिक यंत्रों का उपयोग करे, खेतों मे अच्छे-अच्छे खाद डाले और रोगो से खेती की रक्षा करे। फलस्वरूप कुछ रिसर्च-फार्म भी खुले है, तथापि यहाँ का किसान पुरानी लकीर का फकीर होता चला आ रहा है। वह खेत जोतने को वही पुराने ढंग के हल, सिंचाई को वही पुराने ढंग के चरस और वही पुराने ढंग का खाद उपयोग में लाता है। वह अपनी खेती की रोगों से रक्षा करना नहीं जानता। हमारे देश मे नहरो और सिचाई के अन्य साधनों की कमी होने के कारण किसान

प्रायः वर्षा के जल पर निर्भर रहता है। कभी-कभी वर्षा के अभाव में उसकी खड़ी हुई खेती सूख जाती है, उसकी आशाओ पर पानी फिर जाता है। यह है बेचारे का दयनीय जीवन; यह है बेचारे का भाग्य। जहाँ अन्य देशो का किसान मोटर मे सैर करता है और तरह-तरह के मनोरंजन के साधन रखता है, वहाँ भारतीय किसान के पास तन ढकने को वस्त्र और पेट भरने को पर्याप्त भोजन भी नहीं है।

भारतीय किसान वर्ष मे लगभग चार माह तक बेकार रहता है। दरिद्र होने पर भी वह इस अवकाश में घरेलू उद्योग-धन्धों को नही करता। रेशम के कीड़े पालना, चर्खा चलाना, मुर्गियाँ पालना, शहद की मक्खियाँ पालना, रस्सियाँ बनाना, तेल-इत्र बनाना आदि धन्धे ऐसे हैं जिनको प्रयेत्क किसान सरलता से कर सकता है। प्रत्येक देश मे किसान खेती के साथ-साथ कुछ न कुछ उद्योग करके अपनी आय में पर्याप्त वृद्धि करता है। यहाँ का किसान ऐसा क्यो नही करता।

भारतीय किसान अशिक्षित है। उसके लिए 'काला अक्षर भैस बराबर' ही होता है। अशिक्षा के कारण उसका मानसिक विकास नही हो पाता और वह देश विदेश की परिस्थिति मे अन-भिज्ञ रहता है। उसकी कूप-मंडूकता और निरक्षरता का लाभ हाकिम-हुक्काम उठाते है। वह पटवारी, चौकीदार, सिपाही, मुखिया, थानेदार आदि से बहुत डरता है और इन लोगों के अनुचित दबाव सहता है। ये उसको खूब लूटते-खसोटते रहते है। साक्षर न होने के कारण वह वस्तुओ के क्रय-विक्रय के भाव नहीं जानता और ठगा जाता है। प्रायः देखा जाता है कि किसान अपना माल सस्ता बेचता है और दूसरे का माल महँगा खरीदता है। यह अशिक्षा का ही प्रसाद है कि वह मुक-दमेबाजी मे और विवाहादि के अवसरों पर अपव्यय करता

है। परिणाम यह होता है कि वह ऋण-ग्रस्त होकर ऋण के दुःखों को केवल स्वयं ही आजन्म नहीं सहता वरन् अपनी सन्तान के लिए भी उन्हे छोड जाता है।

हर्ष की बात है कि कुछ दिनों से हमारी सरकार का ध्यान किसान की आपदाओ की ओर आकर्षित हुआ है। सरकार उनके ऋण-भार को हलका करने के लिए नये-नये कानून बना रही है, खेती मे सुधार कर रही है, सिंचाई के लिए सुप्रबन्ध कर रही है और लगान-व्यवस्था मे परिवर्तन कर रही है। आशा है उसकी दशा शीघ्र सुधर जायगी। वस्तुतः भारतवर्ष का उत्थान किसान की उन्नति पर निर्भर है। हमारा देश कृषि-प्रधान है। इसका व्यापार खेती पर अवलम्बित है। अतः जब मिट्टी से रत्न पैदा करनेवाला मौन तपस्वी किसान भरपेट भोजन पायगा, जब उसे शरीर ढकने को वस्त्र मिलेगा, तभी यह देश पुनः अपनी प्राचीन समृद्धि को प्राप्त करेगा, तभी यह देश धन-धान्य से अट जायगा, तभी यह देश अपनी खोई हुई लक्ष्मी को पुनः प्राप्त करेगा।

संयुक्तप्रान्त में साक्षरता-प्रसार

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—मानव-जीवन मे शिक्षा की आवश्यकता

(२) भारत में निरक्षरता

(३) संयुक्तप्रान्त में साक्षरता-प्रसार-योजना के दो पहलू (अ) साक्षर बनाना (आ) साक्षरता कायम रखना

(४) साक्षर बनाने के साधन—

(क) प्रौढ-स्कूलों की स्थापना

(ख) बोनस-प्रणाली

(ग) स्कूलों और कालेजों से सहायता

(५) साक्षरता कायम रखने के साधन—

(क) वाचनालयों और पुस्तकालयों की स्थापना

(ख) असरकारी पुस्तकालयों एव वाचनालयों को सहायता

(६) प्रति वर्ष 'साक्षरता दिवस' मनाने की आयोजना

(७) उपसंहार—सारांश

शिक्षा जीवन के विकास का साधन है। जीवन के ही विकास का साधन नहीं. वरन् इससे राष्ट्र और समाज की उन्नति में भी पर्याप्त सहायता मिलती है। जहाँ शिक्षा का प्रचार है, जहाँ के स्त्री-पुरुष शिक्षा द्वारा ज्ञान प्राप्त करके नई-नई वस्तुओं की खोज एवं निर्माण करते हैं, जहाँ के नर नारी साक्षर बनकर सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासो का निवारण करते हैं, उस देश को सचमुच 'देश' के नाम से पुकारते हुए गर्व होता है। ऐसे देश को समस्त विश्व मस्तक झुकाता है। वस्तुतः शिक्षा अमृत है, अशिक्षा विष। शिक्षा उत्थान है, अशिक्षा पतन। शिक्षा दिव्य सम्पति है, अशिक्षा फूटी कौड़ी।

वर्तमान काल मे हमारा देश अशिक्षा के अभिशाप से पीड़ित है। क्या बालक क्या प्रौढ़, क्या स्त्री क्या पुरुष, सभी इस रोग से आक्रान्त हैं। देश का केवल दशमांश ही साक्षर नाम से पुकारा जा सकता है। बालक-बालिकाओ मे तो शिक्षा का कुछ प्रचार है भी, पर प्रौढ़ स्त्री-पुरुष की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें से अधिकांश के लिऐ 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही है। हमारे ग्राम तो पूर्णतया अशिक्षा के केन्द्र बने हुए है। वहाँ निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। देश के लिए यह कितनी लज्जा और दुःख की बात है! जो देश एक दिन अन्य देशों का विद्या-गुरु था वह आज काल-देव को कुदृष्टि से कितना नीचे गिर गया है! आज उसके शिष्य उससे बहुत आगे बढ़ गए है।

हमारे प्रान्त में कांग्रेस सरकार ने जहाँ प्रान्त की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर कदम बढ़ाया वहाँ अशिक्षा-दानवी का संहार करने के भी साधन जुटाए। १ अगस्त सन् १९३८ ई० को संयुक्त प्रान्त मे पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता मे शिक्षा-प्रसार-विभाग की स्थापना की गई और १५ जनवरी सन् १९३९ ई० को शिक्षा-प्रसार योजना का श्री गणेश हुआ। इसका श्रेय हमारे प्रान्त के शिक्षा-सचिव श्री सम्पूर्णानन्दजी को है। इस विभाग ने अपने अल्प-जीवन मे जो आशातीत कार्य कर दिखाया है उससे हमे विश्वास होता है कि हमारे प्रान्त को अशिक्षा-दानवी से शीघ्र ही छुटकारा मिल जायगा।

शिक्षा-प्रसार-योजना दो भागो मे विभाजित है—साक्षर बनाना और साक्षरता कायम रखना। साक्षर बनाने के लिये प्रौढ़-स्कूलो की स्थापना की गई है। यद्यपि अर्थाभाव के कारण इन स्कूलो की संख्या अपर्याप्त है तथापि इनसे बहुत लाभ हुआ है। इन स्कूलों मे रात्रि के समय प्रौढ़ो को शिक्षा दी जाती है, क्योंकि यही ऐसा समय है जब वे लोग अपने कार्य से अवकाश पाते है। ५-६ माह तक की अवधि प्रत्येक प्रौढ़ की शिक्षा के लिए नियत है। पाठ्य-क्रम मे तीसरी कक्षा के स्टैंडर्ड की एक हिन्दी अथवा उर्दू रीडर और भारतवर्ष के भूगोल तथा गणित का साधारण ज्ञान रक्खा गया है। हिन्दी अथवा उर्दू रीडर में ऐसी साधारण भाषा रहती है जैसी नित्यप्रति व्यवहार में आती है। ऐसी सादा भाषा लिखना और पढ़ना सिखाना ही उक्त रीडर का उद्देश्य होता है। स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर द्वारा साक्षरता की सनद पाने से पहले विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती है। परीक्षक साधारणतः वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल का प्रधानाध्यापक होता है।

इस साधन के अतिरिक्त बोनस-प्रणाली का भी आश्रय लिया गया है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को एक मनुष्य साक्षर बनाने के लिए एक रुपया दिया जाता है। असरकारी संस्थाओं को भी सहायता देकर इस कार्य मे योग देने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। इंटरमीडिएट कालेज, हाईस्कूल और वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों से एक-एक गाँव चुनकर उनमे साक्षरता का प्रसार करने की प्रार्थना की गई है। इस योजना के अनुसार बहुत से स्कूलो और कालेजो ने कार्य किया है। विद्यार्थी-समुदाय ने विशेषकर अँगूठा-निशानी के विरुद्ध (No thumb impression) आन्दोलन में भाग लिया है। वे अनेक मनुष्यों को हस्ताक्षर करना सिखाकर इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

यह तो हुई साक्षर बनाने की बात। अब साक्षरता कायम रखने की बात लीजिए। जब तक साक्षरों को निरक्षर होने से बचाने के लिए कोई उपाय न किया जायगा तब तक साक्षरता-प्रसार-योजना कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। अतः हमारे प्रान्त की सरकार ने साक्षरता कायम रखने की ओर विशेष ध्यान दिया है। इस कार्य के सम्पादन के लिए पुस्तकालयो एवं वाचनालयो की स्थापना की गई है। बक्स आदि आवश्यक सामान के अतिरिक्त प्रत्येक पुस्तकालय को लगभग ३०० हिन्दी उर्दू की पुस्तके दी जाती है। ये पुस्तकालय गाँवो मे खोले गए हैं। प्रत्येक पुस्तकालय की ५ से ८ मील की परिधि के भीतर पाँच शाखाएँ होती हैं जिनको प्रतिमाह में २० से ३० पुस्तकों का एक बक्स मिलता है। इन शाखाओ का प्रबन्ध एक पुस्तकाध्यक्ष करता है। स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार प्रत्येक पुस्तकालय को दो साप्ताहिक और एक मासिक पत्र दिया जाता है। वाचनालय के अध्यक्षों को निरक्षर व्यक्तियों को समाचार-पत्र पढ़कर सुनाने के लिए प्रतिमास एक रुपया भत्ता दिया जाता है।

सरकारी पुस्तकालयो और वाचनालयो की स्थापना के अति-रिक्त असरकारी पुस्तकालयो एवं वाचनालयो को भी सहायता दी जाती है। पुस्तकालय की उपयोगिता के अनुसार ३६) से ६६) तक वार्षिक सहायता दी जाती है। हर पुस्तकालय को दो पत्र भी मिलते है।

प्रति वर्ष लोगो में उत्साह भरने के लिए 'साक्षरता-दिवस' की आयोजना की जाती है। इस दिन स्कूलों के जुलूस निकलते हैं और सभाएँ होती हैं जिनमे साक्षरता-प्रसार की उपयोगिता पर भाषण दिये जाते हैं और लोगों से अपील की जाती है कि वे देश से निरक्षरता के कलंक को दूर करे। लोगों मे प्रतिज्ञा-पत्रो पर इस आशय के हस्ताक्षर कराए जाते हैं कि वे आगामी वर्ष में कम से कम एक व्यक्ति को साक्षर बनाएँगे।

इस प्रकार हमारे प्रान्त में साक्षरता का कार्य द्रुत गति से हो रहा है और इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। हाँ, धन की कमी से यह कार्य और अधिक नही बढ़ाया जा सकता। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इस पवित्र कार्य में हाथ बँटाए। अपने देशवासियो की सेवा के निमित्त जहाँ पाश्चात्य प्रदेशो मे लाखो मनुष्य अपना सर्वस्व बलिदान कर रहे हैं वहाँ क्या हमारे प्रान्त के शिक्षित स्त्री-पुरुष अपने भाइयो और बहिनो को साक्षर बनाने में भी संकोच करेगे ?

मनोरंजन के आधुनिक साधन

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—मनोरजन की आवश्यकता
(२) समय के साथ-साथ मनोरजन के साधनो में परिवर्तन
(३) रेडियो, टेलीविजन
(४) सिनेमा

(५) सरकस और कार्नीवाल
(६) शतरंज, ताश आदि घर के भीतर खेले जाने वाले खेल (Indoor games)
(७) क्रिकेट, हॉकी आदि मैदान के खेल (Outdoor games)
(८) उपन्यास, कहानी और कविता
(९) मेले, तमाशे आदि
(१०) उपसंहार—सारांश

मानव-जीवन के दो पहलू हैं और हमारी आवश्यकताएँ भी दो प्रकार की होती हैं—एक बाह्य जीवन की, और दूसरी मानसिक अथवा आन्तरिक जीवन की। जब हमारे बाह्य जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, जब हम दिन भर के परिश्रम से उकता जाते हैं, तब हमारे मन को भूख लगती है, तब हम मनोरंजन के साधन ढूँढ़ते हैं। हममें से कोई शतरंज से मन बहलाता है तो कोई ताशों से। कोई क्रिकेट खेलता है तो कोई टेनिस। कोई हारमोनियम पर राग अलापता है तो कोई ग्रामोफोन सुनता है। कोई सिनेमा-हॉल में जाता है तो कोई रेडियो से ही अपना मनोरंजन करता है। कोई नृत्य से मन की भूख मिटाता है तो कोई प्राकृतिक सौन्दर्य को देख कर। कोई पशु-पक्षियों से खेलता है तो कोई आराम कुर्सी पर लेटकर उपन्यास-कहानी पढ़ कर दिल बहलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, सभी जीवधारी कुछ न कुछ समय मनोरंजन के लिए अवश्य देते हैं।

समय के साथ-साथ जैसे हमारी रुचि में परिवर्तन होता गया है वैसे ही हमारे मनोरंजन के साधन भी बदलते गए हैं। एक समय था जब कठपुतली का नाच हमारा मनोरंजन करता था पर आज नहीं करता। एक समय था जब नाटक हमारे मन को खूब बहलाते थे पर आज उतना नहीं बहलाते। एक समय था जब

बाजीगर का खेल हमें बहुत प्यारा लगता था पर आज उतना प्यारा नहीं लगता। आज से सौ वर्ष पूर्व जो मनोरंजन के साधन थे वे प्रायः अब नहीं रह गए है। विज्ञान ने इस क्षेत्र में उलट-पुलट कर दी है। रेडियो और सिनेमा का, जो आधुनिक काल मे मनोविनोद के प्रधान साधन बने हुए हैं, प्राचीन काल मे कोई नाम भी नहीं जानता था।

रेडियो एक यन्त्र है जिसके द्वारा कितनी ही दूरी की ध्वनि सुनी जा सकती है। इसका उपयोग समाचार भेजने और संगीत सुनने के लिए किया जाता है। किसी बड़े नगर मे रेडियो का स्टेशन होता है जहाँ से समाचार अथवा संगीत भेजा जाता है। इस यन्त्र द्वारा संसार के अच्छे से अच्छे गायक का गायन घर बैठे सुना जा सकता है। इसके अभाव में अच्छे अच्छे गायको का गाना सुनने के लिए लोगो को इधर-उधर जाना पड़ता था पर अब वे अपनी गायन-क्षुधा की निवृत्ति घर पर ही कर सकते है। रेडियो रखनेवाले के लिए मानो संसार के विख्यात गवैये उसके द्वार पर खड़े रहते है। परन्तु यह मनोरंजन का साधन केवल धनिकों की सेवा करता है। दरिद्र इसके आनन्द से वंचित रहते हैं। उन बेचारो के पास इतना धन कहाँ कि वे रेडियो खरीद कर उससे अपना मनोविनोद करें। हाँ यदि किसी श्रीमान् की कोठी मे रेडियो बज रहा हो तो बाहर खड़े होकर उन्हे भले ही उसका आनन्द मिल जाय। रेडियो के अतिरिक्त ग्रामोफोन, हारमोनियम आदि वाद्य-यन्त्र भी आमोद प्रमोद के साधन है।

सिनेमा अवश्य ऐसा साधन है जिससे अमीर और गरीब, ऊँच और नीच, सभी अपना मनोरंजन कर सकते है। दिन भर की थकावट मिटाने के लिए सिनेमा से सुलभ और सस्ता मनो-रंजन का साधन अन्य कौनसा हो सकता है? गरीब जनसमाज के लिए सिनेमा आधुनिक सभ्यता की अमूल्य भेंट है। इसमें

पुरुप-स्त्रियो के चलते फिरते चित्रों द्वारा कोई कहानी दर्शकों को दिखलाई जाती है। नाटक से इसमें यह भिन्नता है कि इसमें अभिनेता-अभिनेत्रियो के चित्र रहते हैं और नाटक मे साक्षात अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ रहती हैं। पहले सिनेमा मे मूक चित्र होते थे। अब यह कमी दूर होगई है और चित्रों में वाणी का समावेश होगया है। यही नहीं अब तो रंगीन चित्र भी बनने लग गये हैं। प्राकृतिक दृश्यो के वास्तविक रंग अब चित्रपट पर देखे जाने लगे हैं। बसन्त की बहार; उषा की लालिमा, पुष्पो की रंग-विरंगी छटा और अभिनेत्रियो के शरीर का गुलाबी रंग देखकर दर्शक मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। वस्तुतः दृश्य विधान और संगीत सिनेमा के प्राण हैं। जब दर्शक प्रकृति के सुन्दर दृश्य मे किसी अभिनेत्री अथवा अभिनेता को गाते हुए देखता है तो उसके हृदय की कली-कली खिल जाती है। क्षण भर के लिये वह अपने को भूल जाता है। निस्संदेह आधुनिक काल में सिनेमा मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

सरकस और कार्नीवाल भी सर्वसाधारण का मनोरंजन करते हैं। विचित्र और रोचक बातो को देखकर दर्शक का मन प्रसन्न होता है। मोटर-साइकिल का गोले मे दौड़ना, बन्दर का साइकिल चलाना, मनुष्य का जलती हुई आग में कूदना, सिह और मनुष्य का लड़ना, तार पर साइकिल चलाना, भागते हुए घोडे पर शीर्षासन लगाना, सिह और बकरे का एक साथ पानी पीना आदि दृश्य मनोविनोद की सामग्री जुटाते हैं। इनके साथ-साथ लौटरी मिलने की अभिलापा तथा मिलने पर प्राप्त आनन्द मनोरंजन को दुगुना कर देते हैं। यह मानव-स्वभाव की विशेषता है कि आश्चर्यजनक वस्तुएँ उसे आनन्द देती है। जब हम बाजीगर के चकित करने वाले खेलो को देखते है तब खेल के स्थान को छोड़ने की हमारी इच्छा नहीं होती। हमारा मन वहीं रम जाता

है। इसी प्रकार सरकस और कार्नीवाल हमे अचम्भित करके प्रसन्न करते हैं।

शतरंज, ताश, चौपड़ आदि घर के भीतर खेले जाने वाले खेल (Indoor games) भी आजकल मन-बहलाव के अच्छे साधन हैं। यह देखा गया है कि शतरंज के खिलाड़ी खेल में इतने मस्त हो जाते हैं कि भोजन, निद्रा और काम-काज को भी भूल जाते है। स्व० प्रेमचन्दजी ने अपनी "शतरंज के खिलाड़ी" शीर्षक कहानी मे बतलाया हैं कि शतरंज के खेल मे मस्त होकर दो व्यक्तियो ने सब कुछ भुला दिया और बातो-बातो मे ही झगड़कर एक दूसरे के प्राण लिए। ताश और चौपड़ भी अच्छे खेल हैं पर ये शतरंज की समानता नहीं कर सकते। यदि शतरंज रानी है तो ताश और चौपड़ उसके दास और दासी हैं। बैडमिंटन, पिंगपोंग आदि कई अँगरेजी खेल भी बड़े रोचक होते हैं।

क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल, वौलीबॉल, टैनिस इत्यादि मैदान के खेल (Outdoor games) मनोरंजन भी करते है और इनसे शरीर का व्यायाम भी होता है। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों को प्रायः ये ही खेल खिलाए जाते हैं। विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार अपने व्यायाम तथा मनोरंजन के लिए इन्हीं मे से कोई चुन लेता है। खेलनेवालो को तो ये खेल आनन्द देते ही है दर्शकों को भी इनसे विनोद मिलता है। जब कभी मैच होता है तब सैकड़ो दर्शक उसे देखने के लिए एकत्रित हो जाते है। बीच-बीच में वे अपने हर्ष को करतल-ध्वनि द्वारा प्रकट करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनोरंजन के अन्य साधनो मे ये खेल इसलिए अच्छे कहे जा सकते हैं कि इनसे दो कार्य सिद्ध होते है। शारीरिक व्यायाम होता है और मनोविनोद भी होता है।

उपन्यास और कहानी, साहित्य के ये अंग भी मनोरंजन की सामग्री जुटाते हैं। आजकल इनकी बहुत भरमार देखी जाती है।

प्रति मास अनेको नए नए उपन्यास निकलते है और हाथों हाथ बिक जाते है। यही दशा कहानियो की है। भारतवर्ष में मनुष्य को बचपन से ही कहानी के प्रति प्रेम हो जाता है। बालक को उसकी माता, बूढ़ी दादी, नानी आदि स्त्रियाँ कहानी सुनाया करतीं है। यही प्रेम बड़े होने पर बना रहता है। मनुष्य समाचार-पत्रो, मासिक-पत्रों अथवा पत्रिकाओं और पुस्तको मे कहानियाँ पढ़कर अपने इस प्रेम को तृप्त करता है। आजकल पत्र-पत्रिकाएँ कहानियो से बेतरह भरी रहती है। कविता से भी मनोरंजन होता है। आजकल कवि सम्मेलनों की खूब धूम रहती है।

मेले और तमाशे भी मनोरंजन के अच्छे साधन है। कहीं भी छोटे से छोटा मेला होगा अनेक दर्शक उसे देखने पहुँच जायँगे। क्यो ? इसलिए कि वहाँ नई नई वस्तुएँ देखने को मिलेंगी जिनसे मन बहलेगा। बाजीगर, रीछ, बन्दर, नट आदि के तमाशे जन-साधारण को पर्याप्त आमोद-प्रमोद देते है। पशु-पक्षियो का संग्रह और प्राकृतिक दृश्य भी मन को प्रसन्न करते हैं।

सारांश यह है कि आधुनिक काल मे मनोरंजन के अनेक साधन उपलब्ध हैं और विज्ञान इन साधनो मे वृद्धि करने के भरसक प्रयत्न कर रहा है। मनुष्य अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार उनमे से कुछ चुन लेते हैं जिससे उनके जीवन में मिठास आ जाता है। यदि किसी व्यक्ति के पास कोई मनोरंजनकारी वस्तु अथवा सामग्री न हो तो उसका जीवन भार-स्वरूप हो जाय, उसका जीवन कटु हो जाय, इसमें सन्देह नही। मनोरंजन के साधन जीवन-यात्रा के लिए सम्बल-स्वरूप है।

वर्षा ऋतु

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—भीषण गरमी और वर्षा का प्रथम दिन

(२) वर्षा ऋतु में प्राकृतिक दृश्य

(३) वर्षा ऋतु में मनुष्यों की दशा

(४) वर्षा ऋतु की भयावनी रात्रि

(५) वर्षा से लाभ

(६) वर्षा से हानियाँ

(७) उपसंहार—सारांश

असाढ़ का महीना है। वही सूर्य भगवान जिन्होंने शीतकाल में जीवधारियों की प्राण-रक्षा की थी, आज अपने भीषण-ताप से उन्हें जला रहे हैं। भूमि अत्यन्त गरम है। उससे अग्नि की लपटें उठ रही हैं। वसन्त की शीतल और सुगन्धित वायु लू में परिणित हो गई है। पेड़-पौधे झुलसे हुए हैं। पशु-पक्षी प्रचंड धूप से त्राण पाने के लिए वृक्षों की छाया में जा छिपे हैं। मनुष्य व्याकुल है। कोई शीतलता के लिए अपने भवन में उशीर की टट्टियाँ लगाता है तो कोई लू से बचने के लिए खिड़कियों और दरवाज़ों पर पर्दे डालता है। कोई अपने कमरे में बिजली का पंखा लगाता है तो कोई बर्फ, शर्बत आदि पान करता है। सभी शीतोपचार में लगे हुए हैं। गरमी की तीव्रता से नदी, नाला, तालाब, झील, समुद्र आदि जलाशयों का जल भाप बनकर उड़ रहा है। प्रकृति में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी सूर्यानल से संतप्त होकर हाँफ रही है। तात्पर्य यह कि प्रकृति का प्रत्येक अङ्ग दुःखी है। वर्षा ऋतु के पूर्व ग्रीष्म ऋतु का दुःखद अनुभव यह शिक्षा देता है कि सुख से पहले दुःख का सहना अनिवार्य है। जब गरमी की हद हो जाती है, जब ऊमस पड़ने लगती है, तब आकाश काले-काले

मेघों से आच्छादित हो जाता है और मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी जीवधारी आशा-मग्न हो जाते हैं। मेघों की गड़गड़ाहट में उन्हे वाद्य-यन्त्रों की मधुर ध्वनि के समान आनन्द आता है। मयूर हर्षातिरेक में नाच उठता है। चातक "पिउ पिउ" की रट लगाने लगता है। इस प्रकार के सुन्दर दृश्य के मध्य जल-वर्षा आरम्भ होती है। वर्षा का प्रथम दिन बड़ा ही मनोरंजक होता है। उस दिन धरती से एक प्रकार की सुगन्धि निकलती है। वृक्षों के धूल धूसरित पत्ते धुलकर स्वच्छ हो जाते हैं। चारों ओर जल ही जल दिखलाई देता है। छोटे-छोटे गड्ढे जल से भर जाते हैं। गरमी की प्रचंडता दूर हो जाती है। वायु ठंडी हो जाती है। सभी जीवों मे नवीन जीवन का सा संचार हो जाता है।

वर्षा ऋतु मे प्रकृति अत्यन्त सुहावनी लगती है। यद्यपि वसंत ऋतु में उसका रूप कम आकर्षक नहीं होता तो भी उसके मुख पर वर्षा ऋतु की सी छटा नहीं देखी जाती। प्रकृति हरी साड़ी पहन लेती है। पेड़-पौधो के पत्तो की नोको पर वर्षा के जल-बिन्दु मोती के समान झलकते है। पक्षी जिस समय उन जल-बिन्दुओं को अपनी चोचो से पीते है उस समय का दृश्य मन को मुग्ध कर लेता है। वे अपने कल-रव से वनस्थली को गुञ्जायमान् करते हैं। कोयल की पीयूषवर्षी 'कुहू कुहू' और मयूर का नृत्य हृदय को हर लेता है। ग्वालो की जलक्रीड़ा बड़ी अच्छी लगती है, और हिडोलों पर झूलती हुई सुन्दरियो का मधुर गान श्रवणों में अमृत उँडेलता है। अनेक प्रकार के रङ्ग बिरङ्गे पुष्प उद्यान और वनस्थली की शोभा बढ़ाते हैं तथा अपनी सुगन्ध से शीतल वायु को सुगन्धित करते है। हरी-हरी घास पर रक्तवर्ण वीर-बहूटियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो मरकतमणि की चद्दर पर माणिक टके हों। हरे-हरे भूधरो को स्पर्श करते हुए काले मेघों में श्वेत बगलो और हरे तोतों की उड़ती हुई पंक्तियाँ अपूर्व मनो-

हारिणी है। रात्रि के सूचीभेद्य अन्धकार के समय श्याम मेघों में चमकती हुई चंचला और इधर उधर उड़ते हुए खद्योत बड़े मनोहर लगते हैं। दादुरों की निरन्तर ध्वनि संगीत की योजना करती हैं। छोटी छोटी नदियाँ हर्ष से उमड़ी पड़ती है। सरोवरों में रक्ताभ कमल-दल छितराये हुए हैं। उद्यानों में रसाल और जम्बू के वृक्ष फल-भार से झुके हुए है। वर्षा की मूसलधार झड़ी से उनके फल टूट-टूट कर टपटप करते हुए धरती पर गिरते हैं। कुञ्जों की छटा ही निराली है। मंजुल लतिकाये एक दूसरी मे लिपट कर वायु के साथ अठखेलियाँ करती है।

वर्षा मे प्रकृति ही आनन्दोन्मत्त नहीं होती मनुष्य भी उल्लास से भर जाते हैं। शीतल वायु, चारो ओर की हरियाली, पुष्पों की सुगन्ध, मेघो की गर्जना, बिजली की चमक, खद्योत का प्रकाश, वर्षा की झड़ी आदि वस्तुएँ उसके हृदय को उद्दीप्त करती हैं। यही कारण है कि कवियो ने वर्षा ऋतु मे वियोगिनी की दुर्दशा का खूब चित्रण किया है। देखिए एक वियोगिनी क्या कहती हैं :—

भा भादो दूभर अति भारी। कैसे भरो रैनि अँधियारी॥
मन्दिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा॥

अथवा

दूरि जदुराई, 'सेनापति' सुखदाई देखौ
आई रितु पाउस, न पाई प्रेम-पतियाँ,
धीर जलधर की, सुनत धुनि धरकी, है
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की, हिये मै आनि खरकी तू
मेरी प्रानप्यारी यह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की,लाल मन-भावन की
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

सचमुच पावस ऋतु मे हृदय में एक प्रकार की उमंग उठती है। गॉवो मे मेघ-गर्जन के समय अल्हैत आल्हा गाते हैं। कोई मनुष्य मल्हार गाता है। कोई हारमोनियम बजाता है। कोई ग्रामोफोन सुनता है। इस प्रकार तरह-तरह के आमोद-प्रमोदों मे लोग निमग्न रहते हैं।

वर्षा ऋतु की रात्रि बड़ी भयावनी होती है। चारों ओर घोर अन्धकार छा जाता है। मेघो की गड़गड़ाहट तोपो की भीषण ध्वनि के समान प्रतीत होती है। सब ओर सन्नाटा हो जाता है। सर्प, बिच्छू आदि विषैले जीव-जन्तुओं का भय रहता है। रात्रि के समय जोर की वर्षा और तेज वायु भयंकर मालूम होती है। द्रुत गति से दौड़ती हुई और गंभीर नाद करती हुई नदी भी भयावह ज्ञात होती है। झिल्ली की झनकार भी अच्छी नहीं लगती।

वर्षा से अनेक लाभ हैं। हमारा देश कृषिप्रधान है और यहाँ वर्ष भर प्रवाहित रहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ भी कम है। अतः वर्षा के जल पर ही यहाँ के अधिकांश कृपको की खेती निर्भर है। यदि किसी वर्ष वर्षा कम होती है तो हमारे देश के अनेक किसान भूखे मरते हैं। वर्षा से मनुष्यो को तो अनाज मिलता ही है पशुओ को भी घास मिलती है। पक्षियो के लिए भी वर्षा असंख्य कीड़े-मकोड़े रूपी भक्ष्य उपस्थित करती है। कुआँ, नदी, तालाब आदि जलाशयो का जल भी वर्षा की देन है। यदि वर्षा न हो तो किसी भी जलाशय मे जल नहीं रह सकता, जिसका परिणाम यह होगा कि जीव-जन्तु, पेड़-पौधे सभी नष्ट हो जाएँगे। ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड ताप को दूर करके जीवधारियो को प्रफुल्लित करना वर्षा का ही काम है। प्यास से तड़पती हुई भू-माता को पानी पिलाना वर्षा का ही काम है। हरियाली, रंग-बिरंगे पुष्प, कोयल की मधुर कूक, शीतल-सुगन्धित वायु आदि प्रकृति के आकर्षक अंगों द्वारा मनोरंजन करना वर्षा का ही काम है।

विश्व मे विधाता ने कोई वस्तु निर्दोष नहीं रची है। प्रत्येक वस्तु मे जहाँ गुण होते हैं वहाँ दोष भी होते हैं। कोमल और सुगन्धित कुसुम मे कीट देखे जाते हैं। सुधाधर मे काले धब्बे देखे जाते हैं। इसी प्रकार वर्षा ऋतु मे जहाँ अच्छाइयाँ हैं वहाँ बुराइयाँ भी है। इस ऋतु में डाँस, मच्छर आदि विषैले जीव-जन्तु प्रचुरता से उत्पन्न होते हैं जिनसे बहुत कष्ट होता है। यह ऐसा समय होता है जब जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। भोजन कठिनता से पचता है। फल यह होता है कि वर्षा में अनेक रोग फैल जाते है; जैसे—मलेरिया, हैजा आदि। इन रोगो से अनेक मनुष्य मर जाते हैं। पशुओ पर भी रोगो का प्रकोप होता है और उनमे से बहुत से मरते हैं। वर्षा ऋतु मे हमारे गाँव भयानक रूप धारण करते है। स्थान स्थान पर कीचड़ हो जाने से पग भर चलना भी दूभर हो जाता है। कोई भाग्यशाली ही बिना रपटे हुए किसी गली को पार कर सकता है। वर्षा के दिनो मे गाँव मे रात्रि का सोना कितना कठिन है यह तो वही जानते हैं जिन्होने इसका अनुभव किया है। कभी-कभी अत्यधिक वर्षा से बहुत हानियाँ होती हैं। खेती गल जाती है, मकान गिर पड़ते हैं, सडकें टूट जाती है, नदियो मे बाढ आ जाती है, सैकड़ो मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है और मवेशी बह जाते है। कभी-कभी बिजली गिर कर जीव जन्तुओ की मृत्यु कर देती है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्षा ऋतु मे अन्य ऋतुओ की अपेक्षा अधिक मनुष्य मरते हैं। जिन मनुष्यो के पास टूटे-फूटे घर हैं उन्हें सदैव यह चिन्ता रहती है कि कहीं घर गिर न जाँय।

सारांश यह है कि यद्यपि वर्षा से कई हानियाँ होती हैं तो भी वे उसके लाभों की तुलना में नहीं ठहर सकतीं। यदि लाभो को हम समुद्र कहें तो हानियाँ को जल-बिन्दु ही कह सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्षा सारी सृष्टि को जीवन प्रदान करती

है। सच पूछा जाय तो उसका सृष्टि पर जितना ऋण है उसे अंकित करना लेखनी की शक्ति के बाहर है।

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी सर्वप्रियता

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—तुलसीदासजी की जन्म के समय की परिस्थिति
(२) तुलसीदासजी का जन्म और बाल्य-काल
(३) शिक्षा-दीक्षा और विवाह
(४) सन्यास और भ्रमण
(५) काव्य रचना
(६) मृत्यु
(७) तुलसीदासजी की सर्व-प्रियता—
　(क) कविता, (ख) भक्ति और (ग) समाज-सुधार
(८) उपसंहार—हिन्दू-जाति पर तुलसीदासजी का ऋण

भारतवर्ष में मुसलमानो का आधिपत्य पूर्णतः स्थापित हो जाने पर हिन्दुओ के हृदय से गारव और आत्माभिमान के भाव नहीं रह गए। कट्टर और धार्मिक असहिष्णु मुसलमान हिन्दुओं के धर्म पर आक्षेप करते थे, उन पर अत्याचार करते और पराधीन हिन्दू दीन बने हुए सब कुछ सह लेते थे। वस्तुतः हिन्दुओ का जीवन निराशामय था। उनके लिए उसमे कोई माधुर्य नहीं रह गया था। संसार में उनके आँसू पोछनेवाला कोई नही था। गज की एक ही पुकार पर पैदल दौड़ आनेवाला परमेश्वर अब उनकी सहस्रों पुकारों को नहीं सुनता था। हिन्दुओ की ऐसी दुर्दशा के समय गोस्वामी तुलसीदास का भारतवर्ष में आविर्भाव हुआ जिन्होने हिन्दुओं के भग्न होते हुए हृदय को सँभाला और उन्हें दुष्ट-दलनकारी भगवान् राम की झाँकी कराकर उनके जीवन को सरस बना दिया। साथ ही अपनी अलौकिक प्रतिभा से

हिन्दी-साहित्य को प्रौढ़ता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया, उसके कलेवर को देदीप्यमान रत्नों से अलंकृत किया।

गोस्वामी तुलसीदास ने संवत् १५५४ मे श्रावण शुक्ल ७ को बाँदा जिले के अन्तर्गत राजापुर नामक गाँव मे जन्म धारण किया। इनके जन्म के सम्बन्ध मे यह दोहा मिला है—

पन्द्रह सौ चौअन विषै कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यौ शरीर॥

इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी माना जाता है। ये सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनका जन्म का नाम रामबोला था। ये जब उत्पन्न हुए तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे और इनके मुँह में पूरे ३२ दाँत भी थे। जन्म के समय ये रोये नहीं, बल्कि इनके मुख से 'राम' शब्द निकला। पिता ने बालक को राक्षस समझा और इसकी उपेक्षा की। पर माता ने उसे अपनी मुनिया नामक दासी को पालन-पोषणार्थ दे दिया। जन्म के पाँच दिन पश्चात् माता का स्वर्गवास हो गया। पाँच वर्ष पीछे मुनिया भी मर गई। तब बालक के पिता के पास बालक ले जाने का संवाद भेजा गया पर उन्होंने उसे लेना स्वीकार न किया। पिता के इस प्रकार त्याग दिए जाने पर बालक तुलसीदास लोगों के द्वार-द्वार भटकता फिरा।

दो वर्ष तक बालक तुलसीदास की यही दशा रही। इसके अनन्तर बाबा नरहरिदास ने उसे अपने पास रख लिया और शिक्षा-दीक्षा दी। ये ही गोस्वामीजी को रामचन्द्रजी की कथा सुनाया करते थे। इन्हीं के साथ वे काशी गए और इनके गुरु स्वामी रामानन्दजी के निवास स्थान पंचगंगा घाट पर रहने लगे। वहाँ पर पास ही एक विद्वान् महात्मा शेषसनातनजी रहते थे जिन्होंने तुलसीदासजी को वेद पुराण, दर्शन-शास्त्र, इतिहास आदि पढ़ाया। कुछ समय पश्चात् नरहरिदास वहाँ से चित्रकूट

चले गए और तुलसीदासजी वहीं विद्या पढ़ते रहे। सनातन-शेष जी की मृत्यु के बाद १५ वर्ष तक अध्ययन करके गोस्वामीजी अपनी जन्म-भूमि राजापुर को लौट आए। यहाँ इनके परिवार मे कोई नहीं रहा था। गाँव के लोगो के आग्रह से तुलसीदासजी ने यहां रहना निश्चित किया। ये रामचन्द्रजी की कथा में मग्न रहा करते थे और लोगों को उसका रसास्वादन कराया करते थे। एक बार यमुना पार के एक ग्राम के रहनेवाले भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण राजापुर को स्नान करने आये। उन्होंने तुलसीदासजी की कथा सुनी। गोस्वामीजी की योग्यता और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्होंने अपनी लड़की इन्हें व्याह दी। जनश्रुति इन ब्राह्मण को दीनबन्धु और लड़की को रत्नावली नाम से जानती है।

तुलसीदासजी अपनी पत्नी में इतने अनुरक्त रहते थे कि एक बार इनकी अनुपस्थिति में उसके नैहर चले जाने पर ये उसका वियोग न सह सके और आधी रात मे ससुराल जाकर उससे मिले। स्त्री इनके इस कार्य से अत्यन्त क्षुब्ध होकर इन्हे फटकारती हुई बोली—

अस्थि-चर्म-मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥

यह बात तुलसीदासजी को ऐसी लगी कि ये तुरन्त काशी आकर संन्यासी हो गए। वहाँ से अयोध्या जाकर चार महीने रहे। फिर तीर्थ-यात्रा के लिए निकले और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ से ये कैलाश और मानसरोवर तक चले गए। इस यात्रा में लगभग १६ वर्ष लग गए। अंत में चित्रकूट आकर ये बहुत दिनो तक रहे।

संवत् १६१६ मे चित्रकूट में सूरदासजी इनसे मिलने आए और यहीं इन्होने 'गीतावली' तथा 'कृष्ण गीतावली' की रचना की। इसके पीछे अयोध्या जाकर संवत् १६३१ मे इन्होंने 'राम-

चरितमानस' का प्रारम्भ किया और उसे २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश विशेषत किष्किंधाकांड काशी मे लिखा गया। इन तीन ग्रन्थो के अतिरिक्त नौ ग्रन्थ और गोस्वामीजी के प्रसिद्ध है। वे ये है—दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा, प्रश्नावली, विनयपत्रिका, रामलला-नहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण और वैराग्यसंदीपिनी।

संवत् १६८० मे श्रावण वदी ३ को गोस्वामीजी का शरीरांत हुआ, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—

संवत सोरह से असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामीजी की सर्वप्रियता के कारण इनकी कविता, भक्ति और समाज-सुधार है। कविता की दृष्टि से हिंदी-साहित्य में इनका स्थान सर्वोच्च है। इनकी कविता मे प्राय: हृदय के सभी भाव चित्रित हुए हैं। मानव-हृदय पर जैसा विस्तृत अधिकार इन महानुभाव का देखा जाता है वैसा हिन्दी के किसी भी अन्य कवि का नही। रामचन्द्रजी की कथा के मार्मिक स्थलों के हृदयग्राही वर्णनों से इनकी भावुकता का परिचय मिलता है। बाहरी दृश्यो के चित्रण में भी इन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। इस दृष्टि से भी हिन्दी के अन्य कवियो से ये बहुत ऊँचे उठ जाते है। भिन्न-भिन्न व्यापारो मे संलग्न मनुष्यों की मुद्राओ और प्राकृतिक दृश्यो के चित्र बड़े सजीव उतरे हैं। इन्होने काव्य की सभी प्रचलित शैलियों मे अपनी रचनाएँ की हैं और उनमे पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कविता के बाहरी अंग अर्थात् उक्ति का अनूठापन, अलंकार और भाषा का जैसा सुन्दर रूप इनकी कविता में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-भाषा ब्रज और अवधी दोनो पर इनका समान अधिकार देखा जाता है। इनकी सी प्रौढ़, सुव्यवस्थित और शुद्ध भाषा बहुत थोडे कवि लिख सके है। हिन्दी में ऐसा

कोई कवि नहीं हुआ है जिसका भिन्न-भिन्न भाषाओं पर गोस्वामीजी के समान अधिकार रहा हो। सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामीजी का वर्णनीय विषय है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र को अपने काव्य का विषय बनाकर इन्होने अपनी वाणी से सुधा-धारा प्रवाहित की है और उसमें हिन्दू-जाति को स्नान कराके उसके दुःखो को दूर किया है।

कविता से गोस्वामीजी को जितनी लोकप्रियता मिली है उससे किसी अंश में भी कम भक्ति से नहीं प्राप्त हुई है। जो मनुष्य कविता के गुण-दोष विवेचन करना नहीं जानता वह भी इनकी भक्ति-भावना से मुग्ध है। इन्होने अपनी राम-भक्ति मे हिन्दू-धर्म के सब पक्षों का सामंजस्य करके शैवो, वैष्णवो, शाक्तो और कर्मठों के झगड़ो का अन्त किया है और धर्म को अधिक चलता बनाया है। 'विनयपत्रिका' मे इन्होंने गणेशजी, शिवजी, हनुमानजी, सूर्य भगवान्, देवीजी, भैरवजी आदि देवी-देवताओ की स्तुति करके अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है। 'रामचरित-मानस' मे तो यहाँ तक कह दिया है—

शिव द्रोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहुँ मोहि न भावै॥

गोस्वामीजी की भक्ति मे उदारता के साथ-साथ अनन्यता भी पाई जाती है। 'दोहावली' की 'चातक-चौतीसी' और विनय-पत्रिका' के कतिपय पद इस बात के परिचायक है। इनकी भक्ति मर्यादा की सर्वदा रक्षा करती है। मर्यादा उसका प्रधान अंग है। काकभुशुण्डि और शिवजी के श्राप का मामला इस तथ्य का उदाहरण है।

वास्तव मे गोस्वामीजी की सबसे अधिक सर्वप्रियता का कारण है इनका समाज-सुधार। इनसे पहले हिन्दू-समाज की बड़ी हीन दशा थी। हिन्दू वर्णाश्रम-धर्म को छोड़ बैठे थे। वेद-शास्त्रो की निन्दा होती थी। विद्वानो, सन्तो और पूज्य व्यक्तियों

का निरादर होता था। नए-नए मत बढ़ रहे थे। उधर मुसलमानों के अत्याचार भी हो रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था कि हिन्दू-समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। गोस्वामीजी ने ऐसी भयंकर परिस्थिति में उत्पन्न होकर हिन्दू-समाज को बचाया, उसे नया जीवन प्रदान किया। वर्णाश्रम-धर्म की फिर से प्रतिष्ठा हुई। वेद शास्त्रों का महत्व जन-साधारण को ज्ञात हुआ। धर्म के वास्तविक रूप से विमुख करनेवाले मतो का उन्मूलन किया गया। दुष्ट-दलनकारी भगवान राम का मंगलमय रूप दिखाकर जनता मे आशा और शक्ति का संचार किया गया। 'रामचरितमानस' सरीखा अद्वितीय ग्रन्थ रचकर गोस्वामीजी ने हिन्दू-जाति का कल्याण कर दिया। उसमे इन्होंने समाज का आदर्श-रूप उपस्थित किया। वह इतना लोकप्रिय हुआ है कि आज तक प्रत्येक हिन्दू का कंठहार बना हुआ है। उसने समाज का कितना सुधार किया है यह बतलाना शब्द की शक्ति से परे है। आज यह उसी पवित्र ग्रन्थ का प्रभाव है कि प्रत्येक हिन्दू महत्व पर श्रद्धा रखता है, सन्मार्ग में पैर रखता है, विपत्ति मे धैर्य रखता है, पापो से घृणा करता है और राम नाम को कभी नही भूलता।

अन्त मे यही कहना है कि हिन्दू-समाज पर गोस्वामीजी का अपार ऋण है। इन्होंने हिन्दू-समाज के लिए जो कुछ किया है उसे सहस्रो उपदेशक भी नहीं कर सकते थे। हिन्दी, हिन्दू-धर्म और हिन्दुओ का कल्याण करनेवाले गोस्वामीजी धन्य हैं और धन्य है वह जननी जिसके गर्भ से ऐसी महान् आत्मा आविर्भूत हुई।

बेसिक शिक्षा

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—वर्तमान शिक्षा-पद्धति से असन्तोष

(२) महात्मा गांधी की शिक्षा-योजना
(३) बेसिक शिक्षा की प्रधान विशेषताएँ
(४) बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की उल्लेखनीय बातें
(५) उपसंहार—बेकारी एवं ग्रामों की अशिक्षा का निराकरण

वर्तमान काल मे हमारे देश मे जिन अनेक बातों से असन्तोष फैला हुआ है उनमे एक शिक्षा-प्रणाली भी है। आजकल हमारी शिक्षा—पद्धति के विरुद्ध देश के कोने-कोने में आवाज उठाई जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि इससे समाज को कितनी हानि हुई है, इससे देश कितना नीचे गिरा है। शिक्षित बेकारो की भीषण समस्या का उत्तरदायित्व भी इसी पर है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का जन्म जिस ध्येय (सरकारी दफ्तरो मे क्लर्कों की भरती) को लेकर हुआ था उसकी पूर्ति आवश्यकता से अधिक हो गई है अब परिवर्तित देश-कालानुसार शिक्षा का ध्येय और प्रणाली दोनो मे उलट-फेर की आवश्यकता है, इस बात का प्रत्येक भारतीय अनुभव करता है।

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी की दृष्टि इस दूषित शिक्षा-पद्धति पर बहुत दिनो से पड़ रही थी, पर वे उपयुक्त समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। कांग्रेस मंत्रि-मंडलो की स्थापना हो जाने पर महात्माजी ने अपने शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी विचारों को जनता के सम्मुख उपस्थित किया। उनका ध्यान विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा की ओर गया और उन्होंने अपने कर-कमलो से एक शिक्षा-योजना का सूत्रपात किया जिसे 'वर्धा-शिक्षा-योजना' कहते है। हमारी सरकार ने इस शिक्षा-योजना में प्रान्तीय आवश्यकताओ के अनुसार थोड़ा बहुत उलट-फेर करके उसे संयुक्त-प्रान्त के लिए स्वीकार किया है और उसे 'बेसिक शिक्षा' के नाम से विभूषित किया है। बेसिक शिक्षा की प्रधान विशेषताएँ चार हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) ६ वर्ष की अवस्था से १४ वर्ष की अवस्था तक की

प्रत्येक बालक-बालिका के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का विधान किया गया है।

(२) शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी रक्खा गया है।

(३) शिक्षा मे दस्तकारियो को स्थान दिया गया है।

(४) दस्तकारियो अथवा बालक-बालिका के घरेलू या सामाजिक वातावरण द्वारा शिक्षा-प्रदान की व्यवस्था की गई है। अर्थात् विभिन्न विषयो के ज्ञान का आधार बच्चे का दैनिक जीवन अथवा दस्तकारी रक्खी गई है। इसे अनुबन्ध या समन्वय (Correlation) का सिद्धान्त कहते हैं।

इन्हीं चार आधार स्तम्भो पर बेसिक शिक्षा का भवन खड़ा किया गया है। इसके पाठ्यक्रम में कुछ बाते उल्लेखनीय है। एक बात तो अँगरेजी भाषा का बहिष्कार है और दूसरी नागरिक-शास्त्र के अध्ययन का स्थान है। दस्तकारी की शिक्षा को दो वर्गों मे विभाजित कर दिया गया है—अनिवार्य दस्तकारी और वैकल्पिक दस्तकारी। अनिवार्य दस्तकारी के लिए कताई और कृषि या बागबानी का साधारण ज्ञान रक्खा गया है। वैकल्पिक दस्तकारी के लिए (१) कताई-बुनाई (२) कृषि (३) दफ्ती, लकड़ी और धातु का उद्योग (४) चमड़े का धन्धा (५) मिट्टी का काम, आदि मे से किसी एक का अध्ययन रक्खा गया है। बालक-बालिकाओ का पाठ्यक्रम समान रक्खा गया है। हाँ, बालिकाओ को गृहस्थी के धंधो का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। गाँवो मे १० वर्ष की आयु तक और नगरो मे ६ वर्ष की अवस्था तक बालिकाओं को बालको के साथ ही पढ़ने की व्यवस्था की गई है। तत्पश्चात् उनके लिए पृथक् स्कूलो की व्यवस्था की गई है।

बेसिक शिक्षा में सर्व प्रथम स्थान दस्तकारी की शिक्षा को मिला है। सच पूछिए तो नवीन शिक्षा रूपी काया का मेरु-दंड ही इसको माना गया है। आजकल के शिक्षा शास्त्री प्रारम्भिक शिक्षा मे दस्तकारी को सर्वोच्च स्थान देते है। उनकी

धारणा है कि बालको के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास के लिए इसका बड़ा महत्व है। यह तो हुआ दस्तकारी का शिक्षा-सम्बन्धी महत्व। अब जीविका सम्बन्धी लीजिए। विभिन्न दस्तकारियो की शिक्षा प्राप्त करके बालक बड़े होकर उन्हें जीविकोपार्जन का साधन बना सकते है।

दस्तकारी के ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयो का उससे अनुबन्ध या समन्वय (Correlation) बेसिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता है। अनुबन्ध क्या है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए हमें गणित पढ़ाना है। इस विषय का अनुबन्ध हम कताई से कर सकते हैं। जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि की प्रक्रियाएँ लट्टी या गुंडी बनाना, कताई की मजदूरी निकालना, सूत का नम्बर (Count) निकालना आदि द्वारा भली-भाँति पढ़ाई जा सकती हैं। अनुबन्ध का यह आशय नही है कि किसी विषय का अध्ययन कराते समय किसी दस्तकारी को ढूँढ़कर उसके साथ विषय का सम्बन्ध भिड़ाया जाय, वरन् यह है कि बालक को किसी दस्तकारी के करते समय भूगोल, गणित आदि जिन विषयो की जानकारी की आवश्यकता पड़े उनका ज्ञान उसी दस्तकारी द्वारा कराया जाय। बालक के घरेलू अथवा सामाजिक वातावरण से भी विषय का अनुबन्ध किया जा सकता है। प्रश्न उठता है कि अनुबन्ध की क्या आवश्यकता है? बच्चे की यह प्रकृति होती है कि वह व्यावहारिककार्य करना पसंद करता है और अव्यावहारिक कार्य से घृणा करता है। अतः यदि उसे व्यावहारिक कार्य द्वारा अव्यावहारिक बातो का ज्ञान प्रदान किया जाय तो वह उसे अच्छी तरह ग्रहण कर सकेगा। दस्तकारी द्वारा गणित आदि विषय पढ़ाना ऐसा ही करना है। इस युक्ति (अनुबन्ध) को हम कुनाइन की गोली पर शक्कर लपेट कर खिलाना कह सकते है।

इस प्रकार विषयो का ज्ञान कराने से तीन प्रधान लाभ होगे। एक तो बालक का मन विषय के ज्ञान प्राप्त करने मे लगेगा। दूसरे जो कुछ पढ़ाया जायगा वह उसकी समझ में भलीभाँति आ जायगा। आजकल की भाँति बिना समझे-बूझे रटने की आवश्यकता कभी न पड़ेगी। इसके अतिरिक्त शिक्षा का सम्बन्ध उसके दैनिक जीवन से हो जायगा। आजकल की शिक्षा किसी प्रकार भी बालक के दैनिक जीवन से सम्बन्धित नहीं है। यहाँ एक बालक की कहानी याद आ जाती है जिसे अध्यापक ने बतलाया कि 'कन्द' का अर्थ 'मोटी जड़' है। पर उसे यह नहीं बतलाया गया कि 'सकरकन्द' भी एक कन्द है। फलतः वह यह कभी नहीं समझ सका कि 'सकरकन्द' जिसको वह नित्य खाता है कन्द ही है।

दस्तकारी के पश्चात् दूसरा स्थान मातृ-भाषा की पढ़ाई-लिखाई को मिला है। अब तक मातृ-भाषा की पढ़ाई-लिखाई की सुव्यवस्था न थी। विशेषकर अँगरेजी स्कूलो मे तो उसकी दुर्दशा ही रही और वर्नाक्यूलर स्कूलों मे भी मातृभाषा-शिक्षा की दशा संतोषजनक नही रही। बड़े हर्ष का विषय है कि अब हमारे नेताओं का ध्यान मातृभाषा की ओर गया है। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों पर मातृभाषा का ज्ञान बच्चे की वृद्धि के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि माता का दूध। जाकिर हुसैन कमेटी ने भी मातृभाषा के महत्व को इन शब्दो मे स्वीकार किया है— The proper teaching of the mother tongue is the foundation of all education अर्थात् मातृभाषा की समुचित शिक्षा ही सब प्रकार की शिक्षा का आधार है।

नागरिकता की शिक्षा को भी बेसिक शिक्षा मे महत्वपूर्ण स्थान मिला है। वास्तव मे इसकी हमारे देश में सबसे बड़ी आवश्यकता है। प्रचलित शिक्षा मे यह बडी कमी है कि बालक-

बालिकाओं-को नागरिक के अधिकार, कर्त्तव्यो आदि से परिचित नही कराया जाता, उनके हृदय में समाज-हित, समाज-सेवा के भावो की उत्पत्ति नही कराई जाती।

सारांश यह है कि बेसिक शिक्षा सचमुच बड़ी ही अच्छी शिक्षा है। इससे बेकारी की भीषण समस्या तो हल होगी ही, साथ में ग्रामों की अशिक्षा का भी निवारण होगा। प्रत्येक बालक कोई-न-कोई उद्योग अथवा धंधा सीख जायगा जिससे वह अपनी जीविका उपार्जन कर सकेगा। आजकल गाँवों की अशिक्षा का एक प्रधान कारण यह है कि शिक्षा अरुचिकर है और ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। ग्रामीण जनता का प्रधान व्यवसाय खेती है। बेसिक शिक्षा में कृषि को सर्व प्रथम स्थान मिला है। अतः माता-पिता अपने बालकों को सहर्ष इस शिक्षा की प्राप्ति के लिए स्कूल भेजेंगे, क्योंकि उनके बालक पढ़कर उनके उद्योग को वैज्ञानिक ढंग से कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त बालकों को दस्तकारी से प्रेम होने के कारण स्कूल अपने घर के समान प्यारा लगेगा, आजकल की भाँति कारागृह की भाँति नहीं जहाँ उन्हे डंडो की मार खानी पड़ती है। ऐसी श्रेष्ठ शिक्षा से हमे पूर्ण लाभ उठाना चाहिए और इसके प्रचार मे तन, मन और धन से प्रयत्नशील होना चाहिए। निस्संदेह महात्मा गांधी के प्रौढ़ मस्तिष्क से प्रसूत यह शिक्षा-योजना हमारे बालकों तथा हमारे देश का कल्याण करेगी। इस समय हमको बेसिक शिक्षा का प्रचार करके उसे देश के कोने-कोने में फैलाना चाहिए, नहीं तो—

समय चूकि पुनि का पछिताने।
का वर्षा जब कृषी सुखाने॥

शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—भारतवर्ष में शिक्षा के माध्यम का विदेशी होना

(२) अँगरेजी द्वारा शिक्षा-प्रचार से हमारे देश को हानियाँ—

(क) भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात

(ख) ज्ञानोपार्जन और ज्ञान-प्रसार मे रुकावट

(३) मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा-प्रचार से लाभ—

(क) समय की बचत

(ख) योग्यता का बढ़ना

(ग) देश भर का शीघ्र सुशिक्षित हो सकना

(घ) मातृ-भाषा के साहित्य का भरापूरा होजाना

(ङ) भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सरक्षा

(४) उपसंहार—देश और समाज की उन्नति का मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा पर निर्भर होना।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति प्रायः विदेशी वस्तुओं से की जाती है, हमको विदेशी रंग में रँगा जाता है। सब प्रकार से हमारा सम्बन्ध विदेशी वस्तुओसे जोड़ा जाता है। शिक्षा को ही ले लीजिए। हमारे देश मे शिक्षा मातृ-भाषा द्वारा नहीं दी जाती। अर्थात् जिस प्रान्त मे जो भाषा बोली जाती है उस प्रान्त मे वह भाषा शिक्षा का माध्यम नहीं है। उसका माध्यम विदेशी भाषा अँगरेजी है। संसार मे भारतवर्ष के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा सभ्य देश हो जहाँ विदेशी भाषा में शिक्षा दी जाती हो। यह बात समझ में नही आती कि कोई देश किस प्रकार विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर उन्नति कर सकता है। ज्ञान-प्रसार मे किस प्रकार विदेशी भाषा मातृ-भाषा की अपेक्षा अधिक सफल हो सकती है? जिस भाषा को बालक स्तन के दूध के साथ माता से सीखता है उसी के द्वारा यदि उसको शिक्षित किया जाय, यदि उसको विविध विषयो का ज्ञान कराया जाय, तो वह सरलता से अपनी उन्नति कर सकता है। वास्तव मे मातृ-भाषा और शिक्षा का स्वाभाविक सम्बन्ध

पढ़े-लिखे न होने के कारण ज्ञान का भण्डार उनके लिए बन्द रहता है। इतने अधिक वर्षों में थोड़े से लोग अँगरेजी पढ़ पाए हैं। वे ही शिक्षित समझे जाते हैं। उन्होंने ही कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। शेष अशिक्षित बने हुए हैं। इसलिए ज्ञान के प्रसार में बाधा हो रही है।

मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा देने से क्या लाभ हो सकते हैं? यह तो स्पष्ट ही है कि मातृ-भाषा को सीखने में लोगों को कठिनाई नहीं पड़ती है क्योंकि बाल्यावस्था से ही उसके साथ उनका सम्बन्ध हो जाता है। बिना पढ़ाए भी बालक टूटी-फूटी मातृ-भाषा बोल ही लेता है। अतएव शिक्षा देने में आजकल की अपेक्षा बहुत कम समय लगेगा। जो विद्यार्थी आजकल २४-२५ वर्ष की आयु में शिक्षा समाप्त करता है वह १८-२० वर्ष की अवस्था में ही शिक्षित हो सकेगा। विद्यार्थियों को परदेशी भाषा सीखना कठिन होता है, विशेषकर अँगरेजी जैसी भाषा सीखना जो उनकी मातृ-भाषा से बिल्कुल नहीं मिलती। यह सोचने की बात है कि भारतवर्ष में बालक-बालिकाओं को कितना समय, कितना परिश्रम और कितनी शक्ति अँगरेजी सीखने में व्यर्थ लगानी पड़ती है। यदि उस समय, उस परिश्रम, उस शक्ति, को आवश्यक और उपयोगी ज्ञान की प्राप्ति में लगाया जाय तो हमारे देश की शीघ्र उन्नति हो सकती है।

मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा से विद्यार्थियों की योग्यता भी बढ़ जायगी। आजकल प्रायः देखा जाता है कि एम० ए० पास करने पर भी विद्यार्थी अपने विषय का पण्डित नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि विदेशी भाषा में लिखित विचार और बातें पूर्ण रूप से उसकी समझ में नहीं आतीं। पुस्तकों में कई स्थलों पर भाषा के भँवर में पड़कर विद्यार्थी तथ्य से भेंट नहीं कर पाता। अतः उसका ज्ञान अधूरा रहता है।

आजकल हमारे देश का अधिकांश भाग अशिक्षित है। प्रत्येक मनुष्य अँगरेजी नहीं पढ़ सकता क्योंकि अँगरेजी-शिक्षा बहु-मूल्य है और मनुष्य प्रायः गरीब है। बिना अँगरेजी पढ़े कैसे शिक्षित बना जाय ? यदि शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो तो उक्त कठिनाई नहीं रह जायगी। शिक्षा के लिये अधिक व्यय नहीं करना पड़ेगा। ऐसा होने से ज्ञान का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुल जायगा। देश का प्रत्येक व्यक्ति भगवती वीणापाणि के प्रसाद का पात्र हो सकेगा। चारों ओर जागृति हो जायगी। कुरीतियाँ, ढोंग, आडम्बर, अज्ञान, भय आदि चमगादड़ें ज्ञान-रूपी सूर्य के प्रकाश में न ठहर सकेंगी। भारतवर्ष में न्यूटन, अरस्तू, प्लैटो सरीखे अगणित महान मनुष्य पैदा होंगे। संसार में पुनः भारतवर्ष की कीर्ति-पताका फहरायगी। सभ्यता की दौड़ में वह सबसे आगे निकल जायगा।

यदि मातृ-भाषा मे शिक्षा दी जाया करे तो हमारे देश की सभी भाषाओं का साहित्य भरा-पूरा हो जाय। आजकल तो शिक्षा का माध्यम अँगरेजी होने के कारण विद्यार्थी अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ उसी के ज्ञान प्राप्त करने में जुटा देते हैं। अँगरेजी पर इतना जोर दिया जाता है कि विद्यार्थी अपनी मातृ-भाषा को भली-भाँति सीख भी नहीं सकता, उसके साहित्य को भरा-पूरा बनाने की तो बात ही क्या कहे ? कितने ही विद्यार्थी तो अँगरेजी को अधिक महत्व दिए जाने के कारण अपनी मातृ-भाषा का न सम्मान करते हैं न उससे प्रेम। यहाँ तक कि वे उसे घृणा की दृष्टि से देखते है। मातृ-भाषा बोलने मे शर्माते है। शुद्ध भाषा बोल भी नहीं सकते। परिणाम यह होता है कि देश-भाषाओं का साहित्य भली-भाँति विकसित नहीं होता, उसमे प्रौढ़ता नहीं प्राप्त होती और उसका आकार भी नहीं बढता। जब हमारे विद्यार्थियो से अँगरेजी का पल्ला छुड़ा दिया जायगा तब क्या कारण है कि स्वदेशी साहित्य उन्नति न करे ?

मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बना देने से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि भारतीय सभ्यता और संस्कृत की रक्षा हो जायगी। किसी भी देश के लिए अपनी सभ्यता खो देना आत्म-घातक सिद्ध होता है। सभ्यता की रक्षा प्राण देकर भी करनी चाहिए। यदि बच्चे आरम्भ से ही मातृ-भाषा पढ़ेंगे तो उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के भाव जड पकड़ जायँगे। वे भारतीय गौरव, भारतीय आदर्श और भारतीय रहन-सहन के भक्त होंगे। कभी उन पर विदेशी रंग न चढ़ेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे देश और समाज की उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि यहाँ की शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो जाय। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में जहाँ अन्य दोष हैं वहाँ माध्यम का दोष भी विद्यमान है। जब इस दोष का निराकरण होगा तभी हमारी उन्नति होगी। कहा भी है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

ऋतुराज वसन्त

रूप रेखा:—

(१) प्रस्तावना—शिशिर का अन्त और वसन्त का आगमन
(२) वसन्त में प्रकृति का रूप
(३) वसन्त में मनुष्यों की दशा
(४) होली का त्यौहार
(५) वसन्त और कवि
(६) उपसंहार—साराश

फागुन का महीना है, शिशिर ऋतु का अन्त हो रहा है। वह शीत जिसने मनुष्यों के हाथ पैर ठिठुरा दिये थे अब जा रहा

है। वह शीत जिसने अपनी भीषणता से सबको कँपा दिया था अब नष्ट हो रहा है। वह शीत जिसके कारण पशु-पक्षियो की जान पर आ बनी थी अब भाग रहा है। वह शीत जिसके कारण वृक्ष लतादि मुरझा गये थे अब विदा हो रहा है। उसकी बिदाई पर चराचर इस प्रकार प्रसन्न है जिस प्रकार अत्याचारी शासक के न रहने पर प्रजा। अब ऋतुराज वसन्त आ रहा है। उसके स्वागत के लिए वृक्ष और लताओ ने पत्र रूपी नए-नए वस्त्र धारण किए है और सरसों ने वसन्ती साड़ी पहनी है। पक्षी चह-चहाते हुए स्वागत-गान की योजना कर रहे हैं। दक्षिण-पवन सबको स्वागत-सम्मेलन का निमन्त्रण दे रहा है। कोकिल स्वागताध्यक्ष का आसन ग्रहण किए हुए है। सौरभ मंजरियो से और पेड़-पौधे पुष्पों से लदकर हर्ष प्रकट कर रहे है। बड़ा सुहावना समय है। न ठंडक है, न गरमी।

इस समय प्रकृति में अद्वितीय सौन्दर्य देखा जाता है। वसन्त ने उसे खूब सजाया है। सरसो पीले पुष्पों से सजकर मन को लुभाती है। सरोवरों मे विकसित कमल नेत्रो को बड़े सुन्दर लगते है। गुलाब के फूलों की भाँवरी भरते हुए भ्रमरों की गुँजार हृदय मे प्रविष्ट हो जाती है। वनस्थली मे लाल, नीले, गुलाबी, हरे, पीले और सफेद तरह-तरह के पुष्प देखकर हृदय उमड़ा पड़ता है। चम्पा, चमेली, केतकी आदि वृक्ष अपनी सुगंध से पवन को आमो-दित कर रहे है। अमराइयो मे आम मंजरियो से विभूषित हो जाते है। उनमे कूकती हुई कोयल श्रोता को मदोन्मत्त कर देती है। माधवी आदि लताएँ लहलहाती हुई अपना उल्लास प्रदर्शित करती हैं। पलास सिर से पैर तक रक्तिम वर्ण के पुष्पों से अलंकृत हो जाता है। वृक्ष नई-नई कोपलो से अपना पुलक प्रकट करते है। तरह-तरह के पक्षी अपने-अपने मधुर संगीत से कर्णेन्द्रियो मे अमृत उँडेलते है। शीतल और सुगन्धित दक्षिणी वायु मंद-मंद

बहकर जीवधारियो को मस्त कर देती है। चन्द्रमा का प्रकाश अत्यन्त स्वच्छ होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति के रूप पर मुग्ध होकर वह हर्ष मे पूर्णतया खिलखिलाता है। वसन्त मे प्रातःकाल और सायंकाल के दृश्य अत्यन्त आकर्षक होते हैं। उस समय प्रकृति की शोभा कई गुनी बढ़ जाती है। उद्यान और कुंज मे उस समय का घूमना मन को तो अनिर्वचनीय आनन्द देता ही है साथ मे स्वास्थ्यवर्द्धक भी होता है। वसन्त ऐसी ऋतु है कि उस समय प्रकृति मे चारो ओर आनन्द ही आनन्द देखा जाता है। चारों ओर एक नवीन जीवन का सा संचार हो जाता है। चारो ओर एक प्रकार की मादकता सी छा जाती है।

वसन्त में मनुष्य की दशा में भी पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। मानव हृदय मे उमंग उठती है, स्फूर्ति हो जाती है और छा जाती है एक प्रकार की मस्ती। शीतल और सुगन्धित वायु रंग-विरंगे कुसुमों की अवली, भ्रमरो की गुंजार, आमो की मंजरियो का सौरभ और कोयलो की कूक हृदय मे हूक उत्पन्न कर देती है। हृदय में प्रेम-भाव प्रबल हो जाता है। कामदेव अपने पुष्प-वाणो से मनुष्य, पशु-पत्ती आदि सभी प्राणियो को छेदने लगता है। वसन्त को कवियो ने "मदन-महीप का बालक" अथवा "काम का सखा" कहा है, जो ठीक ही है। यह वह समय है जब मनुष्य नाच-रंग, गाना-बजाना आदि आमोद-प्रमोद के साधनों में संलग्न रहते है और अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं।

इसी ऋतु में हिन्दुओ का प्रसिद्ध त्योहार होली मनाया जाता है। इस अवसर पर नाना प्रकार के गाने होते है और बाजे बजाए जाते हैं। क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध, सभी खेल-कूद में भाग लेते हैं। हास्य और विनोद के लिये तरह-तरह की युक्तियाँ की जाती है। नाना प्रकार के स्वाँग किए जाते हैं।

नाटकादि भी खेले जाते हैं। फाग की धूम रहती है और गुलाल की चारों ओर आँधी सी उड़ती है। रंग का पानी पिचकारियों द्वारा फेका जाता है। प्रत्येक मुख पर उल्लास की छटा देखी जाती है। कुछ वर्षों से इस मनोरंजक त्यौहार में कुछ गंदगी आ गई है। आज-कल मनुष्य धूल मिट्टी भी एक दूसरे पर फेंकते हैं। गाँवो में तो यह बहुत घृणास्पद हो गया है। कीचड़ और पेशाब मटकों में भरकर सोते हुए अथवा मार्ग चलते हुए मनुष्यों पर डाल दिया जाता है। गंदगी की दृष्टि से तो ऐसा करना बहुत बुरा है ही, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कम बुरा नहीं। इस प्रकार का खेल जितना शीघ्र बन्द हो जाय उतना ही अच्छा। ऐसा खेल जिससे एक पक्ष को हर्ष होता है और दूसरे पक्ष को दुःख सचा खेल नहीं कहा जा सकता। खेल से दोनो पक्षों का मनोरंजन होना चाहिए।

वसन्त कवियों को बहुत प्रभावित करता है। कवि सौन्दर्योपासक होते हैं और वसन्त में प्राकृतिक सौन्दर्य का अखंड राज्य रहता है। अतः कवियों की लेखनी अद्भुत सज-धज के साथ प्रकृति के प्रांगण में नृत्य करने लगती है। उन्होंने इस ऋतु का खूब वर्णन किया है। मानव-हृदय पर इस ऋतु का जो प्रभाव पड़ता है उसका भी उन्होंने अच्छा चित्रण किया है। पहले प्रकृति का रूप-वर्णन देखिए—

कूलन मे केलिन कछारन मे कुंजन मे,
क्यारिन में कलित कलीन विकसंत है।
कहै पदमाकर परागहू मे पौनहू मे,
पातन मे पीकन पलाशन पगंत है॥
द्वार मे दिशान में दुनी मे देश-देशन में,
देखो दीप-दीपन मे दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज मे नवेलिन मे बेलिन मे,
बनन मे बागन में बगरयो बसंत है॥

अब मानव-हृदय के प्रभाव को भी देखिये—

भौ यह ऐसोई समो, जहाँ सुखद दुख देत।
चैत-चाँद की चाँदनी, डारत किये अचेत॥

सारांश यह है कि वसन्त सब ऋतुओं में श्रेष्ठ है। यही कारण है कि इसे ऋतुराज कहा जाता है। इस ऋतु मे शीत अथवा गरमी किसी को पीड़ित नहीं करती। प्रकृति अपना सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदर्शित करती है और सभी प्राणी आनन्द में मग्न रहते हैं। यह ऋतु प्रत्येक वस्तु में नई आभा, नई स्फूर्ति और नया जीवन भर देती है।

ताजमहल

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—ससार मे ताजमहल की प्रसिद्धि
(२) ताजमहल की स्थिति और इसके बनाने का कारण
(३) ताजमहल के बनने में परिश्रम और व्यय
(४) ताजमहल के बाह्यागों का वर्णन
(५) ताजमहल के आन्तरिक अगो का वर्णन
(६) शरद-पूर्णिमा की रात्रि को ताजमहल का सौन्दर्य
(७) उपसहार—वास्तु-कला का अद्वितीय उदाहरण

विश्व की अद्भुत वस्तुओ मे ताजमहल की भी गणना है। संसार में जितनी ख्याति इस विशाल भवन की है उतनी शायद ही किसी अन्य इमारत की हो। यह समाधि-मन्दिर मुगल बादशाह शाहजहाँ से पत्नी-प्रेम का जीता-जागता और मूर्तिमान् रूप है यह इतना सुन्दर है कि संसार के कोने-कोने से स्त्री-पुरुष इसे देखने आते हैं और देखकर कभी तृप्त नहीं होते। इसकी स्मृति-रक्षा के लिए प्रायः यात्री-गण पत्थर की बनी हुई इसकी छोटी-छोटी प्रति-मूर्तियों को अपने साथ ले जाते है।

यह विशाल भवन आगरे में यमुनाजी के दाहिने किनारे पर स्थित है और आगरा फोर्ट स्टेशन से लगभग दो मील दूर है। इसके तीन ओर बाग लगा हुआ है और चौथी ओर यमुनाजी है। इस मनोरम स्थिति से ताजमहल की शोभा और भी बढ़ गई है। इसके बनने का कारण शाहजहाँ की प्राणप्रिया मुमताजमहल की मृत्यु थी जिसके नाम पर इसका नाम ताजमहल रक्खा गया है। जब मुमताज को जीने की कोई आशा न रही तो उसने बादशाह से दो प्रार्थनाएँ की जिनमे एक यह थी कि आप मेरा ऐसा समाधि-मन्दिर बनवाएँ जिससे बढ़कर दूसरी इमारत दुनिया मे न हो। शाहजहाँ ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और उसकी मृत्यु हो जाने पर संसार मे अपनी सानी न रखनेवाली इस इमारत को बनवाया।

ताजमहल का नकशा शाहजहाँ ने स्वप्न मे देखा था, ऐसा कहा जाता है। उसी के अनुसार इसका निर्माण हुआ है। दूर-दूर के देशो से अच्छे-अच्छे कारीगर बुलाए गए। संगमरमर राजपूताने की खानो से मंगाया गया। सन् १६३१ ई० मे इस विश्व विख्यात भवन का निर्माण आरम्भ हुआ। बीस सहस्र कारीगर, मजदूर आदि इसमें नित्य कार्य करते थे। बीस वर्ष में यह बनकर पूरा हुआ। ऐसा प्रसिद्ध है कि शाहजहाँ ने इसके बनानेवाले कारीगरो के इस भय से हाथ काट लिए कि कहीं वे ऐसी सुन्दर अन्य इमारत न बना दें। इसके बनने में कई करोड़ रुपये व्यय हुए।

ताजमहल की सुन्दरता का ठीक-ठीक वर्णन शब्द की शक्ति से परे है। ताजमहल तक पहुँचने के लिए हमको लाल पत्थर के एक विशाल प्रवेश-द्वार में होकर जाना पड़ता है। इस पर कुरान की आयतें श्वेत पत्थर के अक्षरो में इस अनुपात मे लिखी हुई हैं कि सभी अक्षर एक ही आकार के दिखलाई पड़ते हैं। इस

द्वार के पास एक अजायबघर है जिसमे मुगल बादशाहों के अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, चित्र आदि सुरक्षित हैं। आगे बढ़कर हम मार्ग के दोनों ओर सर्व के पेड़ों की लुभावनी पँक्तियाँ और फव्वारों को देखते हैं। हरी हरी घास के मखमली गद्दे इधर-उधर बिछे हुए हैं। आगे एक परम रम्य जल-कुण्ड है। इसमे विकसित कमल और रंग-बिरंगी मछलियो की क्रीड़ा मन को उल्लास से भर देती है। इसमें ताज का प्रतिबिम्ब पड़ता है जो जल की चंचलता से इधर-उधर हिलता हुआ बड़ा अच्छा लगता है। इस जल-कुण्ड के चारो ओर संगमरमर की बेंच पड़ी हुई हैं, जिन पर दर्शक-गण बैठ कर कुण्ड के मनोरम दृश्य का आनन्द लेते हैं। यहीं से वे केमरा द्वारा ताज का चित्र भी लेते हैं। इस स्थान से हम ताज के उद्यान की शोभा देखते हैं जो हमारे चारो ओर फैला हुआ है। यही से श्वेत संगमरमर का बना हुआ ताज संगमरमर के बने हुए चबूतरे पर खड़ा हुआ स्पष्ट दिखलाई देता है। चबूतरे के चारो कोनो पर गगनचुम्बी चार मनीरे हैं जिनमे ऊपर चढने को चक्करदार सीढ़ियाँ हैं। मध्य मे ताज का विशाल गुम्बज है जो २७५ फीट ऊँचा है। संसार मे इतना ऊँचा गुम्बज दूसरा नहीं है। इसके चारों ओर छोटे-छोटे चार गुम्बज और हैं। ताज के बाह्य-दृश्य को देखकर कौन प्रशंसा और आश्चर्य मे मग्न न हो जायगा? ताजमहल की चारो ओर की दीवारों पर काले पत्थर के अक्षरो मे कुरान की आयते खुदी हुई हैं। उन पर इतनी सुन्दर पच्चीकारी है कि देखते ही बनती है। तरह-तरह के बेल-बूटे रंग-बिरंगे पत्थर के टुकड़ो से बने हुए हैं। नाना प्रकार के फूल-पत्ते वास्तविक से प्रतीत होते है।

ताजमहल के भीतर का दृश्य भी बड़ा चित्ताकर्षक है। बड़े गुम्बज के नीचे मुमताजमहल और शाहजहाँ की समाधियाँ हैं। वे वास्तविक समाधियो की नकल है जो ठीक उन्ही के नीचे एक

तहखाने में हैं। समाधियो के चारो ओर संगमरमर की जालीदार परिक्रमा है जो दर्शक को बनानेवाले की हाथ की सुन्दर सफाई का भली भाँति परिचय कराती है। समाधियो पर बहुमूल्य पत्थरों का जड़ाऊ काम ऐसा सुन्दर है कि देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। नीचे सीढ़ियो द्वारा तहखाने मे जाकर असली समाधियाँ देखी जाती है। तहखाने मे अन्धकार छाया रहता है। अतः बिना प्रकाश के समाधियो को नही देखा जा सकता। वहाँ का दृश्य बहुत मनोरंजक है। सुगन्धित वत्तियाँ जला करती है। प्रकाश मे जड़ाऊ काम जगमगाता हुआ नेत्रों को बड़ा सुहावना लगता है। शाहजहाँ और मुमताजमहल की समाधियों मे एक अन्तर है जो किसी भी दर्शक से नहीं छिप सकता। मुमताजमहल की समाधि पर तो कुरान की आयतें अंकित हैं पर शाहजहाँ की पर नही। इसका कारण औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता है। उसने यह सोच कर कि किसी दिन इस समाधि पर मनुष्य के पैर पड़ सकते है कुरान की आयतो को उस पर लिखा कर उनका निरादर करना नही चाहा।

शरदपूर्णिमा की रात्रि को ताजमहल की जो छटा होजाती है वह वर्णनातीत ह। सुधाकर की निर्मल ज्योत्स्ना में ताज ऐसा प्रतीत होता है मानो साँचे में ढला हो। चन्द्रमा की किरणों से वह जगमगाने लगता है। उसकी एक दीवार का कुछ भाग तो शीशे के समान चमकता है। दूध सी चाँदनी में श्वेत संगमर-मर का चमकता हुआ ताज देख कर हृदय मे अपूर्व शान्ति और हर्ष होता है। यमुनाजी के निर्मल और शान्त जल में उसका प्रतिबिम्ब अद्वितीय सौन्दर्य की सृष्टि करता है। शरदपूर्णिमा की रात्रि को ताज की अनुपम शोभा देखने के लिये दूर-दूर से मनुष्य आते हैं। उस रात्रि को वहाँ बड़ी भीड़ रहती है। दर्शकों के मुख पर आश्चर्य और अलौकिक आनन्द की झलक देखी जाती

है। उस रात्रि को कवि ताज पर कविता बनाने मे, और चित्रकार ताज का चित्र खीचने मे संलग्न देखे जाते है। उस रात्रि को कोई दर्शक-मण्डली मीनारो पर आसन जमाती है तो कोई चबूतरो पर। कोई दर्शक-मण्डली गप्पो से मनोरंजन करती है तो कोई शान्ति-पूर्वक ताज को निर्निमेष नेत्रो मे देखती है। कोई दर्शक-मण्डली गाती-बजाती है तो कोई कविता पढकर रसास्वादन करती है। कभी कभी कोई मनचला दर्शक अपनी आवाज से उस विशाल भवन को गुँजाकर उसकी शान्ति को भंग कर देता है।

कितने आश्चर्य की बात है कि लगभग तीन सौ वर्ष समाप्त होने पर भी ताज के सौन्दर्य मे, ताज की शोभा मे, किसी प्रकार की न्यूनता नही आई है! तीन सौ वर्षों से सूर्य के ताप, वायु के थपेड़ो, मेघो की झड़ियो, ओलों की बौछारो, बिजली के प्रकोप और शीत के कसालो को ताज उसी प्रकार शान्ति के साथ सहता रहा है जिस प्रकार एक योगी सहता है। इसका श्रेय भारतीय वास्तु कला को है। ताज में पत्थरो की जुड़ावट, चित्रकारी, पच्चीकारी, खुदाई, कटाई आदि देखकर मुगलकालीन भारत की वास्तु-कला की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है। ताज शाहजहाँ के प्रेमसिक्त हृदय की प्रतिकृत है। मृत्यु का चिर मौन इस समाधि-मन्दिर मे सर्वदा विद्यमान रहता है। धन्य है भारतीय कला जिसने ताज जैसा भवन विश्व मे उपस्थित किया और धन्य है प्रेमी शाहजहाँ जिसने इस भवन द्वारा अपनी प्रियतमा का नाम संसार में अजर-अमर कर दिया।

नागरिक के अधिकार

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—प्रत्येक नागरिक को कतिपय अधिकारों की आवश्यकता

(२) नागरिक के अधिकारों के दो रूप—

(अ) सामान्य अधिकार (आ) राजनैतिक अधिकार

(३) सामान्य अधिकार—

(क) शिक्षा

(ख) आर्थिक सुविधा

(ग) रक्षा

(घ) न्याय

(ङ) विचार और भाषण की स्वतन्त्रता

(च) धार्मिक स्वतन्त्रता

(छ) पारिवारिक स्वतन्त्रता

(४) राजनैतिक अधिकार—

(क) मत देने का अधिकार

(ख) चुनाव के लिए खड़े होने का अधिकार

(ग) प्रद-प्राप्ति का अधिकार

(५) उपसंहार—भारत में नागरिक के अधिकारों का अभाव

उन्नति का रहस्य अधिकार है। सरकार का कर्तव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति एवं समुचित विकास के लिए कतिपय अधिकार प्रदान करे। इससे व्यक्ति को तो लाभ होगा ही, समाज का भी हित-साधन होगा। समाज व्यक्ति का ही समष्टि रूप है। जब व्यक्ति की दशा में सुधार होगा, जब व्यक्ति अपनी शक्तियों के फूलने-फलने के लिए वातावरण पायगा और उनका उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा तब क्या कारण है कि समाज समुन्नत न हो? उदाहरण के लिए, एक अशिक्षित मनुष्य की अपेक्षा उच्च शिक्षित मनुष्य द्वारा समाज का बहुत भला हो सकता है। ऐसे समाज में जिसे नागरिकता के अधिकार प्राप्त रहते हैं अनेक वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, विद्वान, सुधारक एवं विचार-शील व्यक्ति अवतीर्ण होते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक अधिकार मिलने चाहिएँ।

ये आवश्यक अधिकार दो प्रकार के होते हैं—सामान्य और राजनैतिक। पहले सामान्य अधिकारो को लीजिए। सामान्य अधिकारों मे सर्व प्रथम स्थान शिक्षा का है। सरकार का कर्तव्य है कि प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष को अनिवार्य रूप से प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करे। शिक्षा प्रकाश है, जागृति है, उन्नति है। अशिक्षित व्यक्ति पूँछ और सींग-रहित पशु ही है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि सरकार ऐसे साधन जुटाए जिनसे प्रत्येक व्यक्ति सुशिक्षित हो सके। प्रत्येक मनुष्य भगवती वीणा-पाणि के प्रसाद का पात्र बन सके।

आर्थिक सुविधा भी व्यक्ति के लिए किसी प्रकार कम आवश्यक नहीं। मनुष्य की चार प्रधान आवश्यकताओं में प्रथम आवश्यकता रोटियो की और द्वितीय वस्त्रो की है। सरकार का कर्तव्य है कि वह जनता की इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करे। भूखे के लिए अन्न और नंगे के लिए कपड़े के प्रबन्ध का भार सरकार पर है। सरकार बेकारो के लिए कार्य दे और इस प्रकार के कानून बनाए जिससे कोई भी भूखा अथवा नंगा न रहे। इसके अतिरिक्त योग्य एवं परिश्रमी मनुष्यो के लिए धनोपार्जन की सुविधा भी होनी चाहिए।

सरकार का कर्तव्य है कि वह जनता के प्राण और सम्पत्ति की रक्षा करे, जनता मे शान्ति रक्खे। कोई किसी को सताए नहीं, कोई किसी का धन अपहरण न करे। चोरों और लुटेरो को दंड दिया जाय। मार-पीट करनेवालों तथा हत्यारो को सजा दी जाय। प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह अपनी सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग करे और अपने शरीर को सुरक्षित रक्खे।

न्याय-व्यवहार पर भी प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। सरकार किसी के साथ स्वयं अन्याय न करे और न किसी को अन्याय करने दे। प्रत्येक को कानून की दृष्टि मे समान समझा जाय और न्यायालयो मे निष्पक्षता से काम लिया जाय। इसके

अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि न्याय सस्ता और शीघ्र हो, अन्यथा गरीब उससे लाभ न उठा सकेंगे।

प्रत्येक नागरिक को विचार और भाषण की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इससे मस्तिष्क का विकास होता है। यदि विचारों को व्यक्त होने का अवसर नहीं प्रदान किया जाता तो वे मस्तिष्क में विकार उत्पन्न करके उसके विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त पारस्परिक वाद-विवाद तथा विचारविनिमय की स्वतन्त्रता से मनुष्य तथ्य तक सरलता से पहुँच जाते है। परन्तु विचार और भाषण की स्वतन्त्रता से यह तात्पर्य नहीं है कि एक मनुष्य दूसरे को गालियाँ दे, उसकी मान-हानि करे। प्रत्येक को दूसरे की स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए।

प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार जिस धर्म का अनुयायी होना चाहे हो, जिस देवता की पूजा करना चाहे करे, जिस प्रकार किसी धार्मिक उत्सव को मनाना चाहे मनाए। पर इसके यह मानी नहीं हैं कि एक धर्मवाले दूसरे धर्मवालों के साथ अनुचित व्यवहार करें अथवा ऐसा कोई कार्य करें जिससे समाज को हानि पहुँचे। ऐसी दशा में सरकार का कर्त्तव्य है कि वह हस्तक्षेप करे।

पारिवारिक स्वतन्त्रता पर भी प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। जो जिसको चाहे अपना जीवन-साथी चुने। जो जिसको चाहे अपनी पत्नी बनाए, जो जिसको चाहे अपना पति चुने। सरकार को इस कार्य में दख़ल देने की आवश्यकता नहीं। अपने परिवार की व्यवस्था के लिए प्रत्येक व्यक्ति जैसे नियम उचित समझे बनाए। अपने बालकों को जिस स्कूल में ठीक समझे भेजे, भोजन-वस्त्रादि का जैसा चाहे प्रबन्ध करे, घर में जिस प्रकार चाहे मनोरंजन करे। पर वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उसके अन्य भाइयों का अहित हो।

उपर्युक्त सामान्य अधिकारो के अतिरिक्त प्रत्येक नागरिक को कुछ राजनैतिक अधिकार भी मिलने चाहिएँ। उसे अधिकार हो कि वह क्या म्यूनिसिपल बोर्ड क्या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, क्या छोटी कौंसिल, क्या बडी कौंसिल, क्या प्रान्तीय कौंसिल, क्या केन्द्रीय कौंसिल, सभी के चुनाव में अपना मत दे सके। प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यह न्याय-संगत ही है कि जिन व्यक्तियों के हाथ में शासन की बागडोर हो उनके चुनने मे प्रत्येक शासित स्त्री-पुरुष का हाथ रहे।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक नागरिक को चुनाव के लिए खडे होने का भी अधिकार होना चाहिए। यह अनुचित है कि कुछ लोगों को ही यह अधिकार प्राप्त हो। जिसे मत देने का अधिकार हो उसे स्वयं भी चुनाव के लिए खडे होने का अधिकार मिलना चाहिए। जो दूसरो से शासित हो उसे स्वयं भी शासन करने का अवसर मिलना चाहिए।

पद-प्राप्ति का अधिकार भी प्रत्येक व्यक्ति को मिलना चाहिए। सरकारी नौकरी में जाति-पाँति, सम्प्रदाय, धर्म आदि का विचार न किया जाय। कोई भी व्यक्ति किसी भी पद को पा सके। योग्यता ही पद-प्रदान की कसौटी रक्खी जाय।

अन्त में हमें देखना है कि हमारे देश मे नागरिको को कहाँ तक ये अधिकार प्राप्त हैं। राजनैतिक अधिकारों मे से तो कोई भी प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त नहीं हैं। सामान्य अधिकारों में से शिक्षा, आर्थिक सुविधा, विचार और भाषण की स्वतन्त्रता—ये अधिकार भी सबको प्राप्त नहीं हैं। सरकार को चाहिए कि वह इन अधिकारो को देकर हमारे समाज की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे।

कवि-सम्मेलन

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—कविता और मानव-जीवन; कवि-सम्मेलन की आवश्यकता और उसका रूप
(२) कवि-सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ
(३) कवियों द्वारा कविता-पाठ
(४) सभापति का भाषण और पुरस्कार-वितरण के पश्चात् कवि-सम्मेलन का अंत
(५) कवि-सम्मेलन की उपयोगिता
(६) कवि-सम्मेलन से हानियाँ
(७) वर्तमान कवि-सम्मेलनों में सुधार
(८) उपसंहार—सारांश

कविता का मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि अपनी कविता में मनुष्य के जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का चित्रण करता है। वह कभी हास्य का चित्र खींचता है तो कभी शोक का। वह कभी क्रोध का भाव प्रकट करता है तो कभी प्रेम का। वह कभी उत्साह को कविता का विषय बनाता है तो कभी भय को। ऐसा करके वह पाठक या श्रोता को नाना प्रकार के भावों में निमग्न करता है। इस प्रकार वह मनुष्यों के हृदय पर अपना अधिकार कर लेता है। वह अपनी कविता द्वारा उन्हें कभी हँसाता है, कभी रुलाता है, कभी उत्साहित करता है, कभी क्रुद्ध करता है। अतः किसी कार्य में संलग्न करना या उससे विरत करना कवि के हाथ में रहता है। वह समाज के जीवन में पर्याप्त उलट-फेर करता रहता है। इसके अतिरिक्त कविता मनोरंजन का भी अच्छा साधन है। इसलिए समाज को कवियों की आवश्यकता होती है। कवियों को प्रोत्साहित करने, उनकी कवित्व-शक्ति बढ़ाने और जन-साधारण के मनोरंजन के लिए कवि-

सम्मेलनों की आयोजना की जाती है। कवि-सम्मेलन एक उत्सव होता है जिसमे कविता सुनाने को अनेक कवि और कविता सुनने के लिए अनेक मनुष्य इकट्ठे होते हैं। कवि-गण कुछ समस्याओं की पूर्तियाँ और कुछ स्वतन्त्र विषयों पर रचना करके श्रोताओ को सुनाते है।

कवि-सम्मेलन मे सबसे पहले सभापति का चुनाव होता है। यदि सभापति पहले से ही मनोनीत हो तो चुनाव की आवश्यकता नहीं पड़ती। सभापति के चुनाव के पश्चात् कवि-सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हो जाती है। यदि अच्छे कवियों को पुरस्कार देना होता है तो निर्णायकों की भी नियुक्ति कर दी जाती है, अन्यथा नहीं। सर्व प्रथम ईश्वर-वन्दना अथवा सरस्वती-वन्दना होती है। तत्पश्चात् सभापति कवि-सम्मेलन के नियम आदि उपस्थित सज्जनो को बतलाता है। फिर वह नाम-सूची से क्रमानुसार कवियो को कविता-पाठ करने के लिए बुलाता है। सभापति को सहायता देने के लिए एक मंत्री भी होता है।

कविता-पाठ कवि-सम्मेलन का सबसे आकर्षक और मुख्य अङ्ग होता है। कोई किसी समस्या पर कुछ रचना सुनाता है और कोई कुछ। किसी की रचना पर श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते हैं, उसे पूर्ण शान्ति के साथ सुनते हैं, तालियाँ पीट-पीटकर उसकी प्रशंसा करते है और 'पुनः पुनः' की ध्वनि से कवि-सम्मेलन के भवन को गुँजा देते है। किसी की रचना से भवन में अशान्ति हो जाती है, श्रोता-गण ऊब जाते हैं, कविता न सुनकर आपस में बात-चीत करने लगते हैं, कुछ उठ-उठकर बाहर चले जाते हैं और कुछ 'बस बस' की आवाज लगाते हैं। किसी के मधुर कंठ से पीयूष-धारा प्रवाहित होकर सुनने वालो को सिक्त कर देती है। किसी के शुष्क कंठ से कर्णकटु आवाज निकलकर सुननेवालो के कानो के पर्दे फाड़े डालती है। कोई उच्च स्वर से कविता पढ़ता

है और कोई धीमे स्वर से। कोई कविता-पाठ के समय घबड़ा जाता है तो कोई निडर होकर आराम से कविता सुनाता है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार कोई कवि शृङ्गार रस मे समस्या —पूर्ति करता है, कोई कवि उसे वीर रस मे ढालता है और कोई कवि करुण रस में उसे बिठाता है। कोई कवि सूट, बूट और टाई में आता है तो कोई कवि पगड़ी, अँगरखा और धोती में आता है। कोई कवि बन्दगले का कोट पहन कर आता है तो कोई कुरता और दुपट्टा ही धारण करके आता है। सारांश यह कि विभिन्नता खूब देखी जाती है।

कविता-पाठ के पश्चात् सभापति का भाषण होता है। सभापति अपने भाषण मे कविता की कला का संक्षेप मे विवेचन करता है और पढ़ी गई कविताओं की समालोचना करता है। अन्त में श्रोताओ को धन्यवाद देता हुआ वह अपना भाषण समाप्त करता है। फिर यदि कवि-सम्मेलन मे प्रतियोगिता रहती है तो प्रतियोगिता का फल सुनाया जाता है और पुरस्कार-वितरण होता है। सबसे पीछे कवि-सम्मेलन का आयोजक सभापति, निर्णायको, कवियों और श्रोताओ को धन्यवाद देता हुआ उसकी समाप्ति करता है। यही संक्षेप मे कवि-सम्मेलन का रूप है।

कवि-सम्मेलन से प्रधानतः तीन लाभ हैं—कवियों को प्रोत्साहन मिलता है, उनकी कवित्व-शक्ति बढ़ती है और मनुष्यों का मनोरंजन होता है। रचना के पुरस्कृत होने से अथवा आदर मिलने से कवि का उत्साह बढ़ता है और वह अच्छी-अच्छी रचनाएँ करने को अग्रसर होता है। समस्याओ की पूर्तियाँ कवि की कवित्व-शक्ति का अच्छा अभ्यास कराती हैं, जिससे कवित्व-शक्ति की वृद्धि होती है। कविता-पाठ से कवि को तो आनन्द मिलता ही है साथ मे सुननेवालो का भी मनोरंजन होता है। कभी-कभी तो वे आनन्द के समुद्र में निमग्न हो जाते है। इसके

अतिरिक्त जो प्रभाव डालने में सहस्रों व्याख्यान असफल होते हैं वह प्रभाव कवि-सम्मेलनों में पढ़ी गई कविता सरलता से डालती है।

कवि सम्मेलन से यह हानि भी होती है कि समस्या-पूर्ति द्वारा तुकबन्दियों की भरमार होने लगती है। प्रत्येक मनुष्य किसी प्रकार तुक भिड़ा कर कवि होने का दावा करने लगता है। कोई भाव हो या न हो पर तुक मिलनी चाहिए। इसी उद्देश्य से की गई रचनाएँ वास्तविक कविता का गला घोटने लगती है। कवि-सम्मेलनों में प्रायः देखा जाता है कि मधुर कंठ से पढ़नेवाला ही प्रशंसा का पात्र होता है, कविता का ध्यान बहुत कम रक्खा जाता है। भले ही कविता बहुत अच्छी हो, पर यदि पढनेवाले का कंठ अच्छा नहीं है तो उस कविता का आदर नहीं होता। इसका परिणाम बुरा होता है। श्रेष्ठ कवि कभी कभी उत्साह-भंग हो जाते हैं।

वर्तमान कवि-सम्मेलनों में सुधार की आवश्यकता है। समस्या-पूर्ति का अन्त होना चाहिए। यद्यपि इससे कवित्व-शक्ति बढ़ती है पर तुकबन्दियों की भरमार हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी वांछनीय है कि कवि-सम्मेलनों में वही रचना आदर पाए, वही रचना पुरस्कृत हो, जो वास्तव में अच्छी हो। पढ़ने के ढंग पर ही निर्णायक कदापि अपना निर्णय न दिया करें।

अन्त में यही कहना है कि कवि-सम्मेलन एक उपयोगी वस्तु है। यह वह साधन है जिसके द्वारा अच्छे-अच्छे कवियों का निर्माण होता रहता है। कवि-सम्मेलनों में कविता सुना-सुनाकर साधारण कवि उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ उत्कृष्टता प्राप्त करता है।

हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव

रूप-रेखा —

(१) प्रस्तावना—प्रायः प्रत्येक विद्यालय मे वार्षिकोत्सव की आयोजना
(२) खेल-कूद की प्रतियोगिताएँ
(३) वाद-विवाद, कविता और निबन्ध की प्रतियोगिताएँ
(४) वार्षिकोत्सव की तैयारियाँ
(५) आमंत्रित व्यक्तियों का स्वागत-सत्कार
(६) विद्यालय के प्रधानाध्यापक की रिपोर्ट
(७) पुरस्कार वितरण
(८) सभापति का भाषण और जल-पान
(९) उपसंहार—वार्षिकोत्सव की उपयोगिता

प्रायः प्रत्येक विद्यालय में वार्षिकोत्सव मनाया जाता है। यह प्रायः वर्ष के अन्तिम भाग मे होता है। हमारे विद्यालय में फरवरी माह मे यह उत्सव बड़े ठाठ से मनाया गया। विद्यालय के प्रधानाध्यापकजी ने ६, ७ और ८ फरवरी तीन दिन इसके लिए निश्चित किए। प्रथम दिन विद्यार्थियो को खेल-कूद प्रतियोगिता के लिए रक्खा गया। द्वितीय दिन वाद-विवाद, निबन्ध और कविता की प्रतियोगिताओं के लिए रक्खा गया। तृतीय दिन पुरस्कार-वितरण और जल-पान के लिए रक्खा गया।

वार्षिकोत्सव के कार्य-क्रम का सबसे प्रथम अंग खेल-कूद प्रतियोगिता बड़े उत्साह और हर्ष के साथ आरम्भ हुआ। विद्यार्थी नेकर पहन-पहनकर खेल के स्थान पर ११ बजे एकत्रित हुए। प्रधानाध्यापकजी तथा अध्यापकगण भी उपस्थित थे। ठीक ११॥ बजे खेल आरम्भ हुए। सबसे पहले दौड़ हुई। इसमे केवल ८ विद्यार्थी सम्मिलित हुए। इनमें से एक तो १० गज ही दौड़ कर रह गया और दूसरा दौड़ते-दौड़ते गिर गया। सौभाग्य-वश उसके कुछ चोट न लगी। शेष मे से प्रथम और द्वितीय

स्थान प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी पुरस्कार के लिए चुने गए। प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाला मेरा मित्र था। मुझे उसकी विजय पर बड़ा हर्ष हुआ और मै दौड़ कर उससे लिपट गया। फिर रस्सा-कशी आरम्भ हुई। उपस्थित विद्यार्थी दो श्रेणियो मे बाँट दिए गए। तीन बार रस्सा खीचा गया। पहली बार हमारे पक्ष की विजय हुई। दूसरी बार विरोधी पक्ष जीता। तीसरी बार पुनः हमारी विजय हुई। अतः हर्ष-ध्वनि के बीच हमारा पक्ष पारितोषिक के लिए चुना गया। फिर लोहे का गोला फेकने का खेल आरम्भ हुआ जिसमे केवल ४ विद्यार्थियो ने भाग लिया। उनमें से एक पुरस्कार के लिए चुना गया। इन खेलो के अतिरिक्त ऊँचा कूदना, लम्बा कूदना, धीरे साइकिल चलाना आदि कई खेल हुए। ४ बजे खेल-कूद की प्रतियोगिताओ का अन्त हुआ।

दूसरे दिन का कार्य-क्रम भी कम रोचक न था। सबसे पहिले प्रातःकाल ८ बजे से वाद-विवाद प्रतियोगिता आरम्भ हुई। वाद-विवाद का विषय था-'ग्राम्य जीवन अच्छा है या नागरिक जीवन'। प्रतियोगिता मे भाग लेनेवाले १० विद्यार्थी थे जिनमे से ५ पक्ष में बोले और ५ विपक्ष मे। वाद-विवाद का आरम्भ करने वाला विद्यार्थी बड़ा अच्छा वक्ता था। उसने अनेक तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्राम्य जीवन कहीं अच्छा है। उसके कहने के ढंग, उच्च स्वर, भाषा, तर्क आदि का श्रोताओ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बीच-बीच में तालियाँ पीट-पीट कर वक्ता की सराहना की और जब उसने वक्तृता का अन्त किया तब तो तालियों की लगातार तुमुल-ध्वनि से वाद-विवाद का हॉल गूँज उठा। उसके पश्चात् विपक्षी वक्ता बोलने को खड़ा हुआ। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। उसके मुख से बार बार प्रयत्न करने पर भी शब्द न निकले। श्रोताओं ने तालियाँ पीट दीं। बेचारा घबड़ा गया। चुपचाप आकर नीचा

मुख करके अपने स्थान में बैठ गया। अन्य वक्ताओं में एक और अच्छा बोलने वाला था। वह विपक्ष में बोला। उसका भी कहने का ढङ्ग प्रशंसनीय था। इसको और प्रथम वक्ता को क्रमशः द्वितीय और प्रथम पुरस्कार घोषित हुए। ठीक १० बजे वाद-विवाद समाप्त हुआ। १२ बजे से निबन्ध-प्रतियोगिता आरम्भ हुई। निबन्ध का विषय था 'विद्यार्थी-जीवन का महत्व'। मेरे अतिरिक्त ६ विद्यार्थियों ने इस प्रतियोगिता मे भाग लिया। हम लोगो को २ घण्टे का समय दिया गया। मुझे पहले तो बड़ी कठिनाई मालूम हुई। कोई विचार मेरे मस्तिष्क में नहीं आया। पर जब मै १५ मिनट तक एकाग्र चित्त से विषय पर सोचता रहा तब कही मुझे लिखने के लिए मसाला मिला। २ बजे हम सभी ने अपना अपना निबन्ध प्रधानाध्यापकजी को दे दिया। उन्होने स्वयं निबन्धों को जाँचा और ४ बजे परीक्षा-फल सुनाया। जब मैंने सर्व प्रथम अपना नाम सुना तो मेरे हृदय में हर्ष का समुद्र उमड़ने लगा। मेरे मित्रों ने आकर मुझे बधाई दी। सायङ्काल ६ बजे से कवि-सम्मेलन आरम्भ हुआ। सभापति का आसन पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने सुशोभित किया। विद्यालय का हॉल श्रोताओं और दर्शकों से खचाखच भर गया। इस कवि-सम्मेलन मे स्थानीय सभी विद्यालयो से कवि बुलाए गए थे। समस्याएँ थीं—'मानस-भवन में' और 'वसन्त है'। स्वतन्त्र विषय था—'स्वदेश-प्रेम'। बड़ी-बड़ी सुन्दर रचनाएँ सुनने को मिलीं। कतिपय सुमधुर कण्ठ वाले कवियों की वाणी ने श्रवणों में अमृत उँडेल दिया। श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो गए। 'पुनः पुनः' की ध्वनि से हॉल गूँजने लगा। उपाध्यायजी से भी प्रार्थना की गई। उन्होंने कविता सुनाकर हमारे हर्ष को चरम कोटि पर पहुँचा दिया। जब प्रतियोगिता का फल सुनाया गया तब मुझे कुछ खेद हुआ, क्योंकि हमारे विद्यालय का कोई भी विद्यार्थी पुरस्कार न पा सका।

तीसरे दिवस का कार्य-क्रम अत्यन्त रोचक था। उस दिन विशेष तौर पर तैयारियाँ की गईं। एक विशाल पंडाल बनाया गया। रंग-बिरंगे तोरण और पताकाएँ चारों ओर लगाई गईं। सफाई की गई और चारो ओर जल का छिड़काव किया गया। प्रवेश-द्वार पर 'शुभागमन' और 'वार्षिकोत्सव' फूल-पत्तियो के बनाकर सपर्ण केले के खम्भो में लगाए गए। प्रवेशद्वार से पंडाल तक सुसज्जित मार्ग बनाया गया। पंडाल के भीतर सभापतिजी और आमंत्रित सज्जनों के बैठने के लिए ऊँचा रंगमंच बनाया गया। उस पर गलीचे बिछाए गए और गलीचों पर पंक्तियों में कुर्सियाँ रक्खी गईं। सभापतिजी के लिए केन्द्र मे एक कुर्सी और मेज लगाई गई। पंडाल में विद्यार्थियों के बैठने का प्रबन्ध था। वह खूब सजाया गया था। नाना प्रकार के चित्र पंडाल की दीवारो पर टाँगे गये थे। उस दिन की कार्यवाही के सभापति शिक्षा-विभाग के मन्त्री थे। कार्यवाही का आरम्भ ४ बजे सायं-काल से होने को था।

विद्यार्थी, प्रधानाध्यापकजी और अध्यापक-गण २ बजे ही आ गए और प्रबन्ध करने लगे। प्रवेश-द्वार पर स्वागत के लिए एक अध्यापक और दो विद्यार्थी नियुक्त हुए। पंडाल के चारो ओर बालचर खड़े किए गए। सभापतिजी और आमंत्रित जनों के लिए पुष्पमालाएँ मँगाई गई। ३॥ बजे से आमंत्रित व्यक्ति आने लगे। प्रवेश-द्वार पर स्वागत के पश्चात् प्रधानाध्यापकजी उन्हें रंगमंच पर बिठाने लगे। ठीक ४ बजे सभापतिजी मोटर से उतरे। प्रवेश-द्वार पर उनका हार्दिक स्वागत किया गया। फिर वे रंगमंच पर ले जाए गए। उनके आसन पर विराजने पर विद्यालय के छोटे-छोटे बच्चो ने तालियो की तुमुल ध्वनि के बीच उनके और आमंत्रित मनुष्यों के कण्ठो में पुष्प मालाएँ पहिनाई। फिर बालचरो के 'बन्देमातरम्' गायन के साथ उत्सव की कार्यवाही आरम्भ हुई।

सबसे पहले प्रधानाध्यापकजी ने विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट सुनाई जिसे उपस्थित महानुभावो ने बड़े ध्यान से सुना। उसमें प्रधानतः विद्यालय की आर्थिक दशा, परीक्षा-फल, विद्यार्थियो की संख्या, आवश्यकताएँ, उन्नति आदि का दिग्दर्शन कराया गया और जनता से १० सहस्र रुपयो की अपील की गई।

इसके पश्चात् पुरस्कार-वितरण हुआ। विद्यार्थियो को पदक, पुस्तकें आदि पारितोषिक-स्वरूप मिली। सभापतिजी ने स्वयं अपने हाथ से पुरस्कार दिये और बड़े प्रेम से प्रत्येक विजेता से हाथ मिलाया। उस समय का दृश्य विचित्र था। हर्ष और म्लानता दोनो का संयोग देखा जाता था। पुरस्कार पानेवाले हर्ष के समुद्र मे डूबे हुए थे और न पानेवाले उदास थे।

फिर सभापतिजी का भाषण हुआ। उन्होंने पहले विद्यालय के अधिकारियो को अपने सभापति के पद पर आसीन किए जाने के उपलक्ष मे धन्यवाद दिया। फिर पारितोषिक-विजेताओ को बधाई दी और अन्य विद्यार्थियो के प्रति सहानुभूति प्रकट की। अन्त मे उन्होंने विद्यालय के कार्य की प्रशंसा करते हुए प्रधानाध्यापकजी की भूरि-भूरि सराहना की। तत्पश्चात् प्रधानाध्यापक जी ने आगन्तुक महानुभावों और सभापति को अनेक धन्यवाद दिए। फिर जल-पान हुआ। इस भाँति हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव बड़े समारोह के साथ समाप्त हुआ।

अन्त में यही कहना है कि विद्यालय के वार्षिकोत्सव से विद्यालय और विद्यार्थी-गण दोनो को ही लाभ पहुँचता है। विद्यालय की ख्याति होती है। जनता और विद्यालय का सम्बन्ध घनिष्ठ होता है। पुरस्कार पाने से विद्यार्थी प्रोत्साहित होते है। वे मिलजुल कर कार्य करना सीखते है और उनमे प्रबन्ध-शक्ति भी आती है।

भारतवर्ष में बेकारी की समस्या और उसका हल

रूप-रेखा—

(१) प्रस्तावना—भारतवर्ष की प्राचीन आर्थिक दशा की आधुनिक दशा से तुलना।

(२) भारतवर्ष में बेकारी के कारण—

(क) घरेलू उद्योग-धन्धों का भुलाया जाना

(ख) मशीनों का बाहुल्य

(ग) शिक्षा का औद्योगिक न होना

(घ) नौकरी की मनोवृत्ति

(३) बेकारी को दूर करने के उपाय—

(क) घरेलू उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान

(ख) स्वतन्त्र व्यवसायों का सरकार द्वारा प्रोत्साहन

(ग) औद्योगिक शिक्षा का प्रचार

(घ) सरकारी पदों पर केवल भारतीयों की नियुक्ति

(ङ) ५५ वर्ष की आयु वाले नौकरों का नौकरी से अलग किया जाना।

(च) देश की बढ़ती हुई जन-संख्या में कमी'

(४) उपसंहार—सरकार का प्रयत्न

वह भारतवर्ष जो एक समय 'सोने की चिड़िया' कहलाता था, वह भारतवर्ष जिसमें एक समय दूध-घी की नदियाँ बहती थीं, आज दाने-दाने को तरसता है। फाह्यान नामक एक चीनी यात्री ने लिखा है कि भारतवर्ष में मुझे पीने को जल मिलना दुर्लभ था। जहाँ कहीं मैं पीने को जल माँगता था, वहीं मुझे दूध दिया जाता था। इसी से भारतवर्ष की समृद्धि का, भारतवर्ष के वैभव का, भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति का, अनुमान लगाया जा सकता है। निस्सन्देह प्राचीन भारत संसार में सब देशों से

अधिक धनाढय था। यहाँ बहुत से ऐसे उद्योग-धन्धे प्रचलित थे जिनके द्वारा विदेशो का धन इस देश मे खिचा चला आता था। ऐसे समृद्धि-शाली देश पर विदेशी जातियाँ अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती थीं। मुसलमानों ने इसको खूब लूटा-खसोटा फिर अँगरेजो ने इम देश को चूसा है। यहाँ के धन को इंगलैण्ड ले जाना ही अँगरेजों का ध्येय रहा है और है। आज हमारे देश की जो दुर्दशा है, आज इस देश में जो बेकारी देखी जाती है, उसका प्रधान कारण विदेशी राज्य है। पराधीनता की शृङ्खलाओं में जकड़ा हुआ हमारा देश आज वेकारी के रोग से आक्रान्त है। यहाँ चारों ओर बेकारी का तांडव नृत्य हो रहा है। क्या किसान, क्या व्यापारी, क्या शिक्षित-समाज, क्या मजदूर सभी बेकारी की महाव्याधि से पीड़ित है।

इस भयंकर बेकारी के कारण क्या हैं ? घरेलू उद्योग-धन्धों का भुलाया जाना इसका एक कारण है। प्राचीन काल में हमारे देश में प्रत्येक घर का कुछ-न-कुछ उद्योग अथवा धन्धा हुआ करता था। यदि किसी घर में चरखा चलाया जाता था तो किसी में कपड़ा बुना जाता था। यदि किसी घर मे तेल-इत्र बनते थे तो किसी में खिलौने। यदि किसी घर में कागज बनाया जाता था तो किसी घर में रंग। यदि किसी घर में चित्रकारी का कार्य होता था तो किसी में गुड़-खाँड़ बनाने का व्यवसाय। पर आज हम अपने पुराने उद्योग-धन्धो को छोड़े हुए हैं। कई धन्धे तो ऐसे हैं जिन्हें हम धीरे-धीरे बिल्कुल भूल ही गए हैं।

बेकारी का अन्य कारण मशीनों का बाहुल्य है। मशीनों ने किसी हद तक घरेलू उद्योग-धंधों पर कुठाराघात किया है। इसके अतिरिक्त मजदूरों की रोटियाँ भी छिन गई है। एक मशीन थोड़े से समय में बहुत से मजदूरो के बराबर काम कर डालती है। जो कार्य एक दिन मे सौ मजदूर करते थे वही कार्य अब एक

मशीन दो चार मजदूरों की सहायता से दो-चार घण्टों में कर देती है। अतः स्पष्ट है कि मशीनो ने असंख्य मनुष्यों की जीविका छीन ली है, असंख्य मनुष्यो को बेकार बना दिया है। यदि मशीनें भारत मे ही बनतीं तो इनके द्वारा यह समस्या उतनी जटिल न होती, पर इनके विदेश मे बनने से दुगुनी बेकारी फैलती है।

बेकारी का अन्य कारण है औद्योगिक शिक्षा का अभाव। आजकल स्कूलो और कालेजो में ऐसी अव्यावहारिक शिक्षा दी जाती है कि उससे नवयुवकों की रोटी की समस्या हल नहीं होती। आजकल की शिक्षा-पद्धति ऐसी दूषित है कि वह मस्तिष्क के विकास मे ही विद्यार्थी की शक्तियो को लगाए रहती है। शिल्प-कला सम्बन्धी शिक्षा के अभाव के कारण शिक्षित नवयुवक सदैव पराधीन रहते हैं, दूसरों के मुँह ताकते हैं। जब तक सरकारी नौकरियो का द्वार खुला था तब तक तो शिक्षित लोग अच्छे-अच्छे पद पाते रहे और अपनी शिक्षा की सराहना करते रहे। परन्तु आज जब ढूँढ़ने से भी नौकरी नहीं मिलती तब उन्हे वर्तमान शिक्षा का वास्तविक रूप दिखलाई दिया है। आज शिक्षित-समुदाय इस शिक्षा को कोसता है। बेकारी का सबसे अधिक जोर शिक्षित नवयुवकों में है। छोटी-छोटी नौकरियो के लिए हजारो की संख्या मे आवेदन-पत्र आते हैं। २०) या २५) मासिक की नौकरी के लिए ग्रेजुएट तक अर्जियाँ भेजते हैं। यहाँ तक कि हमारे बहुत से शिक्षित नवयुवक जीवन से उकता कर अपनी जीवन-लीला ही समाप्त कर डालते हैं।

शिक्षितों की बेकारी बहुत कुछ उनकी मनोवृत्ति पर भी निर्भर है। प्रायः देखा जाता है कि शिक्षित लोग शारीरिक परिश्रम का काम करने में अपनी हेटी समझते हैं। हाथो से कठिन परिश्रम करना उनकी शान के खिलाफ है। उन्हे तो कुर्सी पर बैठकर कलम चलाना ही अधिक रुचता है। यदि उनसे खेती

करने को कहा जाय तो वे कभी तैयार नहीं होंगे, भले ही उन्हें खेती से पर्याप्त लाभ की आशा हो। वास्तव में आजकल की शिक्षा से मनुष्य में नौकरी की मनोवृत्ति पैदा हो जाती है। इस दृष्टि से मैकॉले को पूर्ण सफलता हुई है क्योंकि भारतवर्ष में इस शिक्षा के सूत्रपात करने मे उसका यही उद्देश्य था।

पर क्या बेकारी को दूर नहीं किया जा सकता? अवश्य। हाँ, उसके दूर करने के लिए कुछ प्रयत्नो की आवश्यकता है। घरेलू उद्योग-धन्धो का पुनरुत्थान किया जाय। सरकार को चाहिए कि स्थान-स्थान के प्राचीन धंधो की खोज कराए, मृतप्राय धंधो को जीवन दे और विदेशी प्रतियोगिता से उनकी रक्षा करे। प्रत्येक घर में कोई न कोई धंधा किया जाय। रेशम के कीड़े पालना, मधु मक्खी पालना, सूत कातना, कपड़ा बुनना, मुर्गियाँ पालना, तेल-इत्र बनाना, चटाइयाँ बनाना, चमड़ा पकाना, खिलौने बनाना आदि अनेक धंधे हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इनमें से कोई चुन लिया जाय।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि सरकार बेकारों को स्वतन्त्र व्यवसाय करने के लिए प्रोत्साहित करे। यदि कोई बेकार खेती आदि का व्यवसाय करना चाहे तो सरकार को चाहिए कि उसे धन की सहायता दे और उसकी कठिनाइयों को दूर करे। ऐसा करने से बहुत से बेकार स्वतन्त्र व्यवसायो मे लग जायँगे।

देश मे औद्योगिक शिक्षा का प्रचार बेकारी दूर करने का अच्छा साधन है। आजकल की शिक्षा मे परिवर्तन की आवश्यकता है। यदि स्कूलो और कालेजों में दस्तकारी की शिक्षा दी जाय तो कोई कारण नहीं है कि शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नवयुवक दर-दर नौकरियों के लिए भटकते फिरें। वे शीघ्र कोई-न-कोई व्यवसाय आरम्भ कर दें और स्वतन्त्र से जीविका कमा सकें।

पर यह तो भविष्य की बात है। जो शिक्षित नवयुवक आज बेकार बने मारे-मारे फिर रहे हैं उनका क्या प्रबन्ध हो? हमारे देश मे एक अनोखी बात यह देखने मे आती है कि यहाँ पर अगणित सुशिक्षित मनुष्य बेकार होते हुए भी हमारी सरकार इंगलैण्डवालो को नौकरियाँ देती रहती है। योग्य से योग्य मनुष्य जब भारतवर्ष मे मौजूद हैं तब क्या आवश्यकता है कि किसी नौकरी अथवा पद के लिए इंगलैण्ड से कोई मनुष्य बुलाया जाय? क्यों एक भारतवासी को जिसका भारतीय नौकरी पर सबसे प्रथम अधिकार है भूखा मरने दिया जाय और एक विदेशी की जेब गरम की जाय? पर किया क्या जाय? विदेशी सरकार हमारा हित क्यो सोचेगी? यदि आज ही यह नियम बना दिया जाय कि भारतवर्ष की प्रत्येक नौकरी भारतवासी को ही मिलेगी तो बहुत से बेकार नवयुवकों की खपत हो जाय, बहुत से बेकारों की रोटी की समस्या हल हो जाय। आज भारत के सिर पर अँगरेजी फौज का भार है। यदि उसके स्थान पर हिन्दुस्तानी फौज रक्खी जाय तो कितने भूखो के पेट भरे।

शिक्षित बेकारों के हित मे यह भी आवश्यक है कि नोकरों के लिए यह नियम बन जाय कि वे ५५ वर्ष की आयु पूरी होने पर नौकरी छोड़ने के लिए बाध्य किये जाएँ। आजकल यह देखा जाता है कि नौकरियों में आयु का ठीक प्रतिबन्ध नहीं है। ४-६ वर्ष की रियायत हो जाना तो साधारण सी बात है। ऐसा भी देखा जाता है कि कुछ नौकरियाँ आयु पूरी होने पर अलग किए हुए सरकारी नौकरों को फिर मिल जाती है। रियासतों और प्राइवेट संस्थाओ में ऐसा बहुत होता है। इस कुप्रवृत्ति को भी रोकना चाहिए।

बेकारी दूर करने के लिए बढ़ती हुई जन-संख्या मे कमी होना आवश्यक है। गत १० वर्ष में भारत की जन-संख्या मे तो

लगभग ५ करोड़ की वृद्धि हो गई है पर आय के साधनों में कोई वृद्धि नहीं हुई है। इससे बेकारी बहुत फैल गई है और लोग भूखे मर रहे है। अतः इसके लिए पुरुषों और स्त्रियो को नियंत्रण से रहना चाहिए और सन्तान-निरोध का आयोजन करना चाहिए।

हर्ष का विषय है कि सरकार का ध्यान बेकारी की समस्या की ओर आकृष्ट हुआ है और इस दिशा में कुछ कार्य भी हो रहा है। आशा है इसका शीघ्र ही हल हो जायगा और हमारा देश समृद्धि के सूर्य से आलोकित होगा।

'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—स्वाधीनता प्रत्येक जीवधारी का जन्मसिद्ध अधिकार है।
(२) पराधीनता के दो भेद—राजनैतिक और सामाजिक
(३) सीमित एव नियमित पराधीनता की आवश्यकता
(४) अनियमित और असीमित पराधीनता से कष्ट
(५) भारत का उदाहरण
(६) पराधीनता से मानसिक दुःख
(७) उपसहार—सारांश

स्वाधीनता प्रत्येक जीवधारी का जन्मसिद्ध अधिकार है। फिर क्यों एक प्राणी दूसरे प्राणी की स्वाधीनता का अपहरण करता है? मनुष्य अनेक पशु-पक्षियों की स्वतन्त्रता छीन लेता है। क्यों? अपनी स्वार्थ-साधना के लिए। वह यह नहीं सोचता कि पराधीन जीव की क्या दशा होती है। पिंजड़े में बन्द तोता हमारे मनोरंजन का साधन हो सकता है। पर उस बेचारे पर क्या बीतती है, यह उसके सकरुण नेत्रों से स्पष्ट प्रकट होता है। वास्तव मे किसी की स्वतन्त्रता छीन लेना पाप है।

पराधीनता दो प्रकार की होती है—एक राजनैतिक और

दूसरी सामाजिक। राजनैतिक पराधीनता से तात्पर्य राजा सम्बन्धी पराधीनता है। जिस राजा के राज्य में हम रहते हैं वह हमें अपने नियंत्रण में रखता है, हमारी इच्छाओं का दमन करता है और हमारे नागरिक अधिकारों का अपहरण करता है। सामाजिक पराधीनता से तात्पर्य समाज की पराधीनता से है। जिस समाज में हम रहते हैं उसके नियमों का पालन करना हमारे लिए अनिवार्य होता है जिससे उसकी व्यवस्था में विकार न उत्पन्न हो।

समाज की रक्षा के लिए उसके प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वाधीनता कुछ दबानी पड़ती है। यदि ऐसा न हो तो समाज छिन्न-भिन्न हो जाय। जिस समाज में बालक अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करे, शिष्य अपने गुरु की सेवा न करे, स्त्री अपने पति की अधीनता में न रहना चाहे, वह कभी स्थित नहीं रह सकता। अतः समाज की रक्षा के लिए सामाजिक पराधीनता नितान्त आवश्यक है।

इसी प्रकार कुछ सीमा तक राजनैतिक पराधीनता भी वांछनीय है। भले और बुरे दोनों प्रकार के लोग संसार में रहते हैं। बुरों से भलों की रक्षा किसी शासक अथवा राज-शक्ति के बिना कौन कर सकता है? प्रजा के प्रबन्ध, उसकी रक्षा, उसके नियंत्रण आदि के लिए राजा अथवा राज-काज करनेवाली कोई अन्य शक्ति अपेक्षित है। कोई दण्ड देनेवाला होगा और कोई दण्ड पानेवाला। कोई अफसर होगा और कोई मातहत। इस प्रकार की पराधीनता से चाहे प्रारम्भ में हमें दुःख मिले पर अन्त में सुख ही मिलेगा; क्योंकि उसका उद्देश्य समाज में, जनता में, शान्ति और सुख की स्थापना रहता है।

वास्तव में अनियमित और मर्यादा का उल्लंघन करनेवाली पराधीनता ही दुःख का कारण होती है और नित्य के व्यवहार में पराधीनता का हम यही अर्थ ग्रहण करते हैं। सामाजिक परा-

धीनता में यदि माता-पिता अपने बालक पर समुचित नियंत्रण रक्खेंगे तो वह उसे न खलेगा, पर यदि वे उसे बात-बात पर झिड़केंगे, हर समय उसकी निगरानी रक्खेंगे, तो सचमुच बच्चे का जीवन दुःखपूर्ण हो जायगा। इसी प्रकार राजनैतिक पराधीनता मे यदि राजा अथवा राज्य करनेवाली कोई अन्य शक्ति प्रजा की स्वाधीनता का उतना ही अपहरण करे जितना आवश्यक है तो प्रजा कभी दुःखी न होगी, पर यदि वह प्रजा की सारी स्वतन्त्रता हड़प जाय तो प्रजा को बड़ा कष्ट होगा।

भारतवर्ष का उदाहरण ले लीजिए। यहाँ पर क्या सामाजिक क्या राजनैतिक दोनो प्रकार की पराधीनता ही मर्यादा का उल्लंघन कर गई है। अतः देश का प्रत्येक व्यक्ति संतप्त है। सामाजिक क्षेत्र में शूद्रो और स्त्रियों की दुर्दशा है। हमारे यहाँ की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार शूद्रो की स्वाधीनता का कुछ हरण करके उनके लिए जो कर्तव्य निर्धारित किए गए थे वे भूतकाल मे उन्हे कभी कष्टप्रद नही हुए, परन्तु आज हैं। क्यों? इसलिए कि आजकल हम उनकी स्वाधीनता छीन लेने में बहुत आगे बढ़ गए हैं। यही दशा स्त्रियों की है। उनके दुःख का कारण भी हमारा अधीनता-सम्बन्धी आधिक्य है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय है। अधिकार अपहरण से उसे पीडा होती है। राजनैतिक पराधीनता ने तो और भी भयंकर रूप धारण किया है। विदेशी शासक को हमारे प्रति सहानुभूति क्यो होगी? वह तो हमारे देश से अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करेगा, चाहे हमे उसकी चेष्टा से पिसना ही क्यो न पड़े। उसका उद्देश्य हमारा अभ्युदय नहीं हो सकता। यही कारण है कि राजनैतिक पराधीनता ने हमारे अनेक अधिकारों को हड़प लिया है और अब भी हड़पने के प्रयत्न कर रही है। इसी से देश में हाहाकार मचा हुआ है। इसी से देश में घोर अशान्ति है।

पराधीनता से शारीरिक कष्ट तो भोगना ही पड़ता है मानसिक दुःख भी कम नही होता। पराधीन व्यक्ति का मस्तिष्क सर्वदा अशान्त रहता है, क्योंकि उसे न तो अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है और न इच्छित कार्य करने की। इससे उसका उत्साह भंग हो जाता है और उसकी आशाओं पर तुषारपात हो जाता है। उसके लिए जीवन नीरस और निरुद्देश्य हो जाता है।

सारांश यह है कि यदि पराधीनता संयमित एव मर्यादित हो तो उससे वैसा दुःख नही होता। पर यदि वह अमर्यादित होगी तो उससे अत्यन्त कष्ट होगा, क्योकि वह न तो मनुष्य को ऊपर उठने देगी और न वह उसे अपनी शक्ति का प्रयोग करने देगी। किसी कवि ने ठीक कहा है—

पराधीनता दुख महा, सुखी जगत् स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन-विषै, कनक पींजरे दीन॥

भारतवर्ष को समृद्ध बनाने के साधन

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—भारतवर्ष की प्राचीन समृद्धि
(२) भारत को समृद्ध बनाने के साधन—
(क) कृषि की उन्नति
(ख) प्राचीन उद्योग-धंधों का पुनरुत्थान
(ग) व्यापारिक उत्थान
(घ) स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम
(ङ) परिश्रम ऐव अध्यवसाय
(३) उपसहार—सारांश

विश्व मे आजकल कई देश समृद्धि के शिखर पर चढ़े हुए हैं। इंगलैण्ड को ही ले लीजिए। इस देश ने कितनी समृद्धि प्राप्त

कर ली है ! आज यह कितना धनाढ्य है ! हमारा देश भी एक दिन ऐसा ही समृद्ध था। एक वह समय था जब भारतवर्ष मे दूध-घी की नदियाँ बहती थी और एक यह समय है जब यह दाने दाने को तरसता है। एक वह समय था जब यह देश 'सोने की चिडिया' कहलाता था और एक यह समय है जब यह 'मिट्टी की चिड़िया' कहलाता है। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने प्राचीन भारत की समृद्धि के सम्बन्ध मे लिखा है, "यह हिन्दुस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों तरफ से अनेक रास्तो से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।" पर क्या आज यह अपनी खोई हुई समृद्धि को पुनः नहीं प्राप्त कर सकता है ? अवश्य। हाँ, प्रयत्न की आवश्यकता है।

भारत को समृद्ध बनाने के लिए हमें कृषि की उन्नति करनी होगी। कृषि हमारे देश को समृद्धिशाली बनाने का प्रधान साधन है, क्योंकि यह यहाँ का प्रधान व्यवसाय है। इसी के सहारे देश के असंख्य व्यक्तियों को खाने के लिए रोटी और पहनने के लिए कपड़ा मिलता है। आजकल खेती की बुरी दशा है। किसी भी देश में प्रति एकड़ और प्रति किसान भारतवर्ष की बराबर कम उपज नही होती। भरसक परिश्रम करने पर भी किसान अच्छी फसल नहीं उगा सकते। इसके कई कारण हैं। यहाँ सिंचाई का सुप्रबन्ध नहीं है। पुराने ढङ्ग के लकड़ी के हल प्रयोग में आते हैं जो जमीन में अधिक नीचे नहीं घुस सकते और नीचे की उपजाऊ मिट्टी को ऊपर नहीं ला सकते। ऊपर की मिट्टी अधिक दिनों तक उपजाऊ नहीं बनी रह सकती। अच्छे खाद का अभाव भी खेती की कम पैदावार का उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अच्छे बीजों के अभाव से भी अच्छी फसल नही उगती। अनेक प्रकार के रोगों से फसल का नाश हो जाता है। अतः हमे चाहिए

कि हम इन सब बातो का समुचित प्रबन्ध करे जिससे खेती की उन्नति हो।

प्राचीन उद्योग-धन्धो का पुनरुत्थान भी हमारे देश को समृद्धि-शाली बनाने का अच्छा उपाय है। सुनते हैं यहाँ पहले इतना बारीक कपडा हाथ से बुना जाता था कि उसका थान का थान अँगूठी मे होकर निकल सकता था। यहाँ के खिलौने देश देशान्तरों में भेजे जाते थे। आज हम अपने प्राचीन कला-कौशल को भूले हुए हैं। जहाँ प्राचीन काल मे हमारे कला-कौशल और उद्योग-धंधो के कारण विदेशो से असंख्य रुपया खिचकर हमारे देश में आता था वहाँ आजकल हमारे देश का बहुत सा धन विदेशो मे जा रहा है। इस धन को अपने देश से बाहर जाने से रोकने का साधन यही है कि हम अपनी आवश्यक वस्तुओं को जुटाने के लिए प्राचीन उद्योग-धन्धो को पुनर्जीवित करें और नए-नए धंधे सीखे। कपड़ा बुनना, चरखा चलाना, रेशम के कीड़े पालना, साबुन बनाना, कागज बनाना, रंग बनाना, मधु-मक्खी पालना, तेल-इत्र बनाना, मुर्गियाँ पालना, खिलौने बनाना आदि ऐसे धंधे है जिनको थोड़ी सी ही पूँजी से किया जा सकता है। जापान ने जो इतनी अधिक समृद्धि प्राप्त की है इसका कारण उसके उद्योग-धंधे है। जापान के हर एक स्कूल में बालक को कुछ न कुछ धंधा सिखाया जाता है। बालक घड़ी बनाना, साइकिल की मरम्मत करना, फोटोग्राफी का काम करना आदि धंधे स्कूलो में सीखते हैं। उन कामों से बालको का मनोरंजन होता है और राष्ट्रीय धन-धान्य की वृद्धि भी होती है। जापान की इस विशेषता को हम क्यो न अपनी शिक्षा मे स्थान दे? क्या ही अच्छा हो यदि हमारे बालकों को आरम्भ से ही दस्तकारी की शिक्षा दी जाय।

हमारे देश की समृद्धि का अन्य साधन व्यापारिक उत्थान है। आजकल हमारे यहाँ व्यापार की शोचनीय दशा है। इसका

बहुत कुछ उत्तरदायित्व हमारी विदेशी सरकार पर है। उसने रुपया-शिलिंग-अनुपात को परिवर्तनशील रक्खा है जिससे हमे व्यापार मे पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त आयात-निर्यात-कर भी हमारे लिये हितकर नहीं है। वस्तुतः हमारी सरकार विदेशी होने के कारण सदैव अपने देश के व्यापार के कल्याण के प्रयत्न करती रहती है जिससे हमारे देश का व्यापार चौपट हो गया है। हमारे व्यापार को क्षति पहुँचाने के लिए सरकार घरेलू उद्योग-धंधो को संरक्षण नहीं देती। यह कार्य अच्छा नहीं है। प्रत्येक राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने मे कुछ उठा न रक्खे। अतएव हमारी सरकार को सब प्रकार से हमारे व्यापारिक उत्थान मे योग देना चाहिए।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम-भाव रखने से भी भारतवर्ष की समृद्धि होगी। आजकल हममे से अधिकांश मनुष्यों मे यह भाव नही पाया जाता। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वदेशी वस्तुओ से न करके विदेशी वस्तुओं से करते हैं। जापान, इङ्गलैण्ड, जर्मनी आदि विदेशों की वस्तुओ की खपत हमारे देश में होती है। परिणाम यह होता है कि देश की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग विदेशों में चला जाता है और हमारा देश निर्धन होता जाता है। इससे अधिक और हमारी मूर्खता क्या हो सकती है कि हम स्वयं अपनी लक्ष्मी का बहिष्कार कर रहे है, हम स्वयं अपने हाथो से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसकी नाड़ियों में भारत-माता का रक्त बहता है यह प्रण करे कि वह आजीवन कभी कोई विदेशी वस्तु नहीं खरीदेगा चाहे उसे वह वस्तु स्वदेशी वस्तु की अपेक्षा सस्ती ही क्यो न मिले। यहाँ तक कि यदि हमें कोई विदेशीवस्तु मुफ्त भी दे तो भी उसे ग्रहण न करना चाहिए और उसके स्थान पर रुपये व्यय करके भारतीय वस्तु क्रय करनेमे गर्व एवं हर्ष करना चाहिए।

हमारे देश की समृद्धि के लिए यह भी आवश्यक है कि हम परिश्रमी एवं अध्यवसायी बनें और कार्य करने में कभी जी न चुराएँ। यहाँ देखा जाता है कि सम्मिलित प्रणाली के कारण परिवार भर के भरण-पोषण का भार गृह-स्वामी पर होता है। वही बेचारा सारे कुटुम्ब की रोटी की समस्या हल करता है। शेष पारिवारिक व्यक्ति जीविकोपार्जन में कुछ भी सहायता प्रदान नहीं करते और हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे खाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ भिखारियों की संख्या भी कम नहीं है। ये लोग काम करने से डरते हैं, हाथ-पैर हिलाना नहीं चाहते। लूले, लँगड़े, अंधे, वृद्ध आदि शक्तिहीन व्यक्तियों का तो भीख माँगकर पेट भरना उचित है, पर हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों के लिए यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय है। हमारे यहाँ पाखंडी साधू भी बहुत हैं जो एक प्रकार के भिखारी ही हैं। ये देश की सम्पत्ति के एक बड़े भाग को खा जाते हैं। देश की दरिद्रता का बहुत कुछ उत्तर-दायित्व इन अकर्मण्य लोगों पर है। इस दृष्टि से ये लोग देश के कोढ़ हैं, देश के शत्रु हैं।

सारांश यह है कि यदि भारत में कृषि-सुधार हो, प्राचीन उद्योग धंधों का पुनरुत्थान हो, व्यापार की उन्नति हो, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम हो, निवासी परिश्रमी हों तो यह देश शीघ्र समृद्धिशाली हो सकता है, तो यह देश पुनः लक्ष्मीजी का कृपा-भाजन बन सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

राष्ट्र-निर्माता महात्मा गांधी

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—आविर्भाव के समय भारतवर्ष की दशा

(२) जन्म, माता-पिता, शिक्षा, विवाह, आदि

(३) वकालत

(४) अफ्रीका में सत्याग्रह
(५) ईसवी सन् १६१४ से १६२० तक के कार्य
(६) ईसवी सन् १६२० में असहयोग-आन्दोलन का आरम्भ
(७) ईसवी सन् १६२४ से १६३० तक के कार्य
(८) ईसवी सन् १६३० से प्रचण्ड आन्दोलन का आरम्भ
(६) हरिजन-आन्दोलन से अब तक
(१०) उपसंहार—गांधीजी की महत्ता

भारतवर्ष मे अँगरेजी राज्य का सिक्का भली भाँति जम गया था। सरकार भारतियों को जैसे चाहती थी नचाती थी। देश पूर्णतः सोया हुआ था। जातीयता और राष्ट्रीयता का कोई नाम भी नहीं जानता था। सभी पाश्चात्य सभ्यता में रँगे हुए थे। जनता संतप्त थी। ऐसे समय में जलती हुई पृथ्वी को शांति देने-वाले पीयूषवर्षी मेघ की भाँति महात्मा गांधी का आविर्भाव हुआ।

आपका जन्म २ अक्टूबर सन् १८६६ को काठियावाड प्रदेश के पोरबन्दर राज्य के एक कुलीन घराने में हुआ। आपके पिता करमचन्द पहले पोरबन्दर के और पीछे राजकोट और बीकानेर के दीवान रहे। आपकी माता पुतलबाई बहुत साधु-स्वभाव की और पूजा-पाठ तथा व्रत-उपवास में निष्ठा रखनेवाली थीं। आपका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गांधी है। आप बचपन से ही सत्य और अहिंसा के भक्त रहे है और माता, पिता, गुरु आदि पूज्य व्यक्तियों के प्रति भक्ति और निष्ठा आपमें जन्म से ही देखी जाती है। बाल्यावस्था में आप मन्दबुद्धि, लज्जालु और संकोच-शील थे। आपका विद्यार्थी-जीवन साधारण रहा। आपका विवाह १४ वर्ष की आयु में ही हो गया। इससे जीवन बहुत आसक्तिमय हो गया। यहाँ तक कि कुसंगति में पड़कर मांस, बीड़ी, चोरी और व्यभिचार की ओर आप झुके, पर सँभल गए।

सन् १८८५ मे आपके पिता का देहान्त हुआ और आपकी स्त्री के पहली सन्तान हुई। वाल-विवाह के परिणाम-स्वरूप सन्तान दो-चार दिन से अधिक जीवित न रही। घर मे राम-नाम की चर्चा रहने के कारण आपकी भी राम-नाम और रामायण में श्रद्धा हो गई। सन् १८८७ मे मैट्रिक पास करके आप भावनगर कालेज में भरती हुए। मांस, मदिरा और स्त्री-प्रसंग से दूर रहने का वचन देकर जाति से बहिष्कृत हो आप सन् १८८८ में वैरिस्टरी पढ़ने विलायत चले गए। वहाँ आपने बड़ी सादगी और पवित्रता का जीवन व्यतीत किया। बाइविल, थियोसोफिस्ट-साहित्य, गीता आदि के अध्ययन से आपका जीवन सात्विक हो गया। सन् १८६१ मे वैरिस्टरी पास करके आप भारतवर्ष लौट आए।

बम्बई मे एक असफल वकील के रूप मे आपके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ हुआ। आप खूब तैयारी करके अदालत मे जाते, पर वहाँ सब कुछ भूल जाते। मुकदमे की पैरवी करने खड़े होते तो आपके हाथ-पैर काँपने लगते। निराश होकर आप राजकोट आ गए और वहाँ अर्जियाँ, दावे आदि लिखकर जीविका कमाने लगे। वहाँ अँगरेजो के काले-गोरे के भेद-भाव की आपके हृदय पर ठेस लगी और आपका मन वहाँ से ऊब गया। आप कोई नौकरी ढूँढ़ने लगे। इसी समय पोरबन्दर के एक फर्म के ४० हजार पौण्ड के दावे की देख-रेख के लिए आपको अफ्रीका जाना पड़ा। मार्ग-व्यय, मुफ्त भोजन तथा निवास और १०५ पौण्ड मेहनताना ठहरा। सन् १८६३ मे आपने अफ्रीका को प्रस्थान किया। अफ्रीका पहुँचकर आप पगड़ी पहने अदालत मे गए। वहाँ आपसे पगड़ी उतारने को कहा गया। आप उठकर चले आए। उसी दिन से अफ्रीका मे उस आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ जिसने आगे चलकर इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। स्थान स्थान पर, रेल मे, होटल मे, घोड़ा-गाड़ी पर, जो आपका

अनादर हुआ उससे आपको बहुत दुःख हुआ। भारतीयो के साथ भेदभाव को न सहकर उसके विरुद्ध आपने आन्दोलन आरम्भ किया। ट्रान्सवाल मे भारतीय मताधिकार से वंचित थे, सड़क की पगडंडी पर नही चल सकते थे, ९ बजे के पश्चात् बिना आज्ञा के घर से बाहर नही निकल सकते थे और भूमि के स्वामी नही हो सकते थे। अन्य भू-भागों मे भी ऐसे ही अन्याय-पूर्ण नियम थे। जिस दावे के लिए आप अफ्रीका गए थे उसका समझौता कराके आप अफ्रीका मे भारतीयो को दशा सुधारने मे लग गए। वकालत का धन्धा आपके जीवन-निर्वाह का साधन था।

सन् १९०६ मे ट्रांसवाल सरकार ने एक बिल कौंसिल मे पेश किया जिसका आशय यह था कि ट्रांसवाल मे रहने वाले भारतीय स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी को एक परवाना लेना होगा जिसके लिए उनको दोनो हाथो की सब अँगुलियो और अँगूठो के निशान देने होगे, उनके शरीर-चिन्ह नोट किए जायँगे और सदैव वह परवाना उन्हे अपने साथ रखना होगा। इससे अधिक भयानक अपमान भारतीयो का और क्या हो सकता था? इस बिल के विरोध होने पर भी पास हो जाने पर इसको न मानने का सत्याग्रह आपने आरम्भ कर दिया। चारो ओर सत्याग्रह की आग धधकने लगी। सरकार ने दमन आरम्भ किया। गिरफ्तारियाँ हुईं। आपको भी जेल की हवा खानी पड़ी। पर दमन से आन्दोलन और जोर पकड़ता गया। अतः सरकार ने आपसे समझौता किया। परवाना-सम्बन्धी कानून रद्द हुआ। फिर सरकार ने ईसाई धर्म के अनुसार न हुए विवाहो को गैर-कानूनी ठहराया। यह पुनः भारतीयो का अपमान था। अतः फिर सत्याग्रह शुरू हुआ। सरकार को फिर झुकना पड़ा। भारतीय विवाहो को जायज माना गया। सन् १९१४ मे अफ्रीका

सत्याग्रह मे पूर्ण सफलता पाने के पश्चात् आप स्वदेश लौट आए।

बम्बई और पूना मे आपका खूब स्वागत हुआ। कुछ दिन आप श्री गोपालकृष्ण गोखले के साथ रहे। फिर भारतीय नेताओं से मिलने के लिए आपने भारत का दौरा किया। आप जहाँ जाते थे वहीं आपका स्वागत होता था। भारत की छोटी-बड़ी सभी समस्याएँ आपके सामने आने लगीं जिनमें आपको खूब सफलता मिली। बिहार मे नील की खेती करनेवाले गोरो के वहाँ के किसानो पर किए गये अत्याचारो का आपने अन्त किया। अहमदाबाद के मजदूरों की समस्या को भी आपने हल किया। खेड़ा में सत्याग्रह द्वारा किसानो पर फसल नष्ट होने के कारण लगान माफ कराया। यूरोपीय समर मे आपने लगन से अँगरेजो की सहायता की। युद्ध मे की गई सेवा और सहायता के पुरस्कार-स्वरूप राजनैतिक अधिकार पाने की आशा पर भारतीय सरकार ने रौलेट एक्ट बनाकर तुषारपात कर दिया। इसके विरुद्ध देश मे आन्दोलन हुआ। सरकार से प्रार्थनाएँ की गईं। कुछ भी परिणाम न निकलने पर आपने सत्याग्रह शुरू करने की घोषणा की। ६ अप्रैल सन् १९१९ को सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा हुई। हड़ताल, उपवास और सभाएँ करना तै हुआ। पंजाब में इसी दिन दंगा होने पर जालियाँवाला भयानक गोलीकाण्ड और हत्याकाण्ड हुआ जिससे देश के कोने-कोने मे आग धधकने लगी। सत्याग्रह के लिए अहिंसात्मक वातावरण न रहने के कारण आपने उसे बन्द कर दिया। सरकार ने १८५७ के गदर की आशंका के कारण भयानक दमन करना आरम्भ कर दिया। उन दिनो मुसलमानों मे खिलाफत की उत्तेजना थी और हिन्दुओ मे जालियाँवाले बाग के गोलीकाण्ड की। फलतः सन् १९२० मे असहयोग आन्दोलन का सूत्र-पात हुआ। सरकारी

खिताब, वकालत, अदालत, कौंसिलें, स्कूल-कालेज, विदेशी वस्त्र आदि के वहिष्कार की चारो ओर धूम मच गई। सारे देश में हलचल हो गई। चारो ओर गिरफ्तारियाँ और मार-पीट होने लगी। सन १६२२ मे आप भी गिरफ्तार हुए और आपको ६ साल की सजा दी गई। जेल में आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आपके अपेनडिसाइटिस होगया जिसका आपरेशन किया गया। इसके बाद आप छोड़ दिए गए।

सन १६२४ मे देहली में भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। आपने जाकर दंगे को शान्त किया और देश के पाप प्रायश्चित के लिये २१ दिन का उपवास किया। आपका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नही था। इसलिए सारा देश इस निश्चय से घबड़ा गया। उस वर्ष आप कांग्रेस के सभापति चुने गए। आपने खादी-प्रचार, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि कार्य-क्रम कांग्रेस के सामने रक्खा। देश में फिर जागृति हुई। सरकार ने भारत में नवीन सुधारों की रूप-रेखा तैयार करने के लिए 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति की जिसमें एक भी भारतीय न था। इससे देश में बड़ा असन्तोष फैला।

आपने सन् १६३० में नमक-कानून के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। ६ अप्रैल को डांडी में आपके नमक कानून तोड़ने पर देश के कोने-कोने में आन्दोलन की प्रचण्ड अग्नि सुलग उठी। सरकार ने गिरफ्तारियाँ, मार-पीट आदि साधनों द्वारा खूब दमन किया। पर ज्यों-ज्यों दमन होता था त्यों-त्यों आन्दोलन जोर पकड़ता था। ५ मार्च सन् १६३१ में सरकार ने आपसे समझौता कर लिया और आन्दोलन बन्द हो गया। फिर आप गोल-मेज परिषद के लिए इङ्गलैण्ड गए पर निराश लौटे। यहाँ की परिस्थिति ठीक नहीं थी। सरकार ने समझौते को तोड़ दिया था। अतः आपने फिर आन्दोलन शुरू कर दिया। आपको

गिरफ्तार करके यरवदा जेल में रक्खा गया। सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय में हिन्दुओं से अछूत जातियों को अलग करके उन्हें पृथक् निर्वाचन का विशेषाधिकार दिया। आपने जब यह सुना तो आमरण उपवास करने की ठान ली और उपवास आरम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि सरकार ने पृथक् निर्वाचन रद्द कर दिया।

फिर आपने अछूतों की दशा सुधारने के लिए जेल से ही हरिजन आन्दोलन आरम्भ किया। सरकार ने आपको जेल से छोड़ दिया। यह आपके प्रयत्नों का ही फल है कि आज हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश, शिक्षा आदि की सुविधाएँ मिल गई हैं और उनके साथ सहानुभूति तथा समानता का व्यवहार होने लगा है। आपने कुछ वर्षों के लिए कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करके अपने को ग्राम-सुधार में लगाया। अब आप फिर आधुनिक यूरोपीय युद्ध में भारतीय सहायता के विरुद्ध सत्याग्रह का संचालन करने के कारण कारागृह-वासी हैं।

आप एक उत्कृष्ट सुधारक हैं। आप सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं। आपकी रहन-सहन एवं प्रकृति बड़ी सीधी-सादी और प्रभावशाली है। आपका चरित्र उज्ज्वल एवं अनुकरणीय है। आप काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह से परे हैं। अत: आप महात्मा नाम से विभूषित हैं। आपकी महत्ता वर्णनातीत है। भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनानेवाले आप ही हैं। भारतवर्ष में जागृति करनेवाले आप ही हैं। भारत माता की सूखी नसों में रक्त का सचार करनेवाले आप ही हैं। देश के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सबके हृदय-सम्राट आप ही हैं। आप हमारी आशा हैं, आप हमारे सर्वस्व हैं। आपकी कठोर साधना, तपस्या, त्याग तथा आत्मोत्सर्ग धन्य है, और धन्य है वह जननी जिसके गर्भ से आप सरीखी महान आत्मा उत्पन्न हुई।

भारतीय इतिहास का प्रसिद्ध पुरुष—छत्रपति शिवाजी

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—आविर्भाव के समय की परिस्थितियाँ
(२) जन्म, माता-पिता, शिक्षा आदि
(३) संगठन और आस-पास के धावे
(४) बीजापुर के सुलतान की छेड़-छाड़ और अफजलखाँ की मृत्यु
(५) मुगल बादशाह औरंगजेब से संघर्ष
(६) राज्य-स्थापना और प्रबन्ध
(७) मृत्यु और आचरण
(८) उपसंहार—शिवाजी का महत्त्व

भारतवर्ष में चारो ओर मुसलमानों के राज्य स्थापित थे। वे हिन्दुओ के साथ दुर्व्यवहार करते थे। उनके अत्याचारों के कारण हिन्दू-जाति दुःख और निराशा के समुद्र में डूबी हुई थी। धार्मिक-असहिष्णु मुसलमान-शासक भिन्न धर्मानुयायी हिन्दुओं को तंग करने में तत्पर थे। हिन्दुओ को राज-काज में कुछ भी अधिकार प्राप्त न थे। उन्हे उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था और पद-पद पर अपमानित होना पड़ता था। पर वे निस्सहाय और दीन बने हुए सब कुछ सह लेते थे। उनके धर्म पर आक्षेप होते थे पर वे चुप थे, क्योकि उनमे कोई शक्ति नहीं थी। उनके लिए जीवन में कोई मिठास नही रह गया था। उनके आँसू भी पोंछनेवाला, उनके साथ सहानुभूति भी दिखलाने वाला, कोई न था। ऐसे संकट के समय मे हिन्दू धर्म के रक्षक, हिन्दू-जाति के जीवन-दाता वीर-शिरोमणि छत्रपति शिवाजी इस देश में अवतीर्ण हुए।

शिवाजी का जन्म सन १६३७ ई० में पूना के निकट एक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम शाहजी और माता का नाम जीजाबाई था। शाहजी एक साधारण जागीरदार थे और जीजाबाई असाधारण बुद्धिमती और विदुषी थी। माता का

बालक शिवाजी पर अत्यन्त उत्कृष्ट प्रभाव पड़ा। वे शिवाजी को मुसलमानो से टक्कर लेने के लिए तैयार करना चाहती थीं। अतः उन्होंने इनको रामायण, महाभारत आदि वीरतापूर्ण ग्रन्थो मे वीर पुरुषो की कहानियाँ सुनाना आरम्भ किया और हिन्दू धर्म की शिक्षा देना शुरू किया। वे शिवाजी से यह भी कहा करती थीं—"शत्रुओ का नाश करके कुल का उद्धार करनेवाला हमारे कुल में पैदा होनेवाला है। पर देखें यह बात कब सत्य होती है।" इसका शिवाजी पर भारी प्रभाव पड़ता था। दादाजी कोडदेव शाहजी के विश्वासनीय थे। उन्हीं को शिवाजी की शिक्षा का भार सौंपा गया। उन्होने भी इनको हिन्दू-धर्म के साँचे मे ढालना आरम्भ किया। पढ़ने-लिखने मे तो इनका मन अधिक नहीं लगा पर कुश्ती लड़ना, घोड़े की सवारी करना, अस्त्र-शस्त्र चलाना आदि कार्य इन्होंने भली भाँति सीख लिए। माता और गुरु की शिक्षा का शिवाजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनका हृदय वीरता और साहस से भर गया। उसमें हिन्दू-धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न होगई। इन्होंने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति के उद्धार करने का बीड़ा उठाया और मुसलमान अत्याचारी शासको से टक्कर लेने की प्रतिज्ञा की। उसी समय इन्हे स्वामी रामदास की सत्संगति का भी प्रसाद मिला। कभी-कभी धार्मिक मनोवृत्ति की प्रबलता शिवाजी को विरक्तता की ओर झुकाती थी। ऐसे अवसर पर स्वामी जी शिवाजी को बतलाते थे कि तुम्हारा यही सच्चा धर्म है कि तुम देश का, हिन्दू-धर्म का, हिन्दू जाति का, उद्धार करो। इसी से तुम्हे उच्च गति मिलेगी। इसीलिए परमेश्वर ने तुम्हे इस संसार में भेजा है। इस प्रकार स्वामीजी इनको सदैव उत्तेजित करते रहे।

शिवाजी ने मरहठा जाति में जागृति पैदा की और उसे एकता के सूत्र मे पिरो दिया। मरहठों का संगठन करके ये इधर-

उधर धावा मारने लगे। इन्होंने पुरन्दर, तोरन, जुनैर आदि किलों पर अपना अधिकार जमा लिया। बीजापुर का बादशाह शिवाजी की इस उन्नति को न सह सका और मन में कुढ़ने लगा। उसने शिवाजी को पकड़ना चाहा, पर इस काम में उसे सफलता न मिली।

जब बादशाह को शिवाजी हाथ न लगे तो उसने शाहजी को पकड़ कर कैद कर लिया। शिवाजी इस दुर्व्यवहार से बड़े बिगड़े। इन्होंने मुगल-सम्राट् शाहजहाँ को एक पत्र लिखा जिसमें बीजापुर के बादशाह के उक्त कार्य की बड़ी निन्दा की। शाहजहाँ ने शाहजी को छुड़ा दिया। बादशाह इस अपमान से बहुत क्रुद्ध हुआ। शिवाजी उसकी आँखों में चुभने लगे। उसने अपने सेनापति अफजलखाँ को एक सेना के साथ शिवाजी के पकड़ने के लिए भेजा। अफजलखाँ बड़ा चालाक था। उसने शिवाजी को कहला भेजा कि यदि तुम मुझ से आकर मिलो तो मैं तुम्हारे सब अपराध बादशाह से क्षमा करवा दूँगा और बीजापुर के जो किले तुमने ले लिए हैं उन्हें तुमको ही दिलवा दूँगा। शिवाजी ने खाँ के आदमी से कहा कि मैं खाँ साहब से अवश्य मिलूँगा। परन्तु खाँ साहब अपने साथ सेना न लावें। वह इस बात पर राजी होगया। शिवाजी उससे मिलने आए। बात-चीत करते करते दोनों में झगड़ा होगया। अफजलखाँ ने शिवाजी पर तलवार का वार किया। शिवाजी ने झट अपना बघनख जो उनके वस्त्रों में छिपा था उसके पेट में घुसेड़ दिया। खाँ धड़ाम से धराशायी हुआ और मर गया। मरहठों की सेना जो छिपी हुई खड़ी थी खाँ की सेना पर टूट पड़ी और उसे मार भगाया। शिवाजी ने खाँ के शव को पहाड़ी पर गाड़ दिया और उसके ऊपर एक मीनार बना दी। इसके पश्चात् बीजापुर के बादशाह ने शिवाजी के विरुद्ध और भी कई चेष्टाएँ कीं, परन्तु उसे सफलता न मिली।

अंत में उसने शिवाजी का लोहा मान लिया और जो भू भाग शिवाजी ने जीत लिए थे उनका इन्हे शासक स्वीकार कर लिया।

अब शिवाजी ने मुगल-साम्राज्य पर धावा करना आरम्भ कर दिया। इस समय औरंगजेब मुगल सम्राट् था। उससे हिन्दू प्रजा अत्यन्त दुःखी थी। शिवाजी ने पहले ही हिन्दुओं के दुःखों का अन्त करने का निश्चय कर लिया था। औरंगजेब ने इनको बढता हुआ देखकर दवाने के लिए अपने मामा शायस्तखाँ को भेजा। वह आकर पूना मे ठहर गया। ये अपने साथियो की बरात वनाकर पूना मे घुस गए और रात को यकायक आक्रमण कर दिया। शायस्तखाँ भाग निकला। उसका पुत्र मरहठो से लड़ा और मारा गया। अब औरंगजेब बहुत घबड़ाया। उसने जयपुर-नरेश जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। शिवाजी हिन्दुओ से लड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए वे जयसिंह के साथ संधि करने के लिए तैयार हो गए और मुगलो के जीते हुए प्रान्त इन्होंने लौटा दिए। संधि के समाचार से औरंगजेब बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने मिलने के लिए इनके पास निमंत्रण भेजा। जयसिंह के आश्वासन पर ये उससे मिलने को आगरे आए। औरंगजेब ने दरबार मे शिवाजी का अपमान किया और उन्हें कैद कर लिया। शिवाजी बड़े चतुर थे। इन्होंने रोगी होने का बहाना किया और मेवाओ, मिठाइयो और फलो का दान देना आरम्भ कर दिया। एक दिन ये मिठाई के टोकरे में बैठकर औरंगजेब के चंगुल से बाहर निकल आए और साधुओं के वस्त्र पहनकर छिपते-छिपते पूना आ पहुँचे। औरंगजेब यह जानकर बड़ा दुःखी हुआ और हाथ मलकर पछताने लगा। दक्षिण पहुँचकर शिवाजी ने अपनी सेना का पुनः संगठन किया और मुगलो के कई प्रान्त जीत लिए। औरंगजेब इनसे खूब परेशान हो गया। उसने इनको दबाने की कई चेष्टाएँ कीं पर वे सभी निष्फल हुईं।

शिवाजी ने सन् १६७४ में शासक बनने का विचार किया। राजगढ़ में इनका राज्याभिषेक हुआ। इनका राज्य-प्रबन्ध बड़ा अच्छा था। प्रजा सब प्रकार से सुखी थी। शासन के लिए इन्होंने एक सभा बनाई थी जिसमें आठ सदस्य थे। इसी सभा की सहायता से सब राज-काज चलता था। इन्होने आस-पास चारो ओर अपनी विजय पताका फहराई और गोलकुंडा तथा बीजापुर के राजाओ को कर देने के लिए बाध्य किया। दक्षिण में सब जगह इनका दबदबा हो गया।

सन् १६८० में शिवाजी का स्वर्गवास हुआ। ये वीर तो थे ही, सच्चरित्र भी थे। एक बार एक मुसलमान-स्त्री इनके सैनिको के हाथ लगी। शिवाजी ने उसका माता के समान आदर किया और उसको उसके स्थान पर पहुँचा दिया। जब कभी इनके हाथ कुरान लग जाती थी तब ये उसको मुसलमानो को वापिस दे देते थे। कट्टर हिन्दू, गो-ब्राह्मण-सेवक तथा हिन्दू-धर्म-भक्त होते हुए भी इन्होंने कभी धार्मिक असहिष्णुता नहीं दिखलाई। ये बुद्धिमान, साहसी तथा तेजस्वी थे और कठिनाइयो एवं कष्टों का सहर्ष सामना करते थे।

शिवाजी ने हिंदू-जाति और हिंदू-धर्म के लिये जो कार्य किए उनके कारण हिन्दू-समाज इनका सदा ऋणी रहेगा। मुसलमानों ने इनसे भयभीत होकर हिन्दुओ पर अत्याचार करना बन्द कर दिया। फलतः पुनः हिन्दुओ का मस्तक ऊँचा हो गया। यही कारण है कि आज भी शिवाजी प्रत्येक हिन्दू के हृदय पर अधिकार किए हुए हैं। आज भी प्रत्येक हिन्दू इनको आदर की दृष्टि से देखता है। आज भी प्रत्येक-हिन्दू इन पर गर्व करता है।

बालचर या बॉय-स्काउट संस्था

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—बालचर—संस्था का जन्म और विकास

(२) बालचर-संस्था का आधुनिक रूप
(३) वर्तमान काल में इसकी सर्व-प्रियता
(४) बालचरों की वेश-भूषा
(५) बालचरों की शिक्षा
(६) बालचरों के कर्त्तव्य
(७) बालचरों की सेवाएँ और उपयोगिता
(८) उपसंहार—बालचर-संस्था का भविष्य

बालचर-संस्था का जन्म दक्षिण अफ्रीका मे बोअर युद्ध (Boer war) के समय हुआ था। इसके जन्मदाता सर रोबर्ट बैडन पावल हैं। कहा जाता है कि जब वे भारत मे सेनापति थे तब हरिद्वार के जंगल मे किसी महात्मा से बातें करते समय उन्हें इसका आभास मिला था। उन्होने सन् १९०० ई० मे जिस समय उक्त युद्ध हो रहा था बालचरो की एक सेना बनाई। इस सेना से अँगरेजो को बड़ी सहायता पहुँची। सर रोबर्ट बैडन पावल नवयुवकों को फौजी शिक्षा देने में दक्ष थे। उन्होने बड़ी योग्यता से कुछ नवयुवकों को युद्ध के लिए शिक्षित किया। युद्ध के समाप्त होने पर उन्होने देखा कि बालचर-संस्था जिस प्रकार युद्ध मे सहायक हो सकती है इसी प्रकार शान्ति के समय भी। बल्कि शान्ति के समय उससे और भी अधिक लाभ हो सकते है। ऐसा समझ कर उन्होने बालचर-संस्था का प्रचार इधर-उधर किया। उसी समय से यह संसार के समस्त देशों मे प्रचलित हो गई है। भारतवर्ष मे इस संस्था की स्थापना यूरोपीय महासमर के समय हुई। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने भारतीय बालचर-संस्था की स्थापना की। धीरे-धीरे इसका प्रचार भारत के सब प्रान्तो मे हो गया है। प्रायः प्रत्येक स्कूल में बालचर होते है।

बालचर-संस्था का आधुनिक रूप इस प्रकार है। ८ वर्ष की आयु का अथवा इससे बड़ा बालक बालचर बन सकता है।

उसे कुछ समय शिक्षा दी जाती है जिसमें उसे बालचरों के नियम, सेलूट आदि सिखाए जाते हैं। इसके पश्चात् उसे ईश्वर के प्रति, राजा के प्रति, देश के प्रति, कर्तव्य पालन करने की सौगन्ध खानी पड़ती है। उसे दूसरों की सेवा करने और बालचर-नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। फिर उसे किसी पैट्रोल में प्रविष्ट कर लिया जाता है। पैट्रोल ८ बालचरो का होता है। पैट्रोल का मुखिया पैट्रोल-लीडर कहलाता है। चार से अधिक पैट्रोलो का एक ट्रूप होता है। ट्रूप का मुखिया ट्रूप-लीडर कहलाता है। प्रत्येक ट्रूप के ऊपर एक स्काउट-मास्टर होता है। जिले भर के ट्रूप डिस्ट्रिक्ट-स्काउट-कमिश्नर के और सूबे भर के स्काउट प्रोविंशियल-स्काउट कमिश्नर के अधीन होते हैं।

वर्तमान काल में बालचर-संस्था की सर्वप्रियता नित्यप्रति बढती जा रही है। प्रत्येक स्कूल में बालचर देखे जाते है। मेलो मे चले जाइए, आपको बालचरो का प्रबन्ध मिलेगा। तमाशो मे चले जाइए, आपको बालचरो की देख-रेख मिलेगी। किसी भी पर्व पर गंगाजी आदि पवित्र नदियों मे स्नान करने जाइए, आपको बालचर इधर-उधर भागते और प्रबन्ध करते हुए दिखाई देंगे। जहाँ कहीं भीड़ होती है वहीं रक्षा, शान्ति, सेवा आदि के लिए बालचरों का समूह पहुँच जाता है।

सभी बालचरो की वेष-भूषा समान होती है। प्रत्येक बालचर साफा या टोपी, खाकी कमीज, खाकी नेकर, खाकी मोजे, बूट और स्कार्फ पहनता है। प्रत्येक अपने पास झण्डी, लाठी और सीटी रखता है।

बालचरो को भोजन बनाने, तैरने, घायल के पट्टी बाँधने, गाँठें लगाने, मार्ग ढूंढ़ने, सिगनल देने, सामयिक घर बनाने, सामयिक सड़क और पुल बनाने, घायल को अस्पताल पहुँचाने, प्रारम्भिक चिकित्सा करने आदि की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक

बालचर को एक डायरी रखनी पड़ती है जिसमें वह दिन भर के कार्य का ब्यौरा लिखता है। उसे कई प्रकार की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी पड़ती हैं। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए कई प्रकार के खेल खेलने पड़ते हैं।

बालचरो के कर्तव्य अनेक हैं। उनको सर्व-साधारण के हित का सदा ध्यान रखना पडता है। निर्बल, दुःखी, अनाथ और अबला की सेवा और सहायता करना उनका प्रधान कर्तव्य है। उन्हे सर्वदा तैयार रहना पड़ता है। किसी भी समय उनको सहायता के लिए बुलाया जा सकता है। दूसरे की जीवन रक्षा में अपने प्राणो की चिन्ता न करना बालचरो का कर्तव्य है। उन्हें सर्वदा अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। उन्हे सत्यवादी, राजभक्त, देशभक्त, आज्ञापालक, आत्म-निष्ठ और ईश्वर-भक्त होना चाहिए। उन्हे दयालु और पवित्र होना चाहिए और आपस मे भ्रातृ-भाव का व्यवहार करना चाहिए।

बालचरो की सेवाएँ स्थान-स्थान पर देखी जाती हैं। उनसे सर्व साधारण का नाना प्रकार से हित होता है। किसी के चोट लगने पर वे उसके पट्टियाँ बाँधते हैं और चिकित्सा के लिए उसे अस्पताल पहुँचाते हैं। भीड़-भाड़ और मेलो के अवसर पर वे स्वयं-सेवको का कार्य करते है। अनेक स्त्रियाँ और बच्चे बाल-चरों द्वारा धूर्तों के हथकंडो से बचाए गए है। अनेक बिछुड़े हुए बालक और बालिकाएँ बालचरो द्वारा उनके माता-पिता के पास पहुँचाई गई हैं। अनेक जल मे डूबते हुए नर-नारियो की उन्होने प्राण-रक्षा की है। जब कभी किसी स्थान पर दंगा हो जाता है तब वे शान्ति-स्थापना में सरकार की सहायता करते हुए देखे जाते है। रोगी अथवा पीड़ित की परिचर्या करना उनकी प्रधान सेवा है। आग लगने पर वे उसको बुझाते समय

अपने शरीर की परवाह नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि बालचर सब प्रकार से मानव-जाति की सेवा करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। वास्तव में उन्हें अपने भाइयो की सेवा-शुश्रूषा मे हार्दिक प्रसन्नता होती है। बालचर-संस्था मानव-समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है, इसमे सन्देह नहीं। थोड़े से समय में इतनी सर्वप्रिय हो जाना इसकी उपयोगिता का जीता-जागता प्रमाण है। इस प्रकार की संस्था से समाज का तो भला होता ही है साथ मे बालको का भी कल्याण होता है। उनका आचरण बनता है, वे सेवा-धर्म सीख जाते हैं और आगे चलकर योग्य नागरिक बनते हैं।

बालचर-संस्था का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसमे बालको को मनोरंजन के साथ-साथ उपयोगी शिक्षा भी मिलती है। इसलिए माता-पिता अपने लड़कों को सहर्ष बालचर बनाते हैं। बालचरों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सरकार भी बालचर-संस्था का संरक्षण करती है और उसे सब प्रकार की सहायता देती रहती है। लड़कों की देखा-देखी लड़कियो की भी इस प्रकार की एक संस्था अभी स्थापित हुई है जो 'गर्ल-गाइडो की संस्था' कहलाती है।

सिनेमा या

रूप-रेखा: –

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का प्रसार
(२) सिनेमा का आविष्कार और रूप
(३) सिनेमा का प्रचार और सर्वप्रियता
(४) सिनेमा से लाभ—
(क) मनोरजन (ख) शिक्षा (ग) सुधा
(घ) विज्ञापन और प्रचार-कार्य

(५) सिनेमा से हानियाँ—
  (क) नेत्रों की दृष्टि का कम होना
  (ख) गन्दे चित्रों का कुप्रभाव
  (ग) अधिक सिनेमा देखने से समय और धन का अपव्यय

(६) उपसंहार—सिनेमा का भविष्य

यह बीसवी शताब्दी विज्ञान का स्वर्ण-युग है। चारो ओर विज्ञान का साम्राज्य देखा जाता है। इसका क्षेत्र समस्त प्रकृति और मानव-समाज है। प्रकृति और मनुष्य का कोई भी विषय इसकी गति से बाहर नहीं है, सभी इसके क्रीड़ा-क्षेत्र बने हुए हैं। मानव-जीवन को इसने उलट-पुलट दिया है, अनेक अन्वेषणों और आविष्कारो द्वारा मनुष्य के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इसने अनेक मनोरंजन और सुख के साधन जुटाए है। सिनेमा इसी की देन है। दिन भर के परिश्रम के पश्चात् थकी-माँदी जनता के लिए मनोविनोद का यह सस्ता साधन है। यही कारण है कि जन-साधारण ने इसे बहुत पसन्द किया है।

सिनेमा का आविष्कार १८९० ई० मे अमरीका के एडीसन नामक महानुभाव ने किया था। भारतवर्ष में इसका प्रवेश करनेवाले दादा साहब फाल्के कहे जाते है। उन्होने सन् १९१३ मे अपना प्रथम भारतीय फिल्म निर्माण किया। पहले सिनेमा में मूक-चित्र दिखलाए जाते थे, पर १९२८ ई० से चित्रो मे वाणी का भी संचार हो गया है। यही नहीं, अब तो रंगीन चित्रपट भी बनने लगे हैं। प्रकृति का रंगीन सौन्दर्य भी अब हमारे लिए उपलब्ध हो गया है। वसन्त की बहार, उषा की छटा तथा सुमनों का सौन्दर्य अपने वास्तविक रूप मे अब हमे देखने को मिलता

है। आजकल सिनेमा के प्रधान अंग संगीत, नृत्य, कहानी और अभिनय हैं। एक बड़े हॉल में दर्शकों के बैठने का प्रबन्ध रहता है। हॉल के सामने की दीवार पर एक सफेद परदा लगा रहता है। पीछे की दीवार मे एक बड़ा छेद होता है जिससे एक प्रकाशित लालटेन द्वारा परदे पर फिल्म के चित्रो का प्रतिबिम्ब फेका जाता है। दर्शक चलते-फिरते बातचीत करते प्रतिबिम्ब देखते है। सिनेमा में नाटक की भाँति ही कोई कहानी दिखलाई जाती है। दोनो मे केवल इतना अन्तर है कि नाटक में साक्षात् अभिनेता और अभिनेत्रियाँ रहती हैं पर सिनेमा में उनके चित्र ही रहते हैं।

मनोरंजन के इस साधन का आजकल खूब प्रचार है। ऐसा कौनसा नगर होगा जहाँ सिनेमा-हॉल न हो? बम्बई और कलकत्ता जैसे विशाल नगरों में तो कई सिनेमा-गृह होते हैं। धनी-निर्धन, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, विद्वान-मूर्ख, मजदूर, वकील, विद्यार्थी, दूकानदार सभी मनुष्य सिनेमा देखते हैं। विद्यार्थियों मे तो इसका शौक बहुत बढ़ गया है। बहुत से विद्यार्थी तो ऐसे है जो नित्यप्रति इससे अपना मनोरंजन करते हैं। उनके लिए सिनेमा देखना उतना ही आवश्यक है जितना भोजन करना। पहले नाटकों का सब जगह प्रचार था। अब सिनेमा ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया है। आजकल नाटक जनता का वैसा मनोरंजन नहीं करते जैसा सिनेमा करते है। सिनेमा ने जन-साधारण की रुचि पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। क्यों न करे? यह एक से एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, एक से एक मधुर गायन, स्वाभाविक अभिनय और आकर्षक कहानी हमारे सामने उपस्थित करता है। वसंत की वसंती बहार, लाल, गुलाबी, हरे, पीले, श्वेत और नीले पुष्पो की छटा, श्याम मेघों की घटा, चाँदी से झरते हुए झरनों और सरोवरो की छवि, उषा की

लालिमा, लहराती हुई लतिकाओं के निकुञ्ज आदि देखकर मन अत्यन्त प्रसन्न होता है। झरनों का मधुर निनाद, पक्षियों का कलरव और सुरीले गाने हृदय की कली-कली खिला देते है। स्वाभाविक अभिनय वास्तविकता का आभास देता है। यही विशेषताएँ है जिनके कारण सिनेमा आज इतना लोकप्रिय बना हुआ है।

सिनेमा के प्रचार से जन-समाज को बहुत लाभ हुए है और होते जा रहे है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे ससार भर का मन बहलता है। दिन भर परिश्रम में संलग्न रहने से मनुष्य घबड़ा जाता है और कोई ऐसी वस्तु चाहता है जिससे उसे आमोद-प्रमोद मिले। उसके मन में विनोद की, आनन्द की, भूख लगती है। सिनेमा इस भूख को मिटाता है। यों तो मनोविनोद के अनेक साधन हैं; जैसे—नाटक, शतरंज, ताश, चौपड, सरकस, टैनिस, हॉकी, क्रिकेट, बाजीगर का खेल, उद्यान की सैर आदि। पर इन सबसे वैसा मनोरंजन नही होता जैसा सिनेमा से होता है।

मनोरंजन के अतिरिक्त सिनेमा शिक्षा का भी श्रेष्ठ साधन है। पाश्चात्य देशों में तो इससे शिक्षा-प्रचार मे सहायता मिली ही है हमारे देश में भी शिक्षा के लिए इसका उपयोग किया जा रहा है। पर अभी तक इस दिशा मे अधिक कार्य नही हुआ है। पाश्चात्य देशो मे इसके द्वारा इतिहास, भूगोल और विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। इतिहास की घटनाओं को चित्र-पट पर दिखलाया जाता है। भिन्न-भिन्न स्थानो की रहन-सहन, स्थिति, पैदावार, जल-वायु का ज्ञान कराया जाता है। भाँति-भाँति के वैज्ञानिक यंत्रों का उपयोग समझाया जाता है। पर क्या कभी सिनेमा अध्यापको के स्थान को ले सकता है? शायद कभी नहीं। यद्यपि अध्यापक जो कुछ पढ़ाता है, समझाता है, वह सब

सिनेमा भी कर सकता है तो भी इसमें सजीवता नहीं आ सकती।

सिनेमा से सुधार भी किये जाते हैं। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराता हुआ सिनेमा सुधार की योजना करता है। सैकड़ों फिल्मों की रचना इसी उद्देश्य से की जाती है। 'महात्मा', अछूत कन्या', 'दुनिया न माने' आदि प्रसिद्ध भारतीय फिल्म इसी उद्देश्य से बने थे। प्रथम दोनों का विषय अछूतोद्धार था। 'दुनिया न माने' का विषय बालिका-वृद्ध विवाह था। इसमें हिन्दू-समाज का स्त्रियों के प्रति अत्याचार और उसके दुष्परिणाम भली भाँति दिखलाए गए थे। 'संत तुकाराम' मे धार्मिक अत्याचारों और उनके दुष्परिणामो का दिग्दर्शन कराया गया था। दर्शक जब इस प्रकार के चित्रों को देखता है तब उसके हृदय मे अत्याचारो के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वह उनका अन्त करने की इच्छा करने लगता है। इस प्रकार सुधार के कार्य में सिनेमा खूब हाथ बटाता है।

विज्ञापन और प्रचार के लिये भी सिनेमा अच्छा साधन है। व्यापारी अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए सिनेमा द्वारा उनका विज्ञापन कराते है। चित्र-पट पर हजारो मनुष्यों के नेत्र उनके विज्ञापनों पर पड़ते हैं। बहुत से उनसे प्रभावित भी होते हैं। इस प्रकार वस्तुओं की बिक्री बढ़ती है। प्रचार-कार्य में भी सिनेमा से बहुत सहायता मिलती है। मान लीजिये मादक पदार्थों के बहिष्कार का प्रचार करना है। चित्रों द्वारा उनके व्यवहार के कुपरिणाम दिखाए जायँगे। दर्शक-गण उनसे घृणा करने लगेंगे और उनका व्यवहार करना छोड़ देंगे। इस प्रकार मादक पदार्थों का बहिष्कार हो जायगा।

जहाँ सिनेमा के उपर्युक्त लाभ हैं वहाँ इससे कतिपय हानियाँ

भी हैं। सिनेमा देखने से नेत्रो पर जोर पड़ता है। यदि सिनेमा देखने की आदत पड़ जाती है तो नेत्रों की ज्योति कम हो जाती है। बहुत लोगों ने नित्यप्रति सिनेमा देखकर अपने नेत्रो को बिगाड़ लिया है।

गन्दे और कुरुचिपूर्ण चित्रों से बहुत हानि होती है। प्रायः फिल्म साधारण जनता की बिगाड़ी हुई रुचि के शिकार बन रहे है। फिल्म-निर्माताओं को बाध्य होकर अपने निम्न कोटि के दर्शको को खुश करना पड़ता है क्योंकि वे ही उनकी आय के अच्छे साधन है। दुअन्नी-चवन्नी वालो से उन्हें जितनी आय हो सकती है उतनी रुपये वालो से नहीं। गन्दे गाने और कुवासना-पूर्ण खेल कम से कम ७० प्रतिशत मनुष्यो का मनोरंजन करते हैं। कुवासनापूर्ण फिल्मो से सबसे अधिक हानि नवयुवकों को होती है। वे इनके कुप्रभाव से अपने को बचा नहीं सकते और आचार भ्रष्ट हो जाते हैं।

अधिक सिनेमा देखने से समय और धन का भी अपव्यय होता है। जिन लोगो को सिनेमा देखने की लत पड़ जाती है वे अपना बहुमूल्य समय और धन व्यय करने मे कुछ भी कमी नहीं करते। ऐसा देखा गया है कि विद्यार्थी अपने अध्ययन को तिलाञ्जलि देकर सिनेमा देखते हैं। परिणाम यह होता है कि वे परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते हैं।

अन्त मे यही कहना है कि सिनेमा का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है। धीरे-धीरे गन्दे फिल्मो की संख्या कम होती जा रही है और शिक्षाप्रद फिल्मों की अधिक। आशा है मनोरंजन का यह साधन मर्यादा और आदर्श की रक्षा करता हुआ मानव-समाज का कल्याण करेगा।

पुस्तकों के अध्ययन से आनन्द

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—मानव-जीवन में आनन्द की आवश्यकता
(२) पुस्तकों के पढ़ने से मनोरंजन
(३) पुस्तकों के पढ़ने से आत्म-संस्कार और आत्म-संस्कार से आनन्द
(४) पुस्तकों के पढ़ने से सान्त्वना
(५) पुस्तकों के पढ़ने से ज्ञान-वृद्धि द्वारा आनन्द
(६) उपसंहार—पुस्तक के अध्ययन का आनन्द ही सच्चा आनन्द है

मानव-जीवन मे आनन्द की नितान्त आवश्यकता है। यह वह रसायन है जिससे जीवन में मिठास आ जाता है। यह वह मरहम है जिससे हृदय का घाव पुरता है। यह वह भोजन है जिससे मन स्वस्थ हो जाता है। आनन्द की प्राप्ति के अनेक साधन हैं। किसी को गाने से आनन्द मिलता है, किसी को बाजा बजाने से किसी को नाच देखने से आनन्द मिलता है, किसी को धन पाने से किसी को पुत्र-जन्म से हर्ष होता है, किसी को विवाह से विद्यार्थी को परीक्षा मे उत्तीर्ण होना उल्लास से भर देता है। वकील को मुकदमे का जीतना आनन्द की सृष्टि करता है। तात्पर्य यह है कि असंख्य प्रकार से मनुष्यों के लिए परमेश्वर ने आनन्द का विधान किया है। पुस्तकों का अध्ययन आनन्द-प्रदान का सबसे अच्छा साधन है, क्योंकि इससे आनन्द के साथ-साथ शिक्षा भी मिलती है।

पुस्तको से मनोरंजन होता है। हाँ, सब प्रकार की पुस्तकें मनोरंजन नही कर सकतीं। कविता, उपन्यास, प्रहसन, कहानी आदि की पुस्तकें ही मनोविनोद का साधन होती हैं। इस प्रकार की पुस्तकें लिखी भी इसी उद्देश्य से जाती हैं। कविता द्वारा मनोरंजन का एक उदाहरण लीजिए—

डार द्रुम पलना, बिछौना नवपल्लव के,
सुमन झँगूला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै॥
पूरित पराग सो उतारो करै राई लोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' नामक उपन्यासो ने मनोरंजन के साधन होने के कारण ही बहुत से हिन्दी न जानने वालो को हिन्दी सिखाई। आज भी उपन्यासों को जन-साधारण बड़े चाव से पढते हैं। इनकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती है। यही दशा प्रहसन और कहानियों की पुस्तको की भी है। इससे बढ़कर आनन्द और क्या हो सकता है कि हम अपने चारो ओर वाल्मीकि, सूर, तुलसी, जायसी, रहीम, प्रेमचन्द आदि महानुभावों को रखते हैं? जब मन मे आता है हम अन्धे सूर के प्रेम से भरे पदों को सुनकर रसमग्न होते हैं। जब जी चाहता है हम गोस्वामी तुलसीदास के राम-लक्ष्मण को चित्रकूट मे देखकर गद्गद होते हैं। जब इच्छा होती है हम जायसी की कहानी-सरिता में गोते लगाकर अपना समय काटते हैं। कभी प्रेमचन्द की उपन्यास कहानियो में हमारा मन लगता है। कभी वाल्मीकि के आश्रम मे विचरण करके हम अपना मन बहलाते है।

श्रेष्ठ पुस्तको के अध्ययन से आत्म-संस्कार होता है। सत्संगति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, चाहे सत्संगति मनुष्यों की हो अथवा पुस्तको की। जब हम सर्वदा उत्कृष्ट, उपदेश-पूर्ण, मर्यादा-गर्भित और नैतिक पुस्तको का अवलोकन करेंगे, सर्वदा

उनके बीच रहेंगे, तब हमारा आचरण स्वतः सुधरेगा। जब हम गोस्वामीजी के रामचरित-मानस को पढ़ेंगे तब हमें सेवा, आज्ञापालन, भ्रातृ-प्रेम, पातिव्रत-धर्म, नम्रता, शिष्टाचार आदि की शिक्षा मिलेगी। जब हम कबीर की वाणी को पढ़ेंगे तब हममें सच्चरित्रता अपना घर बनावेगी। जब हम सूर के पदों में मग्न होंगे तब हमारे मन का मैल कटेगा। इसमें सन्देह नहीं कि जिस सद्भाव को उत्पन्न करने में अनेक उपदेशक सफल नहीं होते उसे उत्पन्न करने में पुस्तकें सफल हो सकती हैं। आत्म-संस्कार से जीवन शान्तिमय होता है और हृदय को वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है। भले ही बाहर से देखने पर आत्म-संस्कृत मनुष्य दुःखी प्रतीत होता हो, पर उसके हृदय में चिर-शान्ति और आनन्द सदैव रहता है। जैसे—महात्मा गांधी को ले लीजिए। कुछ लोगो की दृष्टि में उनका जीवन आनन्द-मय नहीं है। पर स्वयं महात्माजी से पूछिए। वे कहेंगे कि उनका जीवन सर्वथा आनन्दमय है, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं।

दुःख के समय पुस्तकें अच्छे मित्र का कार्य करती हैं। जिस प्रकार आपत्ति पड़ने पर, शोकाकुल होने पर, हमें हमारा मित्र सान्त्वना देता है उसी प्रकार पुस्तकें भी सान्त्वना देती हैं। बहुत से ऐसे अवसर आ जाते हैं जब हमारा जी टूट जाता है और हमारी शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। उस समय पुस्तकों के उत्साह-पूर्ण मौन वचनों से हमें आश्वासन मिलता है; जैसे—

छाँड़िए न हिम्मत, विसारिए न हरि नाम,
जाही विधि राखै राम, ताही विधि रहिए।

इस उक्ति से किसी भी दुखिया को कितना अधिक उत्साह मिल सकता है! उसे कितना अधिक धैर्य बँध सकता है!

अथवा—कोउ न काउ दुख सुख कर दाता।
निजकृत करम भोग सब भ्राता॥

इस कथन से कितनी अधिक सान्त्वना मिल सकती है! इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तकें मौन सान्त्वना द्वारा हमारे घावो पर पट्टियाँ बाँधती हैं, हमे दुखी नहीं होने देतीं, हमें प्रसन्न रखती हैं।

पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञान-वृद्धि और मस्तिष्क का विकास होता है। हम घर बैठे-बैठे बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानो के विचारों को जान जाते हैं। बहुत सी ऐसी बातों और विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं जिनके विषय में पुस्तक पढ़ने के पूर्व हमें कुछ भी ज्ञान न था। अनेक पुस्तकों के अवलोकन से, उन पर मनन करने से मस्तिष्क के विकास से भी मनुष्य के सुख मे बढ़ती होती है। अज्ञान और अशिक्षित मनुष्यो को प्रायः तंग होना पड़ता है। उदाहरण के लिए ग्रामीण मनुष्यों को पुलिस, पटवारी और मुखिया खूब दुःख देते हैं। पर ये लोग विद्वानों और पढ़े-लिखो को तंग नहीं कर सकते। उनका तो स्थान-स्थान पर आदर होता है।

अन्त मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुस्तकों के अध्ययन से खूब आनन्द मिलता है। पर यह आनन्द इन्द्रियों के आनन्द से भिन्न होता है। यह अलौकिक आनन्द ही सच्चा आनन्द है। अन्य सब आनन्द मिथ्या हैं। उनको सुख ही कह सकते हैं, आनन्द के पवित्र नाम से विभूषित नहीं कर सकते।

ग्राम—निवास अथवा नगर—निवास

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—मनुष्यों का ग्राम या नगर में निवास
(२) ग्राम-निवास के आनन्द
(३) ग्राम-निवास के दुःख

(४) नगर—निवास के आनन्द
(५) नगर-निवास के दुःख
(६) ग्राम और नगर की तुलना
(७) उपसंहार—ग्राम-निवास का महत्व

मनुष्य की चार प्रधान आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र, निवास-स्थान और मनोरंजन—में एक निवास-स्थान की आवश्यकता भी है। भोजन और वस्त्र के पश्चात् मनुष्य को इसी की आवश्यकता होती है। वह गाँव मे निवास करता है अथवा नगर में। गाँवों मे थोड़े मनुष्य रहते है और नगरो मे अधिक। ग्राम के रहने वाले प्रायः मिट्टी के कच्चे मकान बनाकर रहते हैं और नगर-निवासी ईंट अथवा पत्थर के पक्के मकान।

ग्राम में रहने से अनेक आनन्द मिलते हैं। प्रकृति का मनोरम रूप ग्राम-निवासियों को प्रसन्नता देता है। गाँव मे प्रकृति मुसकँराती रहती है। लहलहाते पेड़-पौधे अपनी सुहावनी छवि से, वायु अपनी सुगन्ध से और पक्षी अपने कलरव से ग्रामीण जनता का मनोरंजन करते हैं। हरे-भरे खेत कृषको को उल्लास से भरते हैं। चारो ओर वनस्थली और उपवनों की शोभा गाँववालों के जीवन में सरसता तथा मधुरता का संचार करती है। कहीं पुष्प खिल रहे हैं। कहीं हरी-भरी घास पर ओस के मोती बिखरे पड़े है। ग्रामीण मनुष्य प्रकृति की गोद में पलते हैं। वे दिन भर विस्तृत नभ-मण्डल के नीचे प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करते रहते हैं। सूर्य की किरणें, शुद्ध वायु, पवित्र तथा स्वच्छ जल और कठिन परिश्रम उनको हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं। गाँवों में सर्वदा शान्ति का साम्राज्य रहता है, कभी कोलाहल नहीं होता। वहाँ थोडे में निर्वाह होता है। छल-कपट, धूर्तता, विश्वासघात आदि दुर्गुणों का नाम भी नहीं होता। ग्राम-निवासी सरलता, नम्रता और भोलेपन की मूर्ति होते हैं। गाँव में सादा और स्वास्थ्यकर भोजन

किया जाता है। दूध-दही और मक्खन की कुछ कमी नहीं होती। वहाँ का जीवन शुद्ध और सात्विक होता है और दिखावटीपन का नाम नहीं मिलता।

जहाँ ग्रामों में आनन्द है वहाँ दुःख भी हैं। अशिक्षा का वहाँ अखण्ड साम्राज्य है। अधिकांश ग्रामीण जन-समुदाय के लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही होता है। निरक्षरता के कारण गाँववालों को अनेक दुःख सहने पड़ते हैं। वे पटवारी, मुखिया, चौकीदार, सिपाही, थानेदार आदि के अनुचित दबाव मे रहते है : जरा जरा सी बातों पर आपस मे लड़ते झगड़ते हैं और फिर अदालतों की हवा खाते हैं जहाँ उन्हे अपने पसीने की कमाई पानी की तरह बहानी पड़ती है। गाँव के मनुष्यो को महाजनो और जमीदारों का शिकार बनना पड़ता है। वे संसार के संसर्ग से दूर रहते हैं। उनके लिए उनका गाँव ही संसार है। गाँव गंदगी के घर बने हुए हैं। वहाँ स्थान-स्थान पर कूड़ा-करकट और मल-मूत्र पड़ा रहता है। गन्दे पानी की मोरियाँ बहा करती हैं। आस-पास गड्ढों मे जल सड़ता रहता है। इससे गाँव मे तरह-तरह के रोग फैलते रहते हैं। कभी मलेरिया का प्रकोप होता है तो कभी हैजा जोर पकड़ता है। चिकित्सालय के अभाव से गाँव वाले कुत्तो की मौत मरते हैं।

नगर-निवास की सबसे बड़ी आनन्ददायक वस्तु शिक्षा है। नगरो में कई प्रकार के स्कूल और कॉलेज होते हैं जहाँ शिक्षा का सुप्रबन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त रोगो की चिकित्सा के लिए अनेक डाक्टर उपलब्ध हैं और चिकित्सालयो का भी अभाव नहीं रहता। नगरो मे नाना प्रकार के उद्योग-धन्धे होते हैं जिनसे जीविका उपार्जन करने मे कठिनाई नहीं होती। यात्रा का भी वहाँ आराम रहता है। रेल, मोटर, ताँगा आदि कई यात्रा-सम्बन्धी साधन नगरो में मिलते हैं। बिजली का उज्ज्वल प्रकाश

और पंखे हमारी सेवा को सदैव तयार रहते हैं। कीच-मिट्टी या कूड़ा-करकट का कहीं भी दर्शन नहीं होता। वहाँ दिन भर की थकावट मिटाने के लिए सिनेमा सरीखा मनोरंजन का उत्तम साधन उपलब्ध है। खाने के लिए तरह-तरह के साग और फल मिलते हैं। पुस्तकालयों और वाचनालयों की सुविधा रहती है। संसार की सभी वस्तुएँ आप नगर में खरीद सकते हैं। वहाँ सब प्रकार की सुविधा होती है।

ग्राम-निवास की भाँति नगर-निवास मे भी दुःख हैं। सबसे बड़ा दुःख गन्दी और विषैली वायु का है। कारखानों की चिमनियो के धुएँ, सड़को की धूल, टट्टियाँ और बेशुमार जन-संख्या के कारण नगरों की वायु विषैली हो जाती है जिससे वहाँ के निवासियो का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उनके शरीर पीले पड़ जाते है। उनमे बल और स्फूर्ति नहीं होती। सर्वदा अजीर्ण की शिकायत बनी रहती है। स्वच्छ वायु के अतिरिक्त नगरो मे किसी किसी मकान में सूर्य की किरणों के दर्शन भी नहीं होते और अन्धकार रहता है। कठिन काम न करने से भी उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मोटर, साइकिल, तांगे आदि सवारियों में घूमते-फिरते रहने से पैरो का व्यायाम नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि बड़े-बड़े भयंकर रोग नगरों को अपना घर बनाए हुए हैं। प्रतिवर्ष अनेक नगर-निवासी क्षयरोग से पीड़ित होकर अकाल ही काल के गाल में चले जाते है। नगरो मे सर्वदा कोलाहल रहता है। दिन भर और आधी रात तक इक्के-ताँगों की ख़ड़खड़ाहट, मोटर की पों-पों और कारखानों की खट-खट होती रहती है। नागरिक-जीवन बड़ा कृत्रिम होता है। बाहरी दिखावट बहुत देखी जाती है। नगर-निवासी प्रायः चालाक, कपटी और धोखेबाज देखे जाते हैं। उनमे स्वार्थ की मात्रा बहुत होती है। उनके हृदय कलुषित होते हैं। वे मिलनसार भी नहीं होते। नगर पापाचार के अड्डे हैं।

ग्राम-निवास और नगर-निवास दोनों मे अपनी-अपनी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं। नगर में यदि शिक्षा का आराम है तो स्वच्छ वायु का अभाव है। ग्राम मे यदि स्वच्छ वायु का आराम है तो शिक्षा का अभाव है। नगर में यदि चिकित्सा का सुप्रबन्ध है तो प्रकृति का आनन्द नहीं। ग्राम में यदि प्रकृति का आनन्द है तो चिकित्सा का सुप्रबन्ध नहीं। नगर-निवासी यदि दुर्बल है तो ग्राम्य-निवासी हृष्ट-पुष्ट। नगर मे यदि सिनेमा आदि मनोरंजन के साधन हैं तो ग्राम में प्राकृतिक दृश्य मन बहलाते है। नगर मे रेल, मोटर, बिजली, तार आदि का सुख है जिनका गाँव मे अभाव है। गाँव मे थोड़े मे निर्वाह होता है और नगर मे अधिक मे। गाँव के निवासी सरलता तथा सज्जनता की मूर्ति होते हैं और नगर के निवासी प्राय. चालाक तथा रूखे होते है।

वास्तव मे नगर की अपेक्षा गाँव का जीवन अच्छा है. गाँव मे जीवन सरल, सात्विक और शान्तिमय होता है। प्रकृति के मनोहर दृश्य मन को प्रसन्न करते हैं और हृदय में पवित्रता का संचार करते हैं। स्वच्छ जल-वायु शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाती है। यदि गाँव से अशिक्षा का निराकरण कर दिया जाय तो वह निस्सन्देह स्वर्ग हो जाय। यदि गाँव से गन्दगी दूर हो जाय तो वह सचमुच अमरपुरी हो जाय।

हमारे गाँवों के उद्योग-धन्धे

रूप रेखा:—

(१) प्रस्तावना—प्राचीन काल मे कला-कौशल और उद्योग-धन्धों से देश की उन्नति

(२) कृषि

(३) कपड़ा बुनना

(४) चर्खे और रहँटे का उद्योग
(५) चमड़े का काम
(६) मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनाना
(७) मुर्गी या सूअर पालना
(८) लकड़ी, पत्थर, सोने और लोहे के धन्धे
(९) अन्य छोटे-छोटे धन्धे
(१०) उपसंहार—कुछ नए उद्योग-धन्धों के प्रचार की आवश्यकता

भारतवर्ष की पूर्व और वर्तमान दशा में महान् अन्तर है। एक वह समय था जब यह देश कला-कौशल और घरेलू उद्योग-धन्धों के कारण संसार मे सबसे अधिक धनाढ्य था और एक यह समय है जब इनकी शोचनीय कमी से यह देश दरिद्र हो गया है। एक वह समय था जब इस देश में इतना बारीक कपड़ा हाथ से बनता था कि उसका थान का थान अँगूठी मे होकर निकल सकता था और एक यह समय है जब इतना मोटा कपड़ा हाथ से बनता है कि पहिनने से शरीर छिलता है। एक वह समय था जब यहाँ के बने हुए खिलौने, कपड़े आदि पदार्थ विदेशों में जाते थे और एक यह समय है जब यहाँ विदेशो से खिलौने, कपड़े आदि अनेक पदार्थ आते है। यद्यपि यहाँ उद्योग-धन्धों की पहले की अपेक्षा बहुत कमी हो गई है तो भी गाँवो मे उनके भग्नावशेष अब तक विद्यमान है। नगरों में तो मशीनों ने उनका गला घोंट दिया है।

हमारे गाँवों का सबसे प्रधान धन्धा कृषि है। गाँव के लगभग तीन चौथाई लोग खेती करते है। इसी व्यवसाय के सहारे उन्हें खाने को रोटी और पहनने को कपड़ा मिलता है। उन्हीं को क्यों, देश के सभी मनुष्यों को रोटी देनेवाली खेती ही है। यदि खेती न की जाय तो किस प्रकार अनाज उत्पन्न हो और किस प्रकार मनुष्यो के पेट भरें? आजकल खेती के धन्धे की

दशा अच्छी नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि जल की कमी, रोग, अच्छे खाद का अभाव, अच्छे बीजों का अभाव आदि कारणों से खेती से अच्छी उपज नहीं मिलती। इससे किसानों का पेट-पालन नहीं होता। वे अधिकतर भूखे और नंगे देखे जाते हैं। उन्हे दोनों वक्त भोजन नहीं मिलता। उनके शरीर पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र उन्हें अर्द्धनग्न रखता है।

गाँव के कुछ लोग कपड़ा बुनने का व्यवसाय करते हैं। प्रायः वे लोग जुलाहे होते हैं। इनको बारीक और बजहदार कपड़ा तो बुनना नहीं आता पर ये मोटा खद्दर बुन लेते हैं। ऐसा देखा गया है कि दुकानदार इन लोगों को सूत देते हैं और वे लोग उसको बुनकर दुकानदार को वापिस कर आते हैं। दुकान-दार इन्हे इस कार्य की मजदूरी दे देता है। इस प्रकार ये लोग मजदूरी पर इस धन्धे को करते हैं, स्वतन्त्र व्यवसाय के रूप में नहीं। ऐसा करने से इन्हें कुछ अधिक लाभ नहीं होता। दुकान-दार इनकी कमाई का खूब लाभ उठाता है। पर ये बेचारे क्या करें? दरिद्रता के कारण स्वतन्त्र व्यवसाय करने से लाचार हैं।

गाँव में चर्खे का उद्योग प्रधानतः स्त्रियाँ करती हैं। जो स्त्रियाँ विधवा होती हैं अथवा जिनके पति दिन भर की पसीने की कमाई से भी परिवार का पालन-पोषण नहीं कर सकते वे चर्खे चलाकर कुछ जीविका उपार्जन करती है। प्राचीन काल में तो घर-घर चर्खे का प्रचार था। अमीर-गरीब सभी इस धन्धे को करते थे। पर अब यह केवल दरिद्र स्त्रियों का ही धन्धा हो गया है। यह धन्धा भी कपड़े के धन्धे के समान मजदूरी पर ही किया जाता है। चर्खे से रुई को कातकर सूत में परिणत किया जाता है। रहँटे का व्यवसाय भी स्त्रियाँ ही करती है। रहँटे द्वारा कपास से रुई और बिनौले अलग किये जाते हैं।

चमड़े का व्यवसाय गाँव के चमार करते हैं। ये लोग मर

हुए ढोरो से चमड़ा अलग करते हैं और उसको पकाते हैं। फिर उसके जूते, चरस आदि गाँव की आवश्यक वस्तुएँ बनाते हैं। इनका व्यवसाय स्वतन्त्र होता है। इनको कुछ पूँजी की आवश्यकता नहीं होती। मरे हुए ढोरो को इन्हें खरीदना नहीं पड़ता। वे मुफ्त मिल जाते हैं। चमड़ा पकाने मे भी कुछ ऐसा व्यय नही करना पड़ता। यह धन्धा प्रधानतः परिश्रम पर ही निर्भर है।

गाँव मे मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनाने का भी काम होता है। इस कार्य को करनेवाले कुम्हार कहलाते हैं। ये लोग मिट्टी और जल की सहायता से चाक पर बर्तन बनाते हैं। चाक पत्थर का गोल पहिया सा होता है जिसको कुम्हार एक लकड़ी की सहायता से घुमाते रहते हैं। चाक पर बने हुए बर्तन अग्नि से पकाए जाते हैं। पककर वे प्रयोग के योग्य बन जाते हैं। मिट्टी के बर्तन जल भरने और अनाज आदि रखने के काम मे आते हैं। खिलौने बच्चो के खेलने के काम आते हैं। वे चाक पर नही बनते बल्कि साँचे से बनाये जाते है। बर्तनो की भाँति वे भी पकते है। इस उद्योग में भी कुछ पूँजी की आवश्यकता नही होती। केवल हाथ-पैर की मेहनत करनी पड़ती है।

मुर्गी पालन भी गाँव का एक धन्धा है। इसे चमार, भंगी खटीक और कंजड़ आदि जातियाँ करती है। यह जीविका की दृष्टि से बड़ा अच्छा व्यवसाय है। हाँ, इसमे हिंसा अवश्य होती है। अतः जो अहिंसावादी नही है वे ही इसे करते हैं। वे लोग अण्डों को ले जाकर शहरो में बेचते है। अण्डो की खपत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और खाद्य पदार्थ के रूप में उनके महत्व पर जोर दिया जाने लगा है। इसलिये इस उद्योग से उन्हें अच्छी आमदनी हो जाती है। भंगी सूअर पालने का भी धन्धा करते हैं और सूअर के बाल तथा चर्बी बेच-बेचकर अपनी जीविका कमाते हैं।

गाँव में लकड़ी, पत्थर और लोहे के धन्धे भी होते हैं। लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई, पत्थर का काम करनेवाले कारीगर और लोहे का काम करनेवाले लुहार कहलाते हैं। बढ़ई हल, गाड़ी, किवाड़ आदि ग्रामीण वस्तुएँ बनाते हैं। कारीगर मकान बनाते हैं और लुहार खुरपी, कुल्हाड़ी, ताला, बर्तन आदि बनाते हैं। सोने के आभूषण बनानेवाले सुनार होते हैं।

इन मुख्य उद्योग-धन्धो के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे धन्धे भी होते हैं जिन्हें ग्रामीण मनुष्य करते रहते है। कुछ लोग रस्सियाँ बनाते हैं तो कुछ लोग डलियाँ। कुछ लोग जंगलो में शहद की मक्खियों के छत्ते ढूँढ-ढूँढकर उनसे शहद लाकर बेचते हैं तो कुछ लोग तेल बनाने का काम करते हैं। कुछ लोग जंगलो से लकड़ियाँ बीन-बीनकर बेचते हैं तो कुछ लोग गोंद, लाख, मोम आदि के धन्धे करते है। कुछ लोग कपड़ो की धुलाई, रँगाई और सिलाई के व्यवसाय भी करते है।

ये सब धन्धे तो गाँवों में प्रचलित हैं ही, कुछ और धन्धों के प्रचार की भी आवश्यकता है। वास्तव मे ये सब धन्धे इतने कम और न्यून आयवाले है कि इनसे ग्रामीण जनता का पालन-पोषण भली भाँति नहीं होता। आजकल सेंटो और सुगन्धित तेलों की माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसी दशा मे तेल-इत्र बनाने का व्यवसाय बहुत लाभप्रद हो सकता है। भारत-वर्ष मे प्रकृति ने सैकड़ों प्रकार के फूल पैदा किए हैं जिनसे तेल और इत्र बनाये जा सकते हैं। आजकल रेशम की भी खूब खपत होती है। अतः रेशम के कीड़े पालना भी गाँवो के लिए अच्छा धन्धा हो सकता है। रेशम का कीड़ा शहतूत के पेड़ पर रहता है। इसलिए गाँवों में शहतूत के बाग लगाने चाहिएँ। साबुन बनाना भी ऐसा व्यवसाय है जिसे थोड़ी पूँजी लगाकर ग्रामीण मनुष्य कर सकते है। आजकल साबुन बहुत बिकता

है। यदि इस प्रकार के धन्धे अपनाए जायँ जिनसे अच्छी आमदनी हो तो गाँव में बेकारी की समस्या हल हो जाय और गाँव के मनुष्य भूखे न मरे।

सफाई

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—सफाई की आवश्यकता
(२) सफाई के दो भेद—बाह्य और आन्तरिक सफाई
(३) सफाई से लाभ—
   (क) आचरण की पवित्रता
   (ख) स्वास्थ्य-रक्षा
   (ग) चित्त की प्रसन्नता
(४) भारतीयों में बाह्य सफाई का अभाव
(५) उपसंहार—सफाई की प्राप्ति के साधन

कहावत है—कुत्ता भी पूँछ फटकार कर बैठता है। अर्थात् कुत्ते को सफाई पसन्द है। फिर मनुष्य क्यों न सफाई पसन्द करे? जब ज्ञान-रहित पशु भी गन्दगी से दूर रहना चाहता है तब बोधयुक्त मनुष्य क्यों न उससे दूर रहे? वास्तव में सफाई अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह सर्वदा स्वच्छ रहे। Cleanliness is next to godliness के अनुसार स्वच्छता आत्मशुद्धि का द्वितीय सोपान है।

सफाई दो प्रकार की होती है—बाह्य सफाई और आन्तरिक सफाई। बाह्य सफाई का तात्पर्य शरीर, वस्त्र, निवास-स्थान, जलवायु, भोजन आदि की स्वच्छता है। आन्तरिक सफाई का तात्पर्य मन और हृदय की स्वच्छता है। हमें अपने शरीर के

प्रत्येक अंग को मैल-रहित रखना चाहिये। हमारे दाँत गन्दे न हो। हमारे नाखूनो में मैल न भरा हो। हमारी आँखो में कीचड़ न हो। हमारी नाक मे गन्दगी न हो। हमारे वस्त्र साफ-सुथरे हों। हमारे घर में कूड़ा-करकट न जमा हो और कहीं से दुर्गन्ध न आए। हम शुद्ध जल, शुद्ध वायु और शुद्ध भोजन का उपयोग करें। हम अपने मन और हृदय को पवित्र रक्खें। किसी के साथ कपट व्यवहार न करें।

पहले आन्तरिक सफाई को लीजिए। इससे आचरण अग्नि मे तपे हुए स्वर्ण की भाँति चमकने लगता है, गंगाजी के जल के समान निर्मल हो जाता है। संसार में सर्वत्र शुद्ध आचरणवाले व्यक्ति की पूजा होती है। शुद्ध आचरण मे कुछ ऐसा जादू होता है कि वह समस्त हृदयो को अपने वश मे कर लेता है। सदाचारी व्यक्ति के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति का मस्तक आपसे आप झुक जाता है। उसमे लोगो को अटूट श्रद्धा हो जाती है। गाँधीजी को देखिये आन्तरिक सफाई के कारण उनका आचरण इतना पवित्र हो गया है कि वे भारतवर्ष के मनुष्य-मनुष्य के हृदय सम्राट् है।

बाह्य सफाई आन्तरिक सफाई की प्रथम सीढ़ी है। इससे भी कुछ-कम लाभ नहीं होते। यह स्वास्थ्य की जननी है। इसकी अवहेलना करके मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। वह रोगी हो जाता है और नाना प्रकार के दुःख सहता है। वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो कभी स्नान नहीं करता और सदैव मैले-कुचैले वस्त्र धारण करता है? वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो गन्दी और दुर्गन्ध-पूर्ण नालियो के बीच रहता है? वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो स्वच्छ जल-वायु से वंचित रहता है? कदापि नहीं। अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सफाई अनिवार्य है। यह देखा जाता है कि

जो मनुष्य गन्दे रहते हैं वे दुर्बल और रुग्ण होते हैं। जो मनुष्य स्वच्छ रहते हैं वे हृष्ट-पुष्ट और नीरोग होते हैं।

स्वास्थ्य के अतिरिक्त बाह्य सफाई से चित्त को प्रसन्नता भी मिलती है। यदि आपको ऐसे स्थान में छोड़ दिया जाय जहाँ कूड़ा-करकट फैला हो, मल-मूत्र पड़ा हो, मक्खियाँ भिनभिना रही हों और गन्दे पानी की मोरियाँ बह रही हो तो क्या आपका चित्त वहाँ रहने को करेगा ? नहीं। क्यों ? इसलिए कि आपको वहाँ दुःख होगा, घृणा लगेगी। एक बार बिहार की यात्रा करते हुए सरदार पटेल ने कहा था कि मोटर पर सोया हुआ मैं गन्दगी के कारण जाग पड़ता था। इसका कारण यह था कि गन्दगी उनके चित्त की शान्ति को भंग कर देती थी। निस्सन्देह स्वच्छता से मन को शान्ति और आनन्द मिलता है। जब हम स्नान कर लेते है और निर्मल कपड़े पहन लेते हैं तब हमें शान्ति मिलती है। जब हम अपने चारों ओर सफाई देखते है तव हमारा मन प्रसन्न होता है।

सफाई से सौन्दर्य की वृद्धि होती है। एक स्त्री को ले लीजिए। यदि वह मले-कुचैले कपड़े लपेटे हुए है और उसका मुख धूल-धूसरित है तो देखने में भद्दी लगेगी। यदि वह स्वच्छ वस्त्र धारण कर ले और मुख को धो डाले तो देखने में सुन्दर लगेगी। छोटा बालक जब धूल-मिट्टी से अपने शरीर को सान लेता है तब कुरूप लगता है। फिर वही जब नहला-धुला कर स्वच्छ कर दिया जाता है तब कितना सुन्दर लगता है ! उसके मुख और शरीर पर कैसी अद्वितीय कान्ति छा जाती है ! मनुष्य ही नही, पशु, पक्षी, पेड़, पौधे आदि सभी पदार्थ स्वच्छ होकर अधिक सुन्दर लगते हैं।

हम भारत-वासियों मे आन्तरिक सफाई का तो अभाव नहीं पर बाह्य स्वच्छता की पर्याप्त कमी है। गाँवो में चले जाइए वहाँ गंदगी का पूर्ण साम्राज्य मिलेगा। गाँव तो गन्दगी की साक्षात्

मूर्ति बने हुए हैं। कहीं मल-मूत्र पड़ा रहता है, कहीं घूरे लगे रहते हैं, कहीं मोरियाँ बहती रहती हैं, कहीं मक्खियाँ भिनभिनाती रहती है और कहीं पानी सड़ता रहता है। गाँव के निवासी भी मैले-कुचैले रहते हैं। उनके घरों में एक ओर कूड़ा पड़ा रहता है, एक ओर पानी फैला रहता है, एक ओर थूक-कफ पड़ा रहता है। एक ओर टूटे फूटे बर्तन अटे रहते हैं और एक ओर फटे पुराने कपड़े पड़े रहते हैं। वे गलीजखाने से लगते हैं। यद्यपि नगरों में शिक्षा के प्रचार से कुछ सफाई देखी जाती है तो भी अभी उसकी बहुत आवश्यकता है। अँगरेजो में बाह्य स्वच्छता खूब पाई जाती है, गन्दगी का नाम नहीं मिलता।

सफाई की प्राप्ति के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा से स्वतः सफाई की ओर प्रवृत्ति होती है। आन्तरिक सफाई सत्संग से मिलती है। बाह्य सफाई रखने के लिए लोगो को उसकी उपयोगिता भी बतलाई जानी चाहिए। सचमुच यह हम लोगों का दुर्भाग्य है कि हम सफाई के प्रेमी नहीं है और गन्दगी में रहना पसन्द करते हैं।

कर्तव्य-पालन

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—प्रत्येक मनुष्य के लिये कर्तव्य-पालन की आवश्यकता
(२) कर्तव्य-पालन मनुष्यमात्र का धर्म है
(३) कर्तव्य-पालन से लाभ
(४) कुछ कर्तव्य-परायण व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसहार—हमें कर्तव्य-निष्ठ होना चाहिए

सारी सृष्टि में हम जो कुछ देखते हैं उसका कारण कर्तव्य-पालन है। यदि जड़ और चेतन सभी पदार्थ अपना-अपना कर्तव्य करना छोड़ बैठें तो सृष्टि के नष्ट-भ्रष्ट होने में कितनी देर लगे ?

कर्तव्य-पालन से ही सृष्टि में विकास होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन रक्षा के लिए इस गुण की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य का आदर, उसकी उन्नति, उसका यश इसी गुण पर निर्भर रहता है। जो अपने कर्तव्य से विमुख हुआ वही अधोगति को प्राप्त हुआ। राजा का कर्तव्य प्रजा-पालन है। यदि वह प्रजा के हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि का ध्यान नहीं रक्खे तो उसका कौन आदर करेगा ? सैनिक का कर्तव्य प्राणों की बाजी लगाकर रण-क्षेत्र मे डटे रहकर शत्रु से लोहा लेना है। यदि वह संकट के समय शत्रु को पीठ दिखाए, रणक्षेत्र से भाग जाय तो उसके मस्तक पर कलंक का टीका लग जायगा।

कर्तव्य-पालन मनुष्य-मात्र का धर्म है। प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्तव्य पहचानना चाहिए और तदनुकूल कार्य करना चाहिए। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों मे और भिन्न भिन्न समय मनुष्य के कर्तव्य परिवर्तित होते रहते है। मानव-जीवन अनेक कर्तव्यो की समष्टि है। कभी हमे माता-पिता के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता है, कभी स्त्री के प्रति, कभी संतान के प्रति, कभी समाज के प्रति, कभी देश के प्रति। सच्चा मनुष्य वही है जो बाधाओ से विचलित न होकर अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहता है। चाहे उसे प्राणों का ही उत्सर्ग क्यो न करना पड़े वह टस से मस नहीं होता।

कर्तव्य-पालन से अनेक लाभ हैं। इससे मनुष्य की अपूर्व उन्नति होती है। यहाँ तक कि इसके प्रताप से रंक राजा तक बन जाता है। गरीब से गरीब राजा तक के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है। झोपड़ी से लेकर राजमहल तक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का आदर होता है। वह समाज के लिए आदर्श बन जाता है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे उसके प्रति अटूट श्रद्धा होती है और लोग उसका अनुकरण करने मे अपना सौभाग्य समझते हैं।

इस प्रकार कर्तव्य-पालक व्यक्ति से समाज का बड़ा हित होता है। वह स्वयं तो समाज और देश का मुख उज्ज्वल करता ही है उसके प्रभाव से भी उनका बहुत उत्थान होता है। ऐसे मनुष्य को इस लोक मे तो यश मिलता ही है परलोक मे भी शान्ति मिलती है। मृत्यु पश्चात संसार मे उसकी पूजा होती है, सदैव के लिये उसका नाम अजर-अमर हो जाता है। इतिहास मे उसका नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा जाता है। कर्तव्य-निष्ठ व्यक्ति वास्तविक सुख का अनुभव करता है। ससार की सृष्टि मे तो उसका जीवन कंटकाकीर्ण होता है, क्योकि उसे सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि देनी पड़ती है, यहाँ तक प्राणों पर खेलने के लिये तैयार रहना पड़ता है। किन्तु वह उसे दुःख नही समझता। सफलता प्राप्त करने पर तो उसे हर्ष होता ही है, पर असफल होने पर भी उसे इस बात का संतोष रहता है कि हमने अपना कर्तव्य पालन किया। जो अपना कर्तव्य पालन करता है उसकी आत्मा भी निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होती जाती है। अपने कर्तव्य का पालन करना ही ईश्वर की सच्ची सेवा है, ईश्वर की सच्ची भक्ति है।

विश्व का इतिहास कर्तव्य-परायण महापुरुषो की गौरव-गाथाओ से जगमगा रहा है। इटली मे विसूवियस नामक ज्वाला-मुखी फटने पर नगर भर के नर-नारी तो भाग गये, परन्तु एक संतरी ने अपना स्थान न छोड़ा। वह पहरे पर था। दूसरे किसी संतरी के आये बिना पहरे पर से कैसे हटे ? वह अपने कर्तव्य-पालन में ऐसा तत्पर रहा कि वहीं डटे रहकर उसने प्राण त्यागे। भला ऐसे कर्तव्य-परायण व्यक्ति की कौन प्रशंसा न करेगा ? ऐसे सपूतो से देश का मुख उज्ज्वल होता है। हमारे देश मे भी कर्तव्य-निष्ठ मनुष्यो का आविर्भाव हुआ है। कुन्ती ने दीन ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपने प्रिय पुत्र भीम को भयंकर राक्षस

बक के पास भेजने में तनिक भी आगा-पीछा नहीं किया। शरणदाता की रक्षा के लिये कर्तव्य-पालन का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और कहाँ मिल सकता है? पन्ना नामक धाय ने राजकुमार उदयसिंह की प्राण-रक्षा उसके स्थान पर अपने पुत्र का देखते-देखते वध कराके की। स्वामी के प्रति इस कर्तव्य-पालन के उदाहरण को सुनकर किसके मुख से 'धन्य-धन्य' शब्द न निकल पड़ेंगे? शरणागत-रक्षा का उदाहरण भगवान् राम के चरित्र में मिलता है। जब रावण ने विभीषण पर प्राण-घातिनी शक्ति छोड़ी तब रामचन्द्रजी ने उसे स्वयं अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार विभोषण के प्राण बच गये। यह है कर्तव्य-पालन। आजकल भी हमारे बीच महात्मा गांधी कर्तव्य-पालन की जीती-जागती मूर्ति हैं। जिस कार्य को करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं उसके सम्पादन करने में प्राणो तक का उत्सर्ग करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। कई बार उन्होने कर्तव्य-पालन के लिये आमरण उपवास किये हैं।

पर खेद का विषय है कि जिस देश में गांधीजी सरीखी महान् आत्मा विद्यमान है उस देश के लोग कर्तव्य-निष्ठ नहीं है। हम लोगों की यह प्रवृत्ति है कि जब तक कोई कष्ट या हानि होने की सम्भावना नहीं होती तब तक ही हम अपना कर्तव्य-पालन करते हैं। क्या हमारे लिये यह लज्जा की बात नहीं है? हम अपने स्वार्थ के सम्मुख कर्तव्य-पालन के उच्च आदर्श को ठुकरा देते हैं। यही कारण है कि हमने अपने देश को अवनति के गर्त में डाल रक्खा है और आज हम पराधीन बने आठ-आठ आँसू रो रहे हैं। हम देश के नवयुवकों को यदि भारत का मस्तक ऊँचा करना है, अपने पूर्वजों की शान रखनी है, तो हमें कर्तव्य-परायण बनना होगा, कर्तव्य-पालन में सर्वस्व बलिदान करने के लिये तैयार होना पड़ेगा।

प्रकृति–सौन्दर्य

रूप-रेखा –

(१) प्रस्तावना—प्रकृति और मानव-जीवन का सम्बन्ध

(२) सूर्योदय और सूर्यास्त

(३) वृक्ष, लता, पशु और पक्षी

(४) पुष्प और जलाशय

(५) नभ-मण्डल

(६) पर्वत और पवन

(७) उपसंहार—सारांश

प्रकृति और मानव-जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य प्रकृति से कभी पृथक् नहीं रहता। आदि काल से अब तक वह प्रकृति के बीच रहता आया है। वन, पर्वत, नदी, नाले, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, आकाश, सूर्य आदि इसके आदिम सहचर थे और अब भी हैं। वास्तव मे प्रकृति में हमे प्रसन्न करने की बड़ी शक्ति है। फूल, पत्ती, पक्षी, पशु, मेघ, नदी, निर्भर, चन्द्र, सूर्य आदि प्रकृति के अंगो को देखकर हम इनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकते। जब हम किसी वाटिका में विकसित फूलो को देखते है तब आनन्द से भर जाते है। जब हम अरुणो-दय के समय लाल-पीले मेघों को अथवा चाँदी के समान उज्ज्वल झरनो को चट्टानो के साथ अठखेलियाँ करते हुए देखते है तब हमारा मन उनमें लीन हो जाता है। यही कारण है कि हम प्रकृति से कभी अलग होना नहीं चाहते। प्रकृति का सौन्दर्य सदैव हमारे जीवन में मधुरता और सरसता का संचार करता रहता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त प्रकृति के बड़े सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। देखिए सूर्योदय की छटा। प्राची दिशा में लालिमा छा गई है। बादल लाल-पीले हो गए हैं। भगवान् भास्कर अपनी लाल-किरणो के साथ झाँकने लगे हैं। पक्षियों ने कलरव से

उनका स्वागत किया है। तरु-राजि आनन्द में झूमने लगी है। पत्तियों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोतियों के समान झलकने लगी हैं। पुष्प खिलने लगे हैं। शीतल सुगन्धित वायु चारो ओर सूर्योदय का सन्देश ले जाने लगी है। चकवा-चकवी मिलने लगे हैं। हिम से आच्छादित पर्वत-शिखरो पर सोना सा बिखर गया है। फिर सूर्यास्त की शोभा का भी अवलोकन कीजिए। दिन भर के परिश्रम से थककर रविदेव प्रतीची के अंचल में अपना मुख छिपाने लगे हैं। प्रातःकाल के समान उन्होने इस समय पश्चिम दिशा को रक्तिम रंग से रँग दिया है। बादलो ने पुनः लाल-पीला वस्त्र पहन लिया है। पक्षी अपने-अपने घोंसलों को लौटने लगे है। श्वेत बगलो की, हरे तोतो की काले कौओ की और नीले नीलकण्ठो की पंक्तियाँ नीले आकाश में श्वेत, हरे, काले और नीले हारो के समान प्रतीत होती हैं। वृक्षावली निस्तब्ध हो गई है मानो सूर्य की विदाई मे शोक-मग्न हैं। फूल भी संकुचित होने लगे हैं। पवन ने अपना कार्य बन्द कर दिया है। चकवा और चकवी बिछुड़ने लगे हैं। प्रकृति मे चारों ओर शान्ति छा गई है।

फिर पेड़-पौधो, लताओं और पशु-पक्षियो की मनोरम छटा देखिए। कहीं नीम की शाखाएँ काले तमाल के पत्तो से मिली हैं। कहीं रसाल के वृक्ष अपने विशाल हाथो से पीपल के चंचल पत्रों को स्पर्श कर रहे हैं। कहीं जामुन के पेड़ खड़े हुए हैं। कहीं अशोक के ललित पुष्पो के गुच्छे झूम रहे हैं। कहीं लताओ ने वृक्षो से लिपट कर कुञ्ज बना लिए हैं जिनमें तम के पुञ्ज पुञ्जित हैं। कहीं वनस्थली में हरिण हरिणियो के साथ विचर रहे है कही पशु वृक्षो की छाल से अपने शरीर रगड़कर उनको कँपा रहे हैं। अनेक तरु अपनी फलो से लदी हुई डालियों से झुक कर पृथ्वी-माता को प्रणाम कर रहे है। अनेक उस पर

पुष्पो की वर्षा कर रहे हैं। कहीं कोयलें मंजरी-मण्डित आम्र वृक्षों मे सरस संगीत की सृष्टि कर रही हैं। कही मयूर वृन्द नाच-नाचकर अच्छी-अच्छी नर्तकियों को भी लजा रहे हैं। कही पपीहे 'पिउ-पिउ' की रट लगा रहे हैं। कहा शुक और सारिकाएँ अपना मधुर स्वर अलाप रही हैं। कही छोटी-छोटी चिड़ियाँ चहचहाकर वृक्षो को शब्दायमान् कर रही है। पशु-पक्षियो की विविध किलोलें देखकर आपका मन प्रसन्न हो जायगा। कहीं वृक्षो की डालियो पर कीश मण्डली मचक-मचक कर खेल रही हैं और डालियाँ बोझ से लचक रही हैं। कही मंजुल मयूर अपने पंखो से जमीन को झाड़ता हुआ भाग रहा है। कही कोई पक्षी अपना एक पंख फैलाए छाती के बल धूल मे बैठा है। कही कोई चिड़िया जल को इधर-उधर उछालती हुई स्नान कर रही है। कैसे रमणीय, कैसे सुहावने, कैसे सुन्दर दृश्य हैं! देखकर आपका हृदय आनन्द के समुद्र में निमग्न हो जायगा।

आइए अब पुष्पों और जलाशयों की शोभा का निरीक्षण करे। सरोवरो मे लाल, पीले, नीले, और सफेद कमल खिल रहे हैं। उनके चारों ओर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। लहराते हुए नीले जल पर हरी सेवार छाई हुई है। इठलाती हुई नदियो की उज्ज्वल धाराएँ हीरो के समान चमकती हुई बह रही है। उनमे नीले आकाश, श्याम तथा श्वेत मेघों और हरे-भरे वृक्षों का प्रति-विम्ब पड़कर अद्भुत सौन्दर्य की उत्पत्ति करता है। चाँदी से झरते हुए मदमाते झरने काली चट्टानो से खेल रहे हैं। उनको छहरती हुई बूँदें मोतियो को मात करती हैं। वनस्थली और उद्यान मे हरे, पीले, नीले, लाल, गुलाबी आदि रंगो के पुष्प खिले हुए हैं। उन पर रंग-बिरंगी तितलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। मधु-मक्खियाँ उनसे रस ले रही हैं। चिड़ियाँ उनसे अठखेलियाँ कर रही हैं। भ्रमर उनकी भाँवरी भर रहे हैं। चारों ओर प्रकृति मुसकरा रही है।

नभ-मण्डल की छटा भी रमणीय है। रात्रि के समय सारे आकाश-मण्डल में नक्षत्र रूपी मोती बिखर जाते हैं। चन्द्रमा अपनी शीतल और शुभ्र ज्योत्स्ना पृथ्वी पर चारों ओर फैला देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सफेद चद्दर बिछ गई है। वृक्षों के पत्तों में होकर चन्द्रमा का प्रकाश छन रहा है जो उनकी छाया में बड़ा अच्छा लगता है। कभी-कभी आकाश मेघों से ढक जाता है। चन्द्रमा और नक्षत्रमाला अदृश्य हो जाती है। सुनहरी विद्युत् स्थान-स्थान पर मन्द-मन्द हँसती फिरती है। दिन में सूर्य के तीव्र प्रकाश से चन्द्रमा और तारागण छिप जाते हैं। नीले आकाश मे काली चीलें मँडराने लगती हैं। कभी-कभी इन्द्र-धनुष की अनुपम शोभा देखी जाती है। कैसे अच्छे दृश्य हैं।

पवन और पर्वत-समूह भी हमारा मनोरंजन करते है। शीतल और सुगन्धित पवन मन्द-मन्द बहता हुआ हममें अपूर्व स्फूर्ति और शक्ति का संचार करता है। कभी वह आँधी का रूप धारण करके वृक्षो से खेलता है और पुष्प तथा पत्तियो को धरती पर बखेर देता है। हरियाली के बीच काली शिलाओं पर बहते हुए सफेद झरनो से पर्वत कैसे सुन्दर लगते है! उनकी बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ आकाश को चूमती हैं।

सारांश यह है कि प्रकृति-नटी भाँति-भाँति का रूप दिखला कर दर्शकों को रिझाती है। कभी हरी साड़ी पहनती है। कभी लाल साड़ी धारण करती है। कभी काली साड़ी से सज जाती है। कभी मोतियों से अपने कलेवर को अलंकृत करती है और हँसती है। कभी मीठे-मीठे वचन कहती है। कौन ऐसा है जिसको उसने न रिझाया हो? कौन ऐसा है जो उसके सौन्दर्य से आकर्षित न हुआ हो? कौन ऐसा है जो उसके प्रेम से अभिभूत न हुआ हो?

मेरा ग्राम

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—जन्मभूमि का महत्व

(२) ग्राम की स्थिति

(३) सफाई और जल-वायु

(४) निवासियों की प्रकृति और रहन-सहन

(५) शिक्षा के साधन

(६) प्रबन्ध

(७) निवासियों के उद्योग-धन्धे

(८) प्रसिद्ध वस्तु

(९) उपसंहार—सुधार

हम खेले-कूदे हर्षयुत
जिसकी प्यारी गोद मे ।
हे मातृ-भूमि ! तुझको निरख
मग्न क्यो न हो मोद में ?

अहा ! जननी और जन्म-भूमि किसे प्रिय नहीं होती ? यदि एक हमें अपने गर्भ से उत्पन्न करके अनेक कष्ट सहती हुई हमारा पालन-पोषण करती है तो दूसरी अपनी जल-वायु से हमारे जीवन के परमाणु संगठित करती है। जन्म-भूमि की धूल मे लोटकर हम खड़ा होना सीखते है। जन्म-भूमि के आँगन मे खेलकर हम बड़े होते हैं।

यह मेरा कितना दुर्भाग्य है कि मैं अपनी जन्म-भूमि की शीतल गोद से पृथक् हूँ। मेरी जन्म-भूमि आगरे जिले के अन्तर्गत एक ग्राम है। यह गाँव एक छोटी-सी नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। इसकी पश्चिमी सीमा पर एक पहाड़ी है। इसके चारो ओर उपवन हैं जिनमें आम के वृक्ष प्रचर संख्या मे हैं। दूर से देखने पर वृक्षों के आधिक्य से ग्राम दिखलाई नहीं पड़ता।

वृक्ष इसको पूर्णतया ढके हुए हैं। नदी, पहाड़ी और उपवन इसको अद्भुत प्राकृतिक शोभा प्रदान करते हैं। पहाड़ी पर खड़े होकर नदी की शोभा बड़ी सुहावनी लगती है। उसका मार्ग धनुपाकार है। वह गाँव के कण्ठ मे हीरो का सा हार प्रतीत होता है। वर्षा ऋतु मे उसका भयङ्कर रूप और गर्जन निवासियों को भय-भीत कर देता है। पहाड़ी हरे-भरे घने पेड़ों के समूह से हरे वस्त्र का चँदोवा सा प्रतीत होती है। उपवनों की तो शोभा निराली है। लहलहाते हुए वृक्ष समूह में पक्षियों की क्रीड़ाएँ बड़ी अच्छी लगती है। उनके कलरव से जब उपवन निनादित हो उठता है उस समय चित्त आनन्द में निमग्न हो जाता है। वसन्त में आमों की मंजरियाँ और उन पर कूकती हुई कोकिलें हृदय को अपूर्व उल्लास से भर देती हैं। पुष्पों का रंग-रूप और उनकी महक निवासियों का सर्वस्व है।

हमारा गाँव अन्य गाँवो के समान गन्दा नहीं है। इसमें कहीं कूड़ा-करकट, घूरे, नालियाँ, मोरियाँ आदि गन्दगी फैलानेवाली वस्तुएँ नही देखी जाती। इसके सभी स्थान साफ और सुथरे रहते है। निवासियों ने एक सफाई-समिति की स्थापना कर दी है जो गाँव की स्वच्छता का सदैव ध्यान रखती है। वह जो निवासी गंदगी फैलाता है उसे दण्ड देती है और भंगियों से प्रातः-काल और सायंकाल गाँव की सफाई कराती है। हमारे गाँव की जल-वायु स्वास्थ्य-वर्द्धक है। गाँव के चारों ओर बाग होने के कारण यहाँ की वायु शुद्ध रहती है। जल मीठा और स्वादिष्ट है। उसमें कोई दोष नहीं है। फलतः निवासी हृष्ट-पुष्ट और रोगो से सुरक्षित है।

हमारे गाँव के निवासी सीधे-सादे हैं। उनमें छल-कपट, धूर्तता, विश्वास-घात आदि दुर्गुणो का नाम भी नहीं है। वे आपस में प्रेम का व्यवहार करते हैं। सब लोगों में एकता है। द्वेष

बिल्कुल नहीं है। सबका जीवन शुद्ध और सात्विक है। दिखा-वटीपन किसी मे भी नहीं है। हमारे गाँव की पुलिस हम लोगो की एकता से बड़ी दुःखी है। वह इस बात के अनेक प्रयत्न करती रहती है कि किसी प्रकार निवासियों मे फूट पड जाय, पर दो-चार उच्च-शिक्षित व्यक्तियों के कारण उसकी दाल नहीं गलती। हमारे गाँव के रहनेवाले बहुत धार्मिक और साधु-सेवी है। साधुओ के टिकने के लिये गाँव मे बाहर ८-१० कुटियाँ बनी हुई हैं जिनमें साधू आकर टिकते हैं। गाँव मे रात्रि के समय स्थान-स्थान पर रामायण की कथा होती है। कभी-कभी रामलीला भी होती है। दशहरा, दिवाली, होली, रक्षा बन्धन आदि त्यौहार बड़े धूम धाम से मनाये जाते है। फैशन का रोग हमारे गाँव मे नही है। अँगरेजी बाल कोई नही रखाता। सूट-बूट तो बेचारों को कहाँ मिल सकते हैं? यहाँ खाने को दूध-दही की कमी नही है। भोजन सादा होता है। निवासियो की वाणी अमृत के समान मीठी है।

ये सब अच्छाइयाँ होने पर भी हम लोगो के दुर्भाग्य से हमारे गाँव में शिक्षा के समुचित साधन नहीं हैं, केवल एक अपर प्राइमरी स्कूल है जो यहाँ प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करता है। यदि हमारे गाँव मे उच्च शिक्षा का प्रबन्ध होता तो मुझे क्यों आज शहर की धूल फाँकनी पड़ती? क्यो मुझे आज अपनी प्यारी जन्म-भूमि की सुखद और शीतल गोद से वंचित होना पड़ता? पर क्या किया जाय? यह मेरे ही दिनों का फेर है कि मैं कहीं पड़ा हुआ हूँ और मेरे बन्धु-बान्धव कहीं। हमारे गाँव में पुस्तकालय का भी अभाव है। यद्यपि कुछ पढ़े-लिखे लोगो ने एक पुस्तकालय खोलने के पर्याप्त प्रयत्न किये हैं तो भी निवासियों की दरिद्रता के कारण इस कार्य में उन्हें अभी तक सफलता नहीं हुई है। हमारे गाँव मे लड़कियो की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है।

हमारे गाँव की रक्षा आदि का प्रबन्ध करने के लिये सरकार ने एक थाना कायम किया है। गाँव के चारो ओर जंगलों की अधिकता से यहाँ चोरों, लुटेरों और डाकुओं का बहुत भय रहता है। इस भय को कम करने के लिये थाना प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। पटवारी खेतो की देख-भाल करता है और जमीन-सम्बन्धी समाचार सरकार को देता रहता है। वर्ष में एक बार कलक्टर तथा सुपरिण्टेण्डेण्ट और तीन-चार बार डिप्टी तथा तहसीलदार दौरा करते हैं। इन लोगों के दौरों का उद्देश्य गाँव का प्रबन्ध देखना होता है।

हमारे गाँव के मुख्य उद्योग-धन्धे खेती करना, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, चमड़ा, लकड़ी, लोहे, पत्थर और सोने का काम, मुर्गी पालना, सूअर पालना, चर्खा और रहँटा चलाना है। इनमें से पत्थर और लोहे के काम अच्छे होते है। आस-पास के गाँवो में यहाँ की पत्थर की चक्कियाँ तथा कूँड़ियाँ और लोहे के ताले तथा बर्तन बहुत बिकते है।

हमारे गाँव मे यदि कोई प्रसिद्ध वस्तु है तो वह एक खँडहर किला है जो पहाड़ी पर बना हुआ है। यह किला किसी पुराने राजा का बनवाया हुआ है। किले में एक स्थान पर सम्वत खुदा हुआ है जिससे पता चलता है कि यह संवत् १६८० मे बना था। सरकार की ओर से इसकी रक्षा के लिये एक मनुष्य नियुक्त है और प्रतिवर्ष इसकी मरम्मत होती रहती है।

यद्यपि हमारा गाँव काफी अच्छा है तो भी उसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता है। लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है। लड़को के लिये कम से कम मिडिल स्कूल तक की पढ़ाई की व्यवस्था होनी चाहिये। दरिद्रता दूर करने को कुछ नये उद्योग-धन्धों का प्रचार होना चाहिये। लोगों की चिकित्सा के लिये एक चिकित्सालय की भी आवश्यकता है। यदि ये सुधार

कर दिए जायँ तो हमारा गाँव एक आदर्श निवास-स्थान होजाय जहाँ सुख तथा शान्ति का अखण्ड साम्राज्य रहे इसमें सन्देह नहीं।

परोपकार

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—परोपकार की आवश्यकता
(२) परोपकार करना मनुष्य का कर्तव्य है
(३) परोपकार से लाभ
(४) परोपकारी व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसंहार—परोपकार का महत्व; हमारा कर्तव्य

मनुष्य की क्या कहें पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी किसी न किसी प्रकार अपना पेट भर ही लेते है। चींटी से लेकर हाथी तक सभी जीव-जन्तु अपनी भूख मिटाते हैं। पर क्या पेट भरने से किसी को संसार में महत्व मिल सकता है? क्या अपना ही भला करने से किसी की संसार में प्रतिष्ठा हो सकती है? क्या दूसरों की भलाई न करने पर किसी का जीवन सार्थक कहा जा सकता है? कदापि नहीं। आज तक न जाने कितने मनुष्य इस संसार में पैदा हुए, पर संसार मे नाम केवल उन्ही का है जिन्होंने दूसरों का हित किया, जिन्होने दूसरों की सहायता की, जिन्होने रोते हुए लोगो के आँसू पोंछे, जिन्होंने घायलो के घावों पर पट्टियाँ बाँधीं, जिन्होंने भूखो को भोजन कराया। संसार को परोपकारी व्यक्तियों की बड़ी आवश्यकता होती है। जहाँ इस संसार में लोग सुखी हैं वहाँ दुःखी भी है। जहाँ सम्पन्न है, वहाँ दाने-दाने को तरसनेवाले भी है। जहाँ दर्जनों वस्त्र रखनेवाले हैं, वहाँ कपड़े की धज्जी-धज्जी को तरसनेवाले भी हैं। यदि परोपकारी व्यक्ति न हो तो इन दीन-दुखियो की कौन सुध ले?

परोपकार करना मनुष्य का कर्तव्य है। उसकी मनुष्यता इसी मे है कि वह दूसरों के लिए जीना सीखे। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' के अनुसार सज्जनो की सम्पूर्ण विभूति परोपकार के लिए होती है। सृष्टि में वृक्ष, जलाशय, पशु, मिट्टी, पत्थर आदि जड़ वस्तुएँ परोपकार करती हुई हमको भी वैसा करने का उपदेश देती हैं। वृक्ष दूसरो के लिये छाया, फल, फूल, पत्ते और लकड़ी सब कुछ दे देता है। जलाशय दूसरों को जल देता है। गाय-भैंस दूध देती हैं मिट्टी और पत्थर अनेक काम आते हैं। जब सूर्यचन्द्र का उदय और अस्त संसार के लिए है, जब पवन और बादल प्राणी-मात्र का उपकार करते हैं, तब मनुष्य क्यो ऐसा न करे ? भर्तृहरिजी ने मानव-शरीर की उत्पत्ति भी परोपकार के लिये बतलाई है। वे कहते है :—

परोपकारार्थं फलन्ति वृक्षाः परोपकारार्थं वहन्ति नद्यः।
परोपकारार्थं दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरः॥

वास्तव में परोपकार की प्रवृत्ति मे मनुष्यता का निवास है। प्रत्येक धर्म परोपकार की शिक्षा देता है। जो मनुष्य परोपकारी नही उसे मनुष्य कैसे कहा जा सकता है ?

परोपकार करने से अनेक लाभ हैं। परोपकार करने से गरीब से गरीब राजा तक के हृदय पर अधिकार जमा लेता है। झोपड़ी से लेकर महल तक परोपकारी मनुष्य का आदर होता है। प्रत्येक व्यक्ति उसको मस्तक नवाता है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे उसके प्रति अटूट श्रद्धा होती है। हम राम की भक्ति क्यों करते हैं ? हम कृष्ण की पूजा क्यो करते हैं ? हम बुद्ध का आदर क्यों करते है ? परोपकार के कारण। दूसरों का हित करने से आत्मा को शान्ति मिलती है, जीवन आनन्दमय होजाता है, आत्मिक बल की वृद्धि होती है। पर यह सब होता है निःस्वार्थ परोपकार से। स्वार्थयुक्त परोपकार को परोपकार के पवित्र नाम

से पुकारना भूल है। यदि कोई मनुष्य सरकार से उपाधि पाने के लिये सार्वजनिक सेवा करे तो वह परोपकारी नहीं कहलायगा। यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रसिद्धि के लिये धर्मशाला बनवा देता है तो उसे परोपकारी कहना अनुचित है। इस प्रकार के व्यक्ति का न तो समाज में आदर होता है और न उसे स्वयं ही शान्ति और सुख मिलता है।

परोपकार हिन्दू-सभ्यता का प्रधान अंग रहा है। हमारे यहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त माना जाता रहा है। प्राचीन काल से लेकर अब तक हिन्दू-जाति में एक से एक प्रसिद्ध परोपकारी महानुभाव हुए हैं। राजा दधीचि का नाम कौन नहीं जानता होगा? उन्होंने वृत्रासुर नामक राक्षस के वध के लिये अपनी हड्डियाँ तक दे दी थीं जिनका धनुष बनाकर उस असुर का संहार हुआ और देवताओं की रक्षा हुई। राजा शिवि का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने एक कबूतर के प्राण बचाने के लिये अपने शरीर का मांस दे दिया था। दानवीर कर्ण की यश चन्द्रिका आज तक विश्व को आलोकित कर रही है। जटायु ने सीताजी की रक्षा में अपने प्राण दे दिये थे। इसीलिये उसका नाम आज तक चला आ रहा है। उदयसिंह की रक्षा के लिये पन्ना धाय ने अपने पुत्र का बलिदान कर दिया था। इस प्रकार के उदाहरण अनेक हैं। हमारे पूर्वज ऋषि तो परोपकार की मूर्ति थे। वे अपना सर्वस्व दूसरों के हित के लिये प्रदान कर देते थे। वनों में रहकर कन्द-मूल और फल-फूल खाते थे। शीत के कसाले और धूप के ताप को महर्षि सहते थे। आजकल महात्मा गांधी परोपकार का साक्षात् रूप हैं। देश और जाति के लिये उन्होंने क्या नहीं किया है? कई अवसरों पर वे भारतवासियों के लिये अपने प्राणों को होम देने को उद्यत हो गये हैं। अछूतों और ग्राम-निवासियों की दशा सुधारने के लिये उन्होंने कुछ उठा नहीं रक्खा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के लिये परोपकार के समान हित-साधक अन्य वस्तु नहीं। यह वह गुण है जिससे समाज की स्थिति बनी है। यदि परोपकार न हो तो समाज कायम न रह सके। समाज की रक्षा के लिये, उसकी दशा सुधारने के लिये, उसमें सुख तथा शान्ति स्थापित करने के लिये, परोपकार की महत्ता को कौन स्वीकार नहीं करेगा? हमे चाहिये कि हम व्यक्तिगत संकुचित घेरे से निकलकर अपने सुख-दुःख की चिन्ता न करके जीवधारियों का हित करे। जो प्यासे हो उन्हे पानी पिलाएँ, जो भूखे हो उन्हे भोजन कराएँ, जो नंगे हों उन्हें वस्त्र पहिनाएँ, जो दुःखी हो उनके दुःख दूर करें और जो अनाथ हो उनकी सहायता करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि परोपकार के समान उत्कृष्ट धर्म दूसरा नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा भी है—

परहित सरिस धर्म नहि भाई।
नहिं पर पीड़ा सम अधमाई॥

विद्यार्थी-जीवन

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—विद्यार्थी-जीवन की आवश्यकता
(२) विद्यार्थी-जीवन का महत्व
(३) विद्यार्थी-जीवन के आनन्द
(४) ज्ञानोपार्जन और आत्म-संस्कार की सीढ़ी
(५) प्राचीन और आधुनिक विद्यार्थी-जीवन में अन्तर
(६) कुछ आदर्श विद्यार्थी
(७) उपसंहार—आजकल के विद्यार्थी-जीवन में सुधार

हिन्दू-धर्म के अनुसार मानव-जीवन को चार भागो में विभक्त किया गया है जो आश्रम कहलाते हैं। ये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ,

वानप्रस्थ और संन्यास हैं। इनमें से ब्रह्मचर्याश्रम में बालक गुरु के घर जाकर विद्याध्ययन करते थे और अविवाहित रहते थे। आजकल का विद्यार्थी-जीवन उसी का परिवर्तित रूप है। जीवन-रूपी यात्रा के लिए विद्या-रूपी संबल की नितान्त आवश्यकता है। विद्या के सूर्य से अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है, अन्ध-विश्वास, कुरीतियाँ आदि चमगादड़ें छिप जाती हैं और ज्ञान-विज्ञान रूपी प्रकाश फैल जाता है। अतः मनुष्य की उन्नति के लिए विद्यार्थी-जीवन बड़ी आवश्यक वस्तु है। इसमें जो बातें सीखी जाती हैं वे आजन्म उसकी सहायता करती है। बिना इसके मनुष्य असभ्य रहता है।

विद्यार्थी-जीवन वह साँचा है जिसमे नागरिक ढलते हैं। यह वह जीवन है जिसमें मानसिक तथा आत्मिक उत्थान का सूत्रपात होता है। यह वह जीवन है जिसमें सुधार और संस्कृति का श्रीगणेश होता है। मनुष्य-जीवन का कोई भी अन्य भाग ऐसा नहीं है जो इस जीवन की समानता कर सके। इसकी महत्ता, इसका गौरव सभी जानते है। प्राचीन काल में विद्यार्थियों का बड़ा सम्मान था। राजा महाराजा तक उसको मस्तक नवाते थे, उनको आता देखकर सिंहासन छोड़ देते थे, धन-धान्य से उनकी सहायता करते थे। आजकल भी विद्यार्थी-जीवन का महत्व माना जाता है। विद्यार्थियों के लिए सरकार और धनवान मनुष्य छात्र-वृत्ति देते है। अनेक वस्तुओं के मूल्य में उनके लिए कमी कर दी जाती है। विद्यार्थी-जीवन की महत्ता कहाँ तक कहे ? महात्मा-गाधी, जवाहरलाल नहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लोकमान्य तिलक, गोपाल-कृष्ण गोखले आदि महान् महात्माओं को भव्य रूप प्रदान करने का श्रेय विद्यार्थी-जीवन को ही है।

विद्यार्थी-जीवन मे अनेक आनन्द मिलते है। न कोई चिन्ता होती है और न काई आपत्ति। विद्यार्थी निर्द्वन्द्व रहते है। उन्हें न

तो नोंन, तेल और लकड़ी की फिक्र होती है और न मान-अपमान की। खूब खाने को मिल जाता है और खूब पहनने को। माता-पिता अपने सुखोंकी परवाह न करके अपने पेट काटकर भी अपने बालकों को पढ़ाते है और सदैव उनके सुखो का ध्यान रखते है। विद्यार्थी मौज उड़ाते है। उनका जीवन आनन्दमय होता है। किसी जीवन में भी विद्यार्थी-जीवन के समान मौज नहीं। विद्यार्थियों को खेलने-कूदने के अवसरों की कमी नहीं। मेले और तमाशो में जाकर मनोरंजन करने की रोक-टोक नहीं। सिनेमा, नाटक और सरकस के भवन विद्यार्थियों से खचाखच भरे रहते है। वे सैर भी खूब करते है। कभी स्कूल की टीम में इलाहाबाद जाते है तो कभी इतिहास-सम्बन्धी टूर में देहली। कभी स्काउटों के रूप में हरिद्वार के कुम्भ में जाते है तो कभी पिकनिक में खिचपुरी। कभी साथियों के साथ ताश, चौपड और शतरंज खेलते हैं तो कभी गप्प उड़ाते हैं। निस्सन्देह विद्यार्थी-जीवन बड़ा सरस और मधुर होता है।

विद्यार्थी-जीवन ज्ञानोपार्जन और आत्मसंस्कार की सीढ़ी है। अनेक विद्यार्थियो के संसर्ग में रहकर विद्यार्थी विचार विनिमय द्वारा अनेक बातें सीखता है। पुस्तकें भी उसको अनेक बातो का ज्ञान कराती है। वह आदि काल से लेकर अब तक के विद्वानों से पुस्तकों के माध्यम द्वारा उसी प्रकार बात-चीत करता है जिस प्रकार अपने किसी साथी के साथ और उनके संचित विचारो से लाभ उठाता है। अध्यापको से वार्तालाप करने से भी उसका ज्ञान-भंडार बढ़ता है। जीवन के अन्य भागो की अपेक्षा विद्यार्थी-जीवन में सबसे अधिक ज्ञान-वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इस जीवन में आत्म संस्कार भी होता है। बाल्यावस्था ऐसा समय है जब मनुष्य पर कैसा ही प्रभाव डाला जा सकता है। उस समय वह कच्चे घड़े के समान होता है। कच्चे घड़े पर चाहे जैसा

निशान बना दीजिये बन जायगा, पर पक जाने पर न तो सरलता से कोई निशान उस पर बन ही सकता है और न पहला निशान मिट ही सकता है। उसी प्रकार मनुष्य पर बचपन मे जो प्रभाव पड़ जाता है वह बड़े होने पर नहीं मिटता और न उस अवस्था मे कोई नया प्रभाव सरलता से डाला ही जा सकता है। इसलिए विद्यार्थी-जीवन में पाठ्य-पुस्तकों का बालक पर उत्कृष्ट प्रभाव पड़ता है जिससे उसका आत्म-संस्कार होता है और उसका जीवन सर्वदा के लिए सुधर जाता है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल का विद्यार्थी-जीवन आजकल के विद्यार्थी-जीवन से भिन्न था। उस समय बालक विद्या प्राप्त करने के लिये गुरु के गृह भेज दिये जाते थे। माता-पिता से कुछ समय के लिए उनका सम्बन्ध टूट सा जाता था। वहाँ वे गुरु की सेवा करते थे और पढते थे। उनका जीवन सादा होता था। आजकल स्कूल और कालेज में फीस देकर विद्या प्राप्त की जाती है। विद्यार्थी या तो घर पर रहते है या छात्रालयो में। गुरु की सेवा का भाव उनमें नहीं रह गया है। उनके जीवन में फैशन और टीम-टाम बहुत आ गई है।

हमारे देश मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ आदि कई आदर्श विद्यार्थी हुए हैं जिनके जीवन-चरित्र पढ़ने मे ज्ञात होता है कि उनका विद्यार्थी-जीवन कैसा उत्कृष्ट रहा। दोनों ने हद दरजे की गरीबी मे लोहे के चने चबाकर विद्योपार्जन किया। जिन आपत्तियो को सहते हुए इन महान पुरुषों ने शिक्षा प्राप्त की उन आपत्तियों को सहकर पढ़ना विरले ही छात्र का काम है। पढ़ने की लगन भी इनमें खूब थी। रात-रात भर ये पढ़ने में बिता देते थे। अहंकार इन्हें छू तक नहीं गया था। फैशन का भूत इन पर सवार न था। यही कारण है कि इन्होंने इतना नाम पाया है।

आजकल हमारे विद्यार्थी बहुत कुछ गिर गये हैं। उनका जीवन विलासमय हो गया है, वे फैशन के पीछे बेतरह पड़े हैं। यही कारण है कि हमारे देश में आजकल अच्छे-अच्छे विद्वानों की कमी देखी जाती है। वर्तमान विद्यार्थी-जीवन में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्यार्थियों को अपना कर्तव्य समझना चाहिये। उन्हें फैशन और टीमटाम का बहिष्कार करना चाहिये, आचरण को सुधारना चाहिये, गुरुओ की सेवा करनी चाहिये, सिगरेट आदि पीने की कुटेव छोड़नी चाहिये, कुरुचि-पूर्ण नाच-रंग से दूर रहना चाहिये और तन्मयता के साथ विद्याध्ययन करना चाहिये। तभी उनका और उनके देश का कल्याण होगा। तभी उनका और उनके देश का अभ्युदय होगा।

सच्चरित्रता

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—सच्चरित्रता का महत्त्व

(२) सच्चरित्रता की प्राप्ति के साधन

(३) सच्चरित्रता से लाभ

(४) सच्चरि ता का संसार पर प्रभाव

(५) सच्चरित्र व्यक्तियों के उदाहरण

(६) उपसहार—सारांश; हमें सच्चरित्र होना चाहिए

यदि विश्व में मनुष्य की कोई अद्वितीय सम्पत्ति है तो वह सच्चरित्रता है। इसके समक्ष अष्टसिद्धि, नवनिधि और इन्द्रासन तक तुच्छ हैं। संसार के समस्त गुणो को यदि तराजू के एक पलड़े मे रक्खा जाय और सच्चरित्रता को दूसरे पलड़े मे तो निस्सन्देह दूसरा पलड़ा नीचा रहेगा और पहला ऊँचा उठ जायगा। सच्चरित्रता एक दैवी शक्ति है। जीवन में इसका कितना महत्व है यह किसी से छिपा नहीं। वास्तव में इसके न

रहने पर जीवन में कुछ भी नहीं रह जाता। चरित्रहीन व्यक्ति प्राण-रहित शरीर से किसी प्रकार अच्छा नहीं। वह समाज का कोढ़ है। वह समाज का सड़ा-गला अंग है। 'आचारः परमो धर्मः' के अनुसार सच्चरित्रता ही मनुष्य का परम धर्म है। मनुष्य की वास्तविक महत्ता उसके चरित्र में रहती है। यह वह कसौटी है जिस पर उसका मूल्य आँका जा सकता है। सच्चरित्रता मानव-जीवन की शिरोमणि है।

सच्चरित्रता के अंग सत्य बोलना, जीवों पर दया करना, शिष्टता, सुशीलता, नम्रता, क्षमा, उदारता, पाप न करना आदि है। इन गुणों के अभ्यास से सच्चरित्र बना जा सकता है। सच्चरित्र बनने के लिए मनुष्य को भले-बुरे का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। केवल भले-बुरे के ज्ञान से ही काम न चलेगा। उसको अपनी प्रकृति भी ऐसी बनानी चाहिए जो उसे सदैव अच्छी बातो की ओर प्रेरित करे। यदि कभी बुरा काम हो भी जाय तो वह पश्चात्ताप करे और भविष्य में पुनः वैसा काम न करने का दृढ़ निश्चय कर ले। महात्मा गांधी में बचपन से यह प्रवृत्ति देखी जाती थी। एक बार उन्होंने माँस खा लिया पर पश्चात्ताप करके भविष्य मे पुनः माँस न खाने का पक्का विचार कर लिया। इस प्रकार कई बार उन्होने अपने को पतित होने से बचाया और धीरे-धीरे आचरण की सभ्यता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त सच्चरित्रता की प्राप्ति के लिए यह भी एक साधन है कि मनुष्य आरम्भ से ही अपनी आत्मा की सम्मति के अनुसार प्रत्येक कार्य करे। जब कभी किसी कार्य के करते समय आत्मा का विरोध हो उस कार्य को न किया जाय। सत्संगति और उत्तम ग्रन्थ पढ़ने से भी मनुष्य सच्चरित्र बन सकता है। कबीर ने सत्संगति के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है—

कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी बास सुबास॥

सच्चरित्रता से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। उसकी आत्मा प्रबल हो जाती है। मृत्यु पश्चात् स्वर्ग का द्वार उसके लिए खुल जाता है। संसार में उसकी प्रतिष्ठा होती है। लोग उसके प्रति श्रद्धा करने लगते हैं। सच्चरित्रता में कुछ ऐसा जादू है जिससे लोगों के हृदय वश मे हो जाते हैं। सच्चरित्र व्यक्ति झोंपड़ी से लेकर राज-महल तक पूजा जाता है। उनका जीवन सुखी और शान्तिमय होता है।

सच्चरित्र मनुष्य का सारे संसार पर प्रभाव पड़ता है। उसके दर्शन करने से, विचार जानने से और प्रशंसा करने से लोगों में सद्भाव जाग्रत होते हैं और मन का मैल कटता है। गोस्वामीजी के 'रामचरित मानस' में रामचन्द्रजी का श्रेष्ठ आचरण देखकर किसके हृदय मे सुन्दर भाव उत्पन्न नहीं होते? किसका मन पवित्र नही होता? कौन कुमार्ग से अपना पैर पीछे नही खीच लेता? सदाचारी व्यक्ति का प्रभाव बिजली के समान तीव्र गति से फैलता ह। जिस समय संसार मे सच्चरित्रता की पीयूषवर्षा होती है उस समय पापाचार रूपी जवास जल जाता है और चारों ओर पवित्रता रूपी सरिता उमड़ने लगती है।

हमारा प्राचीन इतिहास अनेक सच्चरित्र मनुष्यों की गाथाओं से भरा पड़ा है। राम, भरत, प्रताप, शिवाजी आदि पुरुष और सीता, सावित्री, गार्गी आदि स्त्रियाँ हिन्दू-जाति के गर्व के कारण हैं। राम और भरत तो सच्चरित्रता के साक्षात् रूप थे। राणा प्रताप ने प्रतिज्ञावश अनेक कष्ट सहे पर मुसलमानों के हाथ अपनी स्वाधीनता न बेची। शिवाजी ने हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म की रक्षा की। सीता आदि देवियो ने सर्वथा अपने उज्ज्वल आचरण का परिचय दिया। उन्हीं के कारण हमारे समाज की, हमारे देश की आज तक शोभा बनी हुई है। आजकल महात्मा गांधी मे चरित्र की उज्ज्वलता खूब देखी जाती

है। सत्य और अहिंसा के इस पुजारी ने भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल किया है। संसार भर में इन्होने भारत का शंख फूँक दिया है।

सारांश यह है कि सच्चरित्रता एक ऐसी श्रेष्ठ वस्तु है जिसके पा लेने पर मनुष्य बहुत ऊँचा उठ सकता है। वह अपना और अपने समाज दोनो का कल्याण कर सकता है। अतः हमारा यह सतत प्रयत्न होना चाहिए कि हम सदाचारी बनें। इस कार्य के सम्पादन के लिए हमे रामचरितमानस, गीता आदि श्रेष्ठ ग्रन्थो का अध्ययन और सज्जनो की संगति करनी चाहिये। हमे चाहिए कि हम सत्य बोलें, जीवो पर दया करें, बड़ों का आदर करे, माता-पिता की आज्ञा मानें और कभी पाप न करें।

देशी खेल

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—जीवन में खेलों की आवश्यकता
(२) कबड्डी
(३) गिल्ली-डंडा
(४) चोर-मिहीचनी (आँख मिचौनी)
(५) गेंद का खेल
(६) चील-झपट्टा
(७) किलकिल-काँटा
(८) लपक-डण्डा
(९) ताश, शतरज, चौपड़ आदि
(१०) लड़कियों के खेल
(११) उपसहार—देशी खेलों का व्ययरहित होना

जिन वस्तुओं की जीवन मे नितान्त आवश्यकता है उनमें खेल भी है। खेल भूखे मस्तिष्क का भोजन है। मानव-प्रकृति यह चाहती है कि काम के साथ-साथ कुछ मनोरंजन के साधन भी

होने चाहिएँ। यदि कुछ समय काम किया जाय तो कुछ समय खेला भी जाय। यही कारण है कि प्रत्येक देश में कुछ-न-कुछ खेल पाए जाते हैं। भारतवर्ष मे अनेक खेल प्रचलित हैं। यद्यपि इस देश में विदेशी खेलों के प्रचार ने देशी खेलों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है तो भी उनमें से कुछ का रूप आज भी देखने को मिलता है। विदेशी खेलो का प्रसार अभी गाँवों में नहीं हुआ है। अतः मुख्यतः गाँवों में ही देशी खेल देखे जाते है।

आजकल के देशी खेलो मे कबड्डी का ऊँचा स्थान है। यह बालक, युवक और वृद्ध सभी का प्रिय खेल है। गाँव मे चले जाइए। सायङ्काल गाँव के बाहर दगरों में टोल के टोल मनुष्य इस खेल को खेलते हुए मिलेंगे। इस खेल में खिलाड़ी दो पार्टियो मे विभक्त हो जाते हैं और आमने-सामने अपने लिए दो क्षेत्र बना लेते है। दोनो क्षेत्रो के बीच मे एक मेंड़ सी बना ली जाती है जिसे 'पारी' कहते हैं। एक पार्टी का खिलाड़ी अपने क्षेत्र से 'कबड्डी' शब्द का निरन्तर उच्चारण करता हुआ विपक्षी क्षेत्र में घुसता है और उस क्षेत्र के खिलाड़ियों को छूने का प्रयत्न करता है। जिस किसी खिलाड़ी को वह छू लेता है वह मरा हुआ समझा जाता है। विपक्षी खिलाड़ी अपने क्षेत्र मे घुसे हुए खिलाड़ी को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। यदि वे उसे पकड़ लेते है और वह छुड़ाकर पारी को नही छू पाता तो मरा हुआ समझा जाता है। यह आवश्यक है कि घुसनेवाला खिलाड़ी जब तक विपक्षी क्षेत्र मे रहे तब तक 'कबड्डी' का निरन्तर उच्चारण करता रहे और बीच में साँस न ले। यदि वह ऐसा न करे और विपक्षी खिलाड़ी उसको छू ले तो वह मरा हुआ समझा जायगा। मरा हुआ खिलाड़ी खेल मे भाग नही ले सकता। इस प्रकार खेलते-खेलते जिस दल के समस्त खिलाड़ी पहले मर जाते हैं वह हार जाता है। यही कबड्डी का खेल है।

गिल्ली-डण्डा भी रोचक खेल है। इसे बालक और युवक खेलते हैं। इस खेल मे लकड़ी की लगभग आठ अंगुल लम्बी और दोनो किनारो पर नोकदार गिल्ली तथा हाथ भर लम्बा डण्डा प्रयुक्त होता है। यह खेल दो टोलियो मे खेला जाता है अथवा केवल दो मनुष्यों मे। टोलियो का खेल उतना मजेदार नहीं होता जितना दो व्यक्तियो का। इस खेल के लिए मिट्टी के मैदान की आवश्यकता है। मैदान मे एक नोकदार गड्ढा खोद लिया जाता है जिसे गुच्ची कहते है। गुच्ची पर गिल्ली रख दी जाती है और डण्डे से उलीची जाती है। दूसरा पदनेवाला खिलाड़ी गिल्ली को लपकने का प्रयत्न करता है। यदि लपक लेता है तो पदानेवाला खिलाडी हार जाता है। यदि नहीं लपक सकता तो गुच्ची पर रखे हुए डंडे का गिल्ली मे निशाना लगाता है। यदि उसे इसमे सफलता मिलती है तो पदानेवाला हार जाता है। जब तक इस प्रकार पदानेवाला नहीं हारता तब तक पदनेवाला पदता रहता है। जब पदानेवाला हार जाता है तब पदनेवाला उसका स्थान ग्रहण करता है। इस प्रकार गिल्ली--डण्डे का खेल होता है।

चोर-मिहीचनी या आँख-मिचौनी केवल बच्चो का खेल है। इसमें बच्चो की टोली खेलती है। एक बालक अपनी आँखें बन्द कर लेता है। अन्य सब बालक छिप जाते है। छिपे हुए बालको में से एक बालक उसे अपने नेत्र खोल देने और छिपे हुए बालकों को ढूँढ़ने की आज्ञा देता है। वह नेत्र खोलकर सबको ढूँढ़ता है। जिसको ढूँढ़कर पहले छू लेता है उस पर दाँव आ जाता है और उसे पहले लड़के की भाँति आँख बन्द करनी पड़ती है तथा अन्य सबको ढूँढ़ना पड़ता है। इस प्रकार आँख-मिचौनी का खेल होता है।

गेंद का खेल भी मुख्यतः बालको मे खेला जाता है। यह कई प्रकार से खेला जाता है। हॉकी की भाँति बहुत से लडके लत्ते की गेंद बनाकर टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियों से इसे खेलते हैं। वे दो दलो में विभक्त हो जाते हैं और अपना-अपना स्थान निश्चित कर लेते है जहॉ पर गेद के आ जाने से बाजी हो जाती है। जिस दल के स्थान पर गेंद आती है वह हार जाता है। इसके अतिरिक्त गेंद का खेल यो भी होता है कि खेलनेवालो में से एक के अतिरिक्त सभी पास-पास हाथ भर व्यास के वृत्ताकार स्थान बना लेते है और उनमे खड़े हो जाते है। बचा हुआ लड़का पदता है। लकड़ी के बल्ले की सहायता से वृत्तो मे खड़े हुए लड़को मे से एक गेद को फेकता है। पदानेवाला लड़का उसको पकड़ता है और जहाँ पकड़ लेता है वहीं से खड़े हुए लड़कों मे गेद मारता है। वे सब वृत्तो को छोड़-छोड़कर इधर-उधर छिपकर अपने को बचाते है। यदि किसी के गेंद लगकर पदने-वाले के हाथ पड़ जाती है अथवा पदनेवाला किसी वृत्त पर अपना अधिकार कर लेता है तो दाँव उससे हठकर गेंद लगने-वाले या जिसका वृत्त छिन जाता है उस पर पहुँच जाता है और उसे फिर पदना पड़ता है। इस प्रकार यह खेल होता है।

चील-झपट्टा भी रोचक खेल है। इसमें बालक और नव-युवक भाग लेते हैं। खेल में भाग लेनेवालों में से दो को छोड़कर शेष सब एक दूसरे के हाथ पकड़कर गोले में खड़े हो जाते हैं। बचे हुए दो में से एक गोले के भीतर खड़ा हो जाता है और दूसरा बाहर। भीतर का खिलाड़ी बाहर के खिलाड़ी पर चील की भाँति झपटता है। गोले के खिलाड़ी अपने हाथों से उसको बाहर जाने से रोकते हैं। वह गोले के भीतर फिरता हुआ बाहर निकलने का अवसर ताकता रहता है। बाहर का खिलाड़ी गोले के बाहर अपने को बचाता हुआ चक्कर काटता रहता है। जब

भीतर का खिलाड़ी बाहर के खिलाड़ी को पकड़ लेता है तब पहला गोले के खिलाडियो में शामिल हो जाता है और दूसरा गोले के भीतर आ जाता है। फिर गोले के खिलाड़ियो मे से एक निकल कर बाहर खड़ा हो जाता है और पहली भाँति उनमे खेल होता है। इस प्रकार यह खेल खेला जाता है।

किलकिल-काँटा बालकों में ही खेला जाता है। इस खेल में दो या दो से अधिक लडके भाग ले सकते है। उनकी दो पार्टियाँ बन जाती हैं। वे अपना-अपना क्षेत्र बाँट लेती है। फिर छिप-छिपकर वे खड़ी, गेरू या कोयले से पत्थरो पर लकीर बनाती हैं। दोनो की लकीरें भिन्न-भिन्न रंग की होनी चाहिएँ। लकीर बनाने के पश्चात् एक पार्टी के खिलाड़ी दूसरी पार्टी के खिलाड़ियो की लकीरो को ढूँढ़ते हैं और काटते फिरते हैं। कुछ समय के बाद बिना कटी हुई लकीरे गिनी जाती है। जिस पार्टी की लकीरें अधिक होती है वही विजयी समझी जाती है।

लपक डण्डा प्रधानतः ग्वालाओ का खेल है। इसमे एक हाथ भर लम्बे डण्डे की आवश्यकता होती है। यह डण्डा धरती पर डाल दिया जाता है। इसकी रक्षा एक ग्वाला करता है और अन्य ग्वाले उसको चूमने का प्रयत्न करते हैं। रक्षक ग्वाला यदि चूमनेवालों में से किसी को छू लेता है तो दाँव उससे हटकर छुए हुए ग्वाले पर पहुँच जाता है और वह अन्य चूमनेवाले ग्वालाओं में शामिल हो जाता है। इस खेल मे चूमनेवाले ग्वाले पेड़ो पर चढ़े रहते हैं और रक्षक ग्वाला नीचे जमीन पर खड़ा रहता है।

इन खेलों के अतिरिक्त कोड़ामार, कैयामार, आतापाती आदि कई और खेल भी गाँवो में प्रचलित हैं। टेसू का खेल सामयिक खेल है जो गाँव मे दशहरे से कुआर की पूर्णमासी तक और शहर मे कुआर की अमावस्या से दशहरे तक खेला जाता है। ताश, शतरंज, चौपड, जुआ आदि भी देशी खेल हैं। जुआ बड़ा बुरा खेल है। इसमे बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं।

कुछ देशी खेल ऐसे भी हैं जो लड़कियो में ही खेले जाते हैं। उपर्युक्त खेल प्रायः सभी लड़को अथवा पुरुषो के हैं। लड़कियों के मुख्य खेल गुटका, गुड़िया और झेंझी हैं। गुटका का खेल पत्थर के छोटे गोल टुकड़ो से खेला जाता है। गुड़ियों के खेल में कपड़े के स्त्री-पुरुष बनाकर उनके विवाहादि कराये जाते हैं। झेंझी सामयिक खेल है। यह उन्हीं दिनों में खेला जाता है जिन दिनों में टेसू खेला जाता है। लड़कियों के खेल में यह दोष होता है कि उनसे लड़कियों का कुछ भी व्यायाम नहीं होता।

अन्त में यह कहना है कि हमारे देश में जो खेल प्रचलित हैं उनमें कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता। इसलिये उनको सभी खेल सकते है, पर विदेशी खेलों जैसे—हॉकी, क्रिकेट, टैनिस आदि में बहुत व्यय करना पडता है। अतः गरीब लोग उनसे लाभ नहीं उठा सकते। जनसाधारण के लिए तो देशी खेल ही उपयुक्त हैं।

रामायण से शिक्षा

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—रामायण की रचना का उद्देश्य

(२) रामायण से शिक्षा—

(क) आचरण-सम्बन्धी शिक्षा

(ख) धार्मिक शिक्षा

(ग) सामाजिक शिक्षा

(घ) राजनैतिक शिक्षा

(३) उपसहार—रामायण का महत्व

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा मे रामायण नामक महाकाव्य की रचना की। उसकी अवतारणा गोस्वामी

तुलसीदासजी ने हिन्दी भाषा में की और उसको 'रामचरित-मानस' नाम दिया। गोस्वामीजी ने रामायण की रचना क्यों की? इस प्रश्न का उत्तर हमें रचना के आदि में ही मिल जाता है। गोस्वामीजी ने लिखा है:—

स्वान्तः सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा।
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ॥

इससे स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य अपनी आत्मा को आनन्द प्रदान करना था। ठीक है। पर केवल यही इस महान् काव्य की [illegible]ना का लक्ष्य नही था। कुछ और भी था। जिस समय [illegible]स्वामीजी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय हिन्दू-जाति अवनति [illegible]अंधकूप मे पड़ी हुई थी। हिन्दुओं का जीवन नैराश्यपूर्ण था। [illegible]की सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। वर्णाश्रम धर्म, [illegible]शास्त्र, कुलाचार और मर्यादा का तिरस्कार हो रहा था। [illegible]रो ओर अशांति छाई हुई थी। निस्संदेह हिन्दुओं की दशा [illegible]चनीय थी। उसे सुधारने के लिए गोस्वामीजी ने रामायण की [illegible]ना की। अतः रामायण की रचना का उद्देश्य हिन्दू-समाज [illegible] व्यवस्था द्वारा आर्य-धर्म की रक्षा करना भी था। गोस्वामी [illegible] कहाँ तक अपने इस उद्देश्य मे सफल हुए, यही हमें देखना [illegible] गोस्वामीजी की रामायण से हिन्दुओं ने क्या शिक्षाएँ ग्रहण [illegible]है, इसी का हमे विवेचन करना है।

गोस्वामीजी की रामायण ने जनता को नीति और मर्यादा [illegible] पाठ पढ़ाए है। इस कार्य के लिए मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के चरित्र से बढ़कर अवलंब और क्या मिल सकता था? उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से इन्होंने मानव-हृदय की पवित्र से पवित्र वृत्ति, आचरण का उत्कृष्ट से उत्कृष्ट रूप और मर्यादा का भव्य से भव्य सौंदर्य उद्घाटित किया है। कृपा, नम्रता, सुशीलता, सत्यता, उदारता

क्षमा, कृतज्ञता, वीरता, धीरता, गंभीरता आदि का रूप राम में दिखलाया है। उन्होने किस प्रकार परशुरामजी और समुद्र को क्षमा किया, किस प्रकार पवनसुत के प्रति कृतज्ञता स्वीकार की, किस प्रकार विभीषण और सुग्रीव पर कृपा की, किस प्रकार परशुरामजी के सन्मुख नम्र वचन कहे, किस प्रकार धीरता और गंभीरता से वन के दुःखों को सहन किया और किस प्रकार वीरता से पापी दुर्धर्ष राक्षसों का वध किया यह जानकर हमारा मन अत्यन्त प्रसन्न होता है! भाई लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ उनका व्यवहार तथा पिता दशरथ और माताओ का आज्ञा-पालन उनके भ्रातृ-प्रेम, पितृ-भक्ति तथा मातृ-भक्ति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी पत्नी सीता पातिव्रत धर्म की जीती जागती मूर्ति है। पिता दशरथ सत्यव्रत के साक्षात् रूप हैं। रामायण में यह सब पढ़कर मन का मैल कटता है। राम का बालि-वध, सीता-वनवास, साधु-सेवा और शिवजी का काकभुशुण्डि को श्राप मर्यादा के बड़े अच्छे उदाहरण है। बालि ने अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी पत्नी बनाया और काकभुशुण्डि ने गुरु को प्रणाम नहीं किया। सीता पर रावण के गृह निवास का झूठा दोषारोपण किया गया जिसका दण्ड मर्यादा की दृष्टि से वाँछनीय था।

धर्म-सम्बन्धी शिक्षाएँ भी रामायण ने खूब दी हैं। रामायण से पूर्व आर्य-धर्म का वास्तविक रूप आँखों से ओझल हो रहा था। सर्वत्र दम्भ और आडम्बर का बोलबाला था। शैव, वैष्णव और शाक्त आपस मे खूब लड़ते-झगड़ते थे। ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखनेवाले मूर्ख बढ़ रहे थे "ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात।" ऐसे लोगों ने भक्ति को बदनाम कर दिया था। गोस्वामीजी ने अपनी रामायण में आर्य धर्म का ऐसा चलता हुआ सामान्य रूप रक्खा जिसकी ओर जनता स्वतः

आकर्षित हो। धर्म का सम्बन्ध हृदय से स्थापित करके उसका मार्ग आनन्दमय बना दिया जिससे लोग आपसे आप उसकी ओर प्रवृत्त हुए। इनकी राम-भक्ति केवल ज्ञान और कर्म के साथ ही सामंजस्य नहीं जोड़ती है बल्कि भिन्न-भिन्न देवताओं का भी आदर करती है। इन्होंने जो धार्मिक उपदेश अपने काव्य में रक्खे हैं उन्होंने शैवों, वैष्णवों, शाक्तो, कर्मठो और ज्ञानियो के झगड़ों का सदैव के लिए अन्त कर दिया है। इनकी राम-भक्ति का आधार आचरण की शुद्धता है। स्थान-स्थान पर इन्होंने राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए सदाचार की शिक्षा दी है। यही कारण है कि आज राम भक्ति का हिन्दुओं के घर-घर में प्रचार है। प्रत्येक हिन्दू की जीभ पर राम-नाम नाचता है। सम्पत्ति मे, विपत्ति में, घर मे, वन मे, जहाँ देखिए वहीं राम-नाम।

रामायण ने समाज की व्यवस्था फिर से की। समाज के लिए गोस्वामीजी ने वर्ण और आश्रम का बन्धन आवश्यक ठहराया है। स्त्रियों के लिए पुरुषों की अधीनता मे रहकर गृहस्थी का काम-काज करना ही आवश्यक बतलाया है। शूद्रों के लिए अन्य वर्णों की सेवा-शुश्रुषा करने की शिक्षा दी है। गोस्वामीजी ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था की है। सारे समाज को इन चार वर्णों मे विभक्त कर दिया है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन चार आश्रमो मे रहने की शिक्षा दी है। समाज में बड़ों का आदर, विद्वानो का सम्मान, वीरों के प्रति श्रद्धा, अत्याचारियों का दमन, पारस्परिक एकता आदि बातों की शिक्षा दी है।

रामायण मे हमे राजनैतिक शिक्षा भी मिलती है। किस प्रकार राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार होना चाहिए, किस प्रकार प्रजा का राजा के प्रति व्यवहार होना चाहिए, किस प्रकार शासन

की व्यवस्था हो, किस प्रकार राजा प्रजा की रक्षा, सुख तथा समृद्धि का प्रबन्ध करे और किस प्रकार उस पर वीतराग साधू-महात्माओं का नियन्त्रण रहे, इन सब बातों का विवेचन रामायण में भली भाँति हुआ है। गोस्वामीजी ने एक स्थल पर कहा है—

मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पान कहँ एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

रामायण के अनुसार राजा सच्चरित्र और दार्शनिक मनोवृत्ति का होना चाहिए। राजा के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में कोई भेद न हो। उसके दोनो प्रकार के जीवन को देखने की और उस पर टीका-टिप्पणी करने की मजाल प्रजा को हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामायण ने हिन्दू-जाति को क्या नैतिक, क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक सभी प्रकार की शिक्षाएँ दी है। वास्तव में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शों का प्रतिपादन करके रामायण ने हिन्दू-जाति का उद्धार किया है, उसे नया जीवन प्रदान किया है। इस पवित्र काव्य को पढ़कर अथवा सुनकर न जाने कितने मनुष्य सुधर गए, न जाने कितने सन्मार्ग पर चलने लगे और न जाने कितने भव सागर से पार हो गए। आज भी इसके प्रभाव से प्रत्येक हिन्दू महत्व पर श्रद्धा करता है, सदाचार की ओर प्रवृत्त होता है, पूज्यजनों को मस्तक झुकाता है, विपत्ति में धैर्य रखता है और राम-भक्ति का अनुसरण करता है। धन्य है हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति का कल्याण करनेवाली रामायण और धन्य है इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास।

शिक्षा का जीवन पर प्रभाव

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—शिक्षा का उद्देश्य
(२) शिक्षा और शरीर
(३) शिक्षा और मानसिक विकास
(४) शिक्षा और आचरण
(५) शिक्षा से ज्ञान-प्राप्ति
(६) शिक्षा और सार्वजनिक जीवन
(७) शिक्षा और रोटी की समस्या
(८) उपसंहार—सारांश

हरबर्ट स्पेंसर नामक एक अँगरेज दार्शनिक ने कहा है—To prepare us for complete living is the function which education has to discharge अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य हमें पूर्ण जीवन (व्यक्तिगत और सामाजिक) के लिये तैयार करना है। सचमुच शिक्षा मनुष्य को जीवन-संग्राम के लिए तैयार करती है। वह मनुष्य की सोई हुई शक्तियों को जाग्रत करती है और उनका विकास करती है। मनुष्य को ईश्वर ने तीन प्रधान शक्तियाँ दी हैं—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। इन तीनों शक्तियों के विकास में ही जीवन की सफलता है। इन तीनो में से हम किसी की भी अवहेलना नही कर सकते। जीवन में पद पद पर इन तीनो की आवश्यकता होती है।

पहले शरीर को लीजिए। जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ नहीं, जो मनुष्य नीरोग नहीं, वह जीवन मे क्या कर सकता है? उसके लिए जीवन भार-स्वरूप है। जीवन को सुखी बनाने के लिए शरीर रक्षा और व्यायाम नितान्त आवश्यक हैं। अतः व्यायाम शिक्षा का एक अंग बना दिया गया है। ऐसा कोई शिक्षा-केन्द्र न होगा जहाँ विद्यार्थियों के लिए कुछ-न-कुछ

व्यायाम का प्रबन्ध न हो। प्रत्येक विद्यालय में लड़को को खेल-कूद कराए जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को खेलों में भाग लेना अनिवार्य है। जो विद्यार्थी खेलो में भाग नहीं लेता उसे दंड का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार शिक्षा विद्यार्थियो को पुष्ट और सबल बना कर उन्हे जीवन के लिए तैयार करती है।

शिक्षा से मानसिक विकास भी होता है। यह वह साधन है जिससे मस्तिष्क प्रौढ़ और सशक्त होजाता है। जीवन मे प्रौढ़ मस्तिष्क की कितनी आवश्यकता है, यह सभी जानते हैं। वह व्यक्ति और समाज दोनो का कल्याण करता है। जीवन की समस्याओ को हल करने के लिए उसकी बड़ी आवश्यकता होती है। वह मनुष्य को शान्ति और आनन्द प्रदान करता है। उसी के द्वारा किसी बात को ठीक तरह सोचा और समझा जाता है। वही कठिन से कठिन परिस्थिति और दुःखपूर्ण वातावरण में सच्चे मित्र की भाँति सहायता करता है। वही संसार में ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैलाता है। वही सत्य का अन्वेषण करता है। शिक्षा विविध विषयो की पढ़ाई द्वारा मस्तिष्क का विकास करती है।

जीवन में शरीर और मस्तिष्क से भी बढ़कर आचरण का महत्व है। जिसमें आत्मिक बल होता है, जिसका आचरण शुद्ध होता है, वह स्वावलम्बी होता है, संसार मे उसका सम्मान होता है। आचरण की पवित्रता से भिखारी भी राजाओ के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है। महात्मा गांधी को देखिए। यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसने उनको संसार भर मे पूज्य बनाया है, जिसने उनको झोपड़ी से लेकर महल तक प्रतिष्ठित किया है, तो वह उनका श्रेष्ठ आचरण है। आचरण को खो देने पर जीवन में कुछ भी नहीं रह जाता। कहा भी है—When character is lost everything is lost अर्थात् आचरण के नष्ट होजाने

पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। शिक्षा इस महत्वपूर्ण वस्तु की प्राप्ति कराती है। वह आचरण के बीज को मानव-हृदय में बोती है। वह सिखाती है कि मनुष्य को अपने माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिये, [illegible] का आदर करना चाहिये, भाई-बहिनों से स्नेह करना चाहिये। सत्य बोलना चाहिये और जीवों पर दया करनी चाहिये। इस प्रकार की अनेक आचरण सम्बन्धी बातों का भण्डार पाठ्य-पुस्तकों में रहता है।

शिक्षा से मनुष्य को ज्ञान मिलता है। स्कूल मे नाना प्रकार के विषयों के अध्ययन से अनेक बातो का ज्ञान होता है। पुस्तको को पढ़-पढ़कर बड़े-बडे विद्वानो के विचार मालूम हो जाते हैं। स्थान या समय इस कार्य मे कोई बाधा उपस्थित नहीं करता। इङ्गलैण्ड के विद्वानो का वैसा ही परिचय हो सकता है जैसा भारतवर्ष के किसी विद्वान का। बाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी आदि विद्वानों से उसी प्रकार बातचीत कर सकते हैं जिस प्रकार अपने समय के किसी विद्वान् से।

शिक्षा से व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त सार्वजनिक जीवन भी प्रभावित होता है। शिक्षित मनुष्य सामाजिक कुरीतियो और रूढ़ियों का खण्डन करते हैं। वे समाज का हित करनेवाली बातो का प्रचार करते हैं। जिन देशो मे शिक्षा का सर्वत्र प्रचार नहीं है वहाँ के निवासी पुरानी लकीर के फकीर बने हुए हैं। भारतवर्ष को ही लीजिये। यहाँ के निवासी शिक्षा की कमी के कारण अंधविश्वासी और प्राचीन कुरीतियो के भक्त हैं। हाँ, इधर कुछ दिनों से शिक्षा के प्रचार से यहाँ समाज की दशा सुधारी जा रही है। शिक्षा से जापान ने आज कितनी शीघ्र उन्नति करली है। केवल ७५ वर्षों में जापान की काया पलट गई है। घर की चहारदीवारी मे बन्द रहनेवाली स्त्रियाँ आज वहाँ पुरुषो के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर कार्य करती हैं। कई कुप्रथाओ का आज वहाँ नाम-

निशान भी नहीं रह गया है। इस प्रकार शिक्षा देश की, समाज की, उन्नति करती है। उससे सभ्यता भी आगे बढ़ती है।

पर क्या रोटी की समस्या जो जीवन की सबसे बड़ी समस्या है शिक्षा के द्वारा हल होती है? क्या जीविका के उपार्जन में शिक्षा कुछ सहायता देती है? क्या पेट की ज्वाला को शान्त करने में उसका कुछ हाथ है? अवश्य। सच्ची शिक्षा जहाँ मस्तिष्क और हृदय की भूख मिटाती है वहाँ पेट की क्षुधा को भी दूर करती है। हमारे देश की शिक्षा इस दृष्टि से सच्ची शिक्षा नहीं, क्योंकि इससे विद्यार्थी की रोटी की समस्या हल करने का कोई साधन नहीं मिलता। इसीलिए शिक्षितों में आजकल इतनी हलचल है। जापान आदि देशों की शिक्षा में कुछ-न-कुछ उद्योग-धन्धे सिखाने का प्रबन्ध है जिससे शिक्षितों को जीविका की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। इधर कुछ दिनों से हमारे यहाँ भी इस प्रकार की शिक्षा का सूत्रपात हुआ है। संयुक्तप्रान्त मे इसे बेसिक शिक्षा कहा जाता है।

सारांश यह है कि शिक्षा सब प्रकार से मनुष्य को जीवन-यात्रा के लिए तैयार करती है। वह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियो को विकसित करके उसे सुख और शान्ति का मार्ग दिखलाती है। शिक्षा का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। वह जीवन को सदैव प्रभावित करती रहती है।

स्वदेश-प्रेम

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—स्वदेश की महानता

(२) स्वदेश-प्रेम की स्वाभाविकता

(३) स्वदेश-प्रेम द्वारा देश की उन्नति

(४) स्वदेश के प्रति हमारा कर्त्तव्य

(५) हमारे देश की कुछ स्वदेश प्रेमी आत्माएँ
(६) उपसंहार—हमें स्वदेश-प्रेमी होना चाहिए

जो भरा नहीं है भावो से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥

निस्सन्देह स्वदेश-प्रेम-विहीन मनुष्य का हृदय पत्थर के समान होता है। अहा! जननी और जन्म-भूमि कितनी महान् वस्तुएँ है। जिस माता के गर्भ से हम उत्पन्न हुए हैं और जिस देश में हम पालित-पोषित हुए हैं उनसे बढ़कर क्या स्वर्ग भी हो सकता है? कदापि नही। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के अनुसार जननी और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से कहीं श्रेष्ठ है। जिस देश की धूल मे लोट-लोटकर हम बड़े हुए हैं, जिस देश की जल-वायु तथा अन्न से हमारे शरीर का विकास हुआ है, क्या उस देश से हम कभी उऋण हो सकते हैं? कभी नही। प्रत्येक मनुष्य अपनी माता और मातृ-भूमि का आजन्म ऋणी रहता है।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जहाँ मनुष्य रहता है उस स्थान को प्यार करता है। मनुष्य ही क्यो पशु-पक्षियो और पेड़-पौधो तक मे यह बात देखी जाती है। गाय दिन भर जंगल में घूमकर सायङ्काल स्वयं अपने खूँटे पर आ खड़ी होती है। घोड़ा छूटकर अपनी घुड़साल मे पहुँचता है। पक्षी दिन भर कोसों का चक्कर काटकर शाम को अपने घोंसलों में आ जाते हैं। पेड़-पोधे भी अपनी जन्मभूमि में जैसे फूलते-फलते हैं वैसे अन्य स्थानों में नही। मातृभूमि का वियोग उन्हें अन्य स्थानो मे सदैव अखरता है। चमन के अंगूर और इलाहाबाद के अमरूद आगरे में वहाँ के से फल नहीं देते। अपना बुरे से बुरा देश भी वहाँ के निवासियों को प्यारा होता है। सहारा के रहनेवालों को स्विटजर-

लैण्ड मे रहना अच्छा नहीं लगेगा। परन्तु इस प्रेम की मात्रा किसी मे अधिक होती है और किसी में कम। कोई स्वदेश को इतना अधिक प्यार करता है कि उस पर अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकता है और कोई इतना कम कि थोड़ा-सा भय, स्वार्थ या आपत्ति उसके स्वदेश-प्रेम को नष्ट कर देती है। पश्चिमवालो मे पहले प्रकार का प्रेम देखा जाता है और भारतवासियों में अधिकांश दूसरे प्रकार का।

देश की उन्नति के लिए स्वदेश-प्रेम का आधिक्य नितान्त आवश्यक है। उसी देश का अभ्युत्थान हो सकता है जिसके निवासी देश पर तन, मन और धन न्यौछावर करने को तैयार रहते है, देश के अभ्युदय में अपना अभ्युदय समझते हैं, देश के सुख मे अपना सुख समझते हैं, देश की शान्ति में अपनी शान्ति गिनते हैं, देश के दुःख में अपना दुःख गिनते हैं, देश के नाम में अपना नाम समझते हैं और देश की समृद्धि में अपनी समृद्धि समझते है। वही देश अपना सिर ऊँचा कर सकता है जहाँ के स्त्री, पुरुष, बालक, युवक और वृद्ध सभी स्वदेश के मंगलार्थ अपने हितों का ही नहीं शरीर का भी बलिदान चढ़ाने को उद्यत रहते है। संसार के कई देश जो आज सुख और समृद्धि के शिखरों पर चढ़े हुए हैं स्वदेश-प्रेम की प्रचुरता के कारण इतने ऊँचे उठे हैं। इङ्गलैण्ड, जापान, जर्मनी आदि के इतिहास देश-प्रेम की कहानियों से भरे पड़े हैं।

भारतवर्ष की अवनति का कारण यहाँ के निवासियों में स्वदेश-प्रेम की भावना की कमी है। यहाँ देश का किसे ध्यान है? हम सबको अपनी-अपनी पड़ी है। हम सभी अपने स्वार्थ मे संलग्न हैं। देश के हित के लिए कोई थोड़ा-सा भी बलिदान नहीं कर सकता। हमारी ऐसी नीचता के लिए हमे धिक्कार है। क्या यह हमारे लिए लज्जा की बात नहीं कि हम अपने देश

के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते ? जिस देश के अन्न को खाकर हम पुष्ट होते हैं उसके उत्थान के लिए हमें सदैव प्रयत्नशील होना चाहिए और उसकी दशा सुधारने के लिए हमें स्वार्थ की तनिक भी परवाह न करनी चाहिए।

हर्ष का विषय है कि देश के सौभाग्य से यहाँ कुछ देश-प्रेमी आत्माओं का आविर्भाव हुआ है। यद्यपि हमारे देश मे प्राचीन काल मे भी समय-समय पर छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप और गुरु गोविंदसिंह सरीखी देश-प्रेमी आत्माओं ने जन्म लिया तो भी देश मे उनकी संख्या बहुत थोडी रही। इसलिए कुछ विशेष उन्नति नही हो सकी। आजकल महात्मा गांधी, महामना माल-वीय, पंडित जवाहरलाल आदि कई ऐसे देशभक्त महानुभाव हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व भारत-माता के चरणों मे अर्पण कर दिया है। इन भारत-माता के पुजारियों ने हमारे देश की दशा मे महान् परिवर्तन कर दिया है। अब देश मे चारों ओर जागृति होगई है। इनकी तपस्या और बलिदान के कारण देश के बच्चे-बच्चे के हृदय मे देश-प्रेम की लहरें उठने लगी हैं। धन्य है इन महान् आत्माओं को जिन्होंने भारतीय जनता मे देश-प्रेम का मन्त्र फूँक दिया है।

हमें चाहिये कि इनका आदर्श सामने रख कर हम भी देश-सेवा मे संलग्न हो जायँ। हमें चाहिए कि इनके कार्य मे हाथ बटावें। हमें चाहिए कि अपने हितों को, अपने स्वार्थों को, देश के हितों पर न्यौछावर करके तन, मन और धन से उसका हित-साधन करें। तभी हमारे देश का कल्याण होगा। तभी हमारा देश उन्नति के मार्ग में अग्रसर होगा। तभी हमारे देश के दुःख दूर होंगे। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम मृतकों के समान हैं। देश के लिए हम भार-स्वरूप हैं। किसी ने ठीक ही कहा है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का कुछ ध्यान है।
वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है॥

सत्संग

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—सत्संग का महत्त्व

(२) सत्संग के भेद

(३) सत्संग से लाभ—

(क) आत्म-संस्कार

(ख) सुख

(ग) सान्त्वना

(घ) ज्ञान-वृद्धि

(४) उपसंहार—सारांश

ईश्वर की इस अद्भुत सृष्टि में उत्थान के अनेक साधन हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उन साधनों की खोज करें और उनके अनुसार उत्थान-पथ के पथिक बनें। सत्संग उन साधनो में से एक है। इसका जितना गुण-गान किया जाय थोड़ा है। पारस पत्थर लोहे को सोना बना देता है। यह किसका प्रताप है? सत्संग का। रामचन्द्रजी के सत्संग से रीछ-बानर भी पवित्र हो गए थे, कोल भीलो ने पाप-कर्म छोड़ दिया था, राक्षस विभीषण सुकृतियो का शिरोमणि बन गया था।

सत्संग मनुष्यों का हो सकता है अथवा पुस्तको का। श्रेष्ठ मनुष्यो के साथ उठना-बैठना, चलना-फिरना, बातचीत करना आदि और उत्तम पुस्तकों का अध्ययन सत्संग कहलाता है। मनुष्य के सत्संग से जो लाभ होते हैं वे पुस्तको के सत्संग से भी सम्भव हैं। अन्तर इतना है कि पहले में सजीवता होने के कारण उसका प्रभाव शीघ्र पड़ता है।

सत्संग के अनेक लाभ हैं। आत्म-संस्कार के लिए सत्संग से सरल और श्रेष्ठ साधन दूसरा नही। कैसा ही दुष्ट क्यो न हो, कैसा ही पापी क्यो न हो, कैसा ही दुराचारी क्यो न हो, सच्चरित्र

व्यक्ति के सम्पर्क मे आकर सुधरे बिना नहीं रह सकता। सत्संग अपना ऐसा जादू डालता है कि मनुष्य की आत्मा आपसे आप शुद्ध होने लगती है। गांधीजी के सम्पर्क में आकर न जाने कितने लोग सुधर गये हैं, न जाने कितने लोगों ने अपना उद्धार किया है। व्यक्ति का ही नहीं, पुस्तक का भी सत्संग आत्म-संस्कार के लिए अच्छा साधन है। इस कार्य में महापुरुषों के जीवन चरित्र विशेष लाभ-प्रद होते हैं। उनके स्वाध्याय से मनुष्य सत्कार्यों मे प्रवृत्त होता है। अपनी जीवन-नौका को उन्ही की ओर मोड़ता है। गोस्वामीजी की रामायण मे राम का आदर्श जीवन-चरित्र पढ कर न जाने कितने भव-सागर में डूबने से बच गए, न जाने कितनों ने कुमार्ग से पैर हटा लिया, न जाने कितने पाप करने से विमुख हो गए और न जाने कितने सीधे स्वर्ग को चले गए।

जीवन में सुख पाने के लिए भी सत्संग कम आवश्यक नहीं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदैव समाज मे रहना चाहता है। जीवन-यात्रा के लिए यह कुछ साथी चुन लेता है जिनके साथ रहकर अपने दिन काटता है। यदि उसने गलती से बुरे साथी चुन लिए तो उसका जीवन दुःखी हो जायगा। यदि भाग्यवश उसे श्रेष्ठ संगी मिल गए तो उसका जीवन सरस और मीठा हो जायगा। उनसे उसे सर्वदा सहायता मिलेगी। उनकी सम्मति से उसका हित होगा। उसके दुःख को वे हलका करेंगे। निराशा के समय वे उसे उत्साहित करेंगे। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—

तुलसी संगति साधु की हरै और की व्याधि।
ओछी संगति क्रूर की आठो पहर उपाधि॥

उत्तम साथियों तथा मित्रों के संसर्ग से आमोद-प्रमोद भी मिलता है। उनके साथ खेल-कूद करके और गप-शप उड़ाकर मन बहलाता है।

सत्संग से सान्त्वना भी मिलती है। आप दुःख के समुद्र में निमग्न हैं। आपका जीवन निराशापूर्ण है। संसार आपके लिए अन्धकारमय हो गया है। ऐसे समय आपका साथी आपके आँसू पोंछेगा। आपको ढाँढ़स बँधायेगा। आप में आशा का संचार करेगा। जब आपका जी टूट गया है और शक्तियाँ शिथिल पड़ गई हैं तब ये पंक्तियाँ आपको कितनी शान्ति देती हैं—

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम नाम।
जाही विधि राखै राम, ताही विधि रहिए॥

ज्ञान-वृद्धि मे भी सत्संग बहुत सहायता देता है। यदि हम पुस्तकों के सत्संग में रहते हैं, यदि हमारे कमरे में एक ओर तुलसी, सूर, कबीर और जायसी विराजे हुए हैं और दूसरी ओर वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति तो हम इनसे चाहें जब वार्तालाप कर सकते हैं और इनके विचारों से अपने ज्ञान के भण्डार को बढ़ा सकते हैं। पुस्तकों का सत्संग हमारे लिए समय या स्थान की बाधा उपस्थित नहीं करता। आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व के विद्वान् के साथ हम उसी प्रकार विचार-विनिमय कर सकते हैं जिस प्रकार आजकल के किसी विद्वान् के साथ। इङ्गलैण्ड या अमरीका में बैठे हुए महानुभाव की संगति का उसी प्रकार लाभ उठा सकते हैं जिस प्रकार अपने पास बैठे हुए किसी व्यक्ति की संगति का। पुस्तकों के अतिरिक्त हम अपने मित्रों से भी बहुत कुछ सीखते हैं।

कहने का निष्कर्ष यह है कि सत्संग एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। इससे मनुष्य का बहुत हित होता है। गन्दे से गन्दा और कलुषित से कलुषित जीवन भी सत्संग के प्रासाद से पवित्र हो जाता है और उसमे सुख का संचार हो जाता है। वस्तुतः संसार की ही कोई वस्तु क्यों, स्वर्ग की भी कोई वस्तु सत्संग की

समानता नहीं कर सकती। गोस्वामीजी ने सत्संग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए ठीक ही कहा है—

सकल स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

मनुष्य-जीवन में परिश्रम का महत्व

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—परिश्रम की आवश्यकता
(२) जीवन में परिश्रम का महत्व—
 (क) परिश्रम से उन्नति
 (ख) परिश्रम से सुख और शान्ति
 (ग) परिश्रम से आत्म-संस्कार
 (घ) परिश्रम से यश
(३) कुछ परिश्रमी व्यक्तियों के उदाहरण
(४) उपसंहार—हमें परिश्रमी होना चाहिए

कोई भी कार्य बिना हाथ-पैर हिलाए नहीं हो सकता। आप चाहे कितने ही बड़े मनुष्य क्यो न हों आपको कुछ-न कुछ परिश्रम करना ही पड़ेगा। मान लीजिए आपके पास बहुत अधिक धन है। आपने अपने कार्यों को कराने के लिए अनेक नौकर रख छोड़े हैं जिससे आपको उठने बैठने का भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। पर आपको भोजन करने के लिए तो हाथ हिलाने और दाँत चलाने ही पड़ेंगे। विचार प्रकट करने के लिए भी मुँह को परिश्रम करना ही पड़ेगा। वास्तव में संसार मे छोटे-बड़े, धनी-निर्धन सभी को थोड़ा या बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कुछ लोग जो परिश्रम से जी चुराते है कह दिया करते हैं—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गये सब के दाता राम॥

ठीक है, अजगर को नौकरी नही करनी पड़ती और पत्ती को काम नहीं करना पड़ता। पर क्या ये जीव परिश्रम नहीं करते? क्या ये जीव अपने भोजन की खोज मे इधर-उधर नही फिरते? पत्तियों को देखिए, अपने भक्ष्य की तलाश में वे कहाँ-कहाँ नहीं फिरते? अजगर भी अधिक नहीं तो थोड़ा परिश्रम अपने भोजन तलाशने में करते ही होगे। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन मे परिश्रम अनिवार्य है। कोई भी बिना परिश्रम के अपना पेट नहीं भर सकता।

मानव-जीवन में परिश्रम का कितना महत्व है इसे सभी जानते है। सब प्रकार की उन्नति का मूल परिश्रम है। संसार में ऐसा कौनसा कार्य है जो इसके द्वारा न हो सके? कैसा ही कठिन कार्य क्यों न हो परिश्रम से वह सरल हो जाता है। कुएँ का कठोर पत्थर भी मिट्टी की मुलायम गगरी अथवा रस्सी से घिस जाता है। जो व्यक्ति परिश्रमी होता है वह शीघ्र उन्नति कर जाता है। जो विद्यार्थी मन लगाकर परिश्रम से विद्याध्ययन करता है वह परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होता है। उसे छात्र-वृत्ति मिलती है। वह पुरस्कार पाता है। उच्च से उच्च शिक्षा पाकर या तो वह किसी अच्छे सरकारी पद पर पहुँच जाता है या स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता हुआ देश और समाज का भला करता है। बोपदेव शास्त्री, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ, कालिदास इसी प्रकार के मनुष्य थे। जो आज बीस रुपये मासिक का नौकर है वह परिश्रम के बल से कभी सौ रुपये मासिक तक पहुँच सकता है। जो आज दस रुपये का सामान खरीद कर दुकान लगाता है। वह मेहनत करके उसी से कभी एक हजार रुपये की पूँजी कमा सकता है। बिना परिश्रम के कुछ भी उन्नति सम्भव नहीं।

उन्नति के साथ-साथ परिश्रम करने से मनुष्य को सुख भी

मिलता है। जब किसी कार्य में परिश्रम द्वारा सफलता मिलती है तब हृदय उल्लास से भर जाता है, और यदि सफलता नहीं भी मिलती तो इस बात का सन्तोष रहता है कि हमने अपना कर्तव्य किया और परिश्रम से मुख नहीं मोड़ा। इससे शान्ति मिलती है। परिश्रमी व्यक्ति का जीवन सुखी रहता है। उसे न तो रोटी की समस्या सताती है और न वस्त्रों की। जो अकर्मण्य होता है, जो महनत नहीं करता, उसे सदैव भोजन वस्त्र की चिन्ता रहती है और उसके चित्त में अशान्ति रहती है। वह न तो अपना भला कर सकता है और न समाज का। समाज के लिए वह भार-स्वरूप होता है।

जो मनुष्य सदा कठिन परिश्रम मे संलग्न रहता है उसकी आत्मा उस परिश्रम से उसी प्रकार पवित्र हो जाती है जिस प्रकार ईश्वर की आराधना से। 'Work is Worship' के अनुसार परिश्रम ईश्वर की उपासना है। परिश्रम रूपी अग्नि में मनुष्य की बुरी भावनाएँ जल जाती है और वह शुद्ध हो जाता है। जो मेहनत नहीं करता और अकर्मण्य बना रहता है वह स्वतः दुराचार की ओर प्रवृत्त होता है किसी ने ठीक ही कहा है— An empty mind is a devil's workshop अर्थात् शून्य मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला है।

उद्यमी मनुष्य की संसार में प्रशंसा होती है। मृत्यु के पश्चात् भी उसका यश बना रहता है। सब लोग उसका आदर करते हैं। माता-पिता अपने बालको को उसका अनुसरण करने की शिक्षा देते हैं। देश और जाति का वह मुख उज्ज्वल करता है। मनुष्य ही को नहीं परिश्रम से क्षुद्र से क्षुद्र जीव तक को यश मिलता है। चींटी को ही लीजिए। लोग उसकी मेहनत को सराहते हैं। और हाथ पर हाथ रक्खे हुए मनुष्य से कहते हैं—अरे आलसी, चींटी से परिश्रम करना सीख।

संसार में अनेक मेहनती मनुष्य हुए हैं जिनकी यश-चन्द्रिका आज तक विश्व में फैली हुई है। छत्रपति शिवाजी ने कैसे कठिन परिश्रम से हिन्दू-जाति की रक्षा की! नैपोलियन ने दिन-रात घोड़े की पीठ पर रहकर बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त कीं। रमजे मैकडॉनल्ड जो एक गरीब मजदूर था परिश्रम के बल से इङ्गलैण्ड का प्रधान मन्त्री बन गया। आजकल हमारे देश में महात्मा गांधी देश के उद्धार के लिए कैसा घोर परिश्रम कर रहे हैं! न उन्हें भूख की परवाह है और न नींद की। रात-रात भर जगकर उन्होंने देश की समस्याओं पर विचार किया है। पं० जवाहरलाल भी बड़े मेहनती हैं। पिछले चुनाव में उन्होंने एक-एक दिन में ५०-५० सभाओं में भाषण दिए और सैकड़ों मीलों की यात्रा की। महामना मालवीयजी ने परिश्रम करके काशी विश्व-विद्यालय जैसे विशाल विद्या-मन्दिर की स्थापना की है।

इन लोगों के उदाहरण से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। परिश्रमी बनकर हम अपना, अपनी जाति का, अपने देश का कल्याण कर सकते हैं। परिश्रमी होकर हम इस लोक और परलोक दोनों में सुख और शान्ति पा सकते हैं। मेहनत द्वारा दुर्लभ से दुर्लभ भी वस्तु सुलभ हो जाती है और आलस्य से सुलभ से सुलभ वस्तु भी दुर्लभ हो जाती है। परिश्रम जीवन है, आलस्य मरण। जहाँ परिश्रम है वहाँ सुख है, और जहाँ आलस्य है वहाँ दुःख। परिश्रम से ही हमारी शोभा है, परिश्रम मे ही हमारे जीवन का साफल्य है, इसमें सन्देह नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है—

श्रम ही सों सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहि।

युद्ध से हानि तथा लाभ

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—प्राणीमात्र में लड़ने की मनोवृत्ति; युद्ध के दो रूप

(२) युद्ध से हानियाँ—

(क) अगणित मनुष्यों के वध से समाज का अहित

(ख) अगणित स्त्रियों के विधवा होने से दुराचार का प्रसार

(ग) पिता की मृत्यु से अनेक बालकों का अनाथ हो जाना

(घ) पराजित जाति या देश की दुर्दशा

(ङ) विजयी और विजित दोनों की आर्थिक दशा का बिगड़ना

(३) युद्ध से लाभ—

(क) बेकारी का निराकरण

(ख) विजयी राष्ट्र को अधिकार-प्राप्ति

(४) उपसंहार—सारांश

मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों में लड़ने की प्रवृत्ति भी एक है। इसके चक्कर में पड़कर मनुष्य अपनी मनुष्यता खो बैठता है। हिंसा-दावानल में उसकी आत्मिक शक्ति जल जाती है। वह मनुष्य से राक्षस बन जाता है। स्वार्थ-संघर्ष के कारण मनुष्य लड़ाई की ओर अग्रसर होता है। लड़ाई का वृहत् रूप ही युद्ध कहलाता है। यह दो या दो से अधिक जातियो या देश में होता है, केवल दो-चार मनुष्यो में नही। युद्ध दो प्रकार के देखे गए है—(१) धर्म-संस्थापनात्मक (२) राज्य-विस्तारात्मक। एक में युद्ध का कारण अधर्म का निराकरण करके धर्म की संस्थापना रहता है और दूसरे में राज्य का विस्तार। राम-रावण युद्ध एवं महाभारत धर्म-संस्थापनात्मक युद्ध थे और चीन-जापान युद्ध एवं जर्मन अँगरेज-युद्ध राज्य-विस्तारात्मक। समाज की रक्षा के लिये पहले की नितान्त आवश्यकता होती है। यदि अधर्म को दूर न किया जाय तो समाज नष्ट हो जायगा। अतः

पहले की जड़ में परमार्थिक-भावना रहती है और दूसरे की जड़ में शुद्ध स्वार्थ।

युद्ध से अनेक हानियाँ है। युद्ध में अगणित निरीह मनुष्यों का बध होता है। बड़े-बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े वीर, बड़े-बड़े कलाकार, बड़े-बड़े बुद्धिमान, युद्ध मे काम आते है। इससे समाज को बड़ी हानि होती है। उसकी उन्नति रुक जाती है, उसकी सभ्यता पर कुठाराघात होता है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, वह दीन बन जाता है। महाभारत से हिन्दू-समाज की जो हानि हुई वह जड़ लेखनी से अंकित नहीं की जा सकती। इससे हिन्दू-सभ्यता चौपट हो गई। विद्या का सूर्य अस्त हो गया। वीरता बिदा हो गई। ज्ञान का आलोक अन्धकार में विलीन हो गया।

समाज को युद्ध से अन्य हानि यह होती है कि अगणित स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं जिससे व्यभिचार फैलता है। अनेक स्त्रियो के पति शत्रु से लोहा लेकर युद्ध-क्षेत्र मे सदैव के लिए सो जाते है। वे स्त्रियाँ या तो अपनी काम-वासना की शान्ति के लिए या जीविकोपार्जन के लिए अन्य पुरुषों के साथ व्यभिचार करती है। व्यभिचार का बाजार गर्म होने से नैतिक जीवन पर कुठाराघात होता है और समाज पतित हो जाता है। इससे वर्ण-संकर फैलता है और अधर्म की चारो ओर तूती बोलती है। व्यभिचार वह भयंकर विष है जिसकी एक बूँद से ही समाज का नाश हो जाता है।

युद्ध से व्यभिचार ही नहीं फैलता, न जाने कितने दुधमुहे बच्चे भी शैशवावस्था मे ही काल के गाल में चले जाते हैं। युद्ध मे अनेक पुरुषो के संहार से उनके आश्रित बालकों का पालन-पोषण करनेवाला कोई नही रहता। माता बच्चे की पालिका होती है, इसमें सन्देह नहीं। पर जिस रुपये से, जिस धन से, वह

बालक को पालती है, वह बालक को बड़ा करती है उसका उपार्जन कर्ता पिता ही होता है। पिता की मृत्यु से बालक का वास्तविक अन्नदाता संसार से उठ जाता है। यदि दुर्भाग्यवश पिता ने अपने जीवन-काल में एक कौड़ी भी संचित न की हो तो फिर बालक की दुर्दशा का क्या कहना! उस बेचारे को पेट भरने के लिए भोजन और शरीर ढकने के लिए वस्त्र मिलना दुर्लभ हो जाता है। न जाने कितने अनाथ बालक भूखे ही मर जाते हैं।

युद्ध से पराजित जाति या देश को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। शत्रु उसको कुचल डालता है। अनेक व्यक्ति बन्दीगृहों मे बन्द कर दिए जाते हैं या फाँसी के तख्ते पर लटका दिए जाते हैं। शत्रु उसके ऐतिहासिक स्मृति-चिन्हों को मिटा देता है। उसके धन धान्य को लूट लेता है। उसकी सभ्यता को पदाक्रान्त करता है। उसके धर्म का उन्मूलन करता है। उसकी भाषा का बहिष्कार करता है। उसके साहित्य को जला डालता है। तात्पर्य यह है कि उसे फिर सिर उठाने के योग्य नहीं छोड़ता। विजित देश या जाति मे दरिद्रता का नंगा नाच होता है। वहाँ बार-बार दुर्भिक्ष पड़ता है। जन समुदाय दाने-दाने को तरसता है। यह तो शारीरिक कष्ट होता है। मानसिक दुःख का क्या कहना! चारों ओर उदासी छा जाती है। जनता अपनी दुर्दशा पर आँसू बहाती है। उसके लिए जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है।

युद्ध से अन्य हानि यह होती है कि विजयी और विजित दोनों की ही आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है। बहुत-सा धन व्यय हो जाता है। कोई-कोई देश तो ऋण-ग्रस्त होकर युद्ध-व्यय चलाता है जिसका दुष्परिणाम उसे पीछे भुगतना पड़ता है। किसी-किसी देश का तो दिवाला निकल जाता है। वह सदैव के लिए दरिद्र बन जाता है। युद्ध के समय व्यापार को भी भारी धक्का लगता

है और शिल्पकारी का गला घुट जाता है। प्रायः सभी लोग युद्ध मे व्यस्त रहते हैं। कौन व्यापार और शिल्पकारी की सुध ले?

ये तो युद्ध की मोटी-मोटी हानियाँ हुईं। अब लाभों की ओर आइए। यद्यपि हानियों के घटाटोप मे लाभो की क्षीण किरण लुप्त-सी हो जाती है, तथापि उसका अस्तित्व एवं महत्व अवश्य है, अन्यथा युद्ध हो ही क्यो? युद्ध से बेकारी दूर होती है। मृत्यु द्वारा मनुष्यो की संख्या कम हो जाने के कारण उन्हें काम मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती। बेकारी तभी फैलती है जब जन-संख्या मे वृद्धि हो जाती है।

युद्ध से विजयी राष्ट्र को अधिकार मिलता है। यह अधिकार दो प्रकार का हो सकता है। धर्म-संस्थापनात्मक युद्ध से धर्म का अधिकार बढ़ता है और अधर्म का अन्त होता है। राज्य-विस्तारात्मक युद्ध से राज्य का विस्तार अधिक होता है, नए-नए भू-खण्डो पर अधिकार मिलता है और विजित राष्ट्र की सम्पत्ति, कोष आदि पर विजयी का प्रभुत्व हो जाता है।

अन्त में यही कहना है कि युद्ध से जितनी हानियाँ होती हैं उतने लाभ नहीं। लाभ किसी प्रकार हानियो की समता नहीं कर सकते। हाँ, धर्म-संस्थापनार्थ किए गए युद्ध के लाभो के समक्ष हानियाँ नही टिक सकतीं क्योंकि उससे धर्म का प्रचार होता है, समाज की रक्षा होती है। खेद का विषय है कि आजकल धर्म की स्थापना के लिए तो युद्ध होते नहीं, बल्कि राज्य-विस्तार के लिए लोगों के सिर उड़ाए जाते हैं। मनुष्यता का राग अलापने वाली मनुष्य-जाति जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ो पर रक्त बहाती हुई देखी जाती है। क्या सभ्यता यही पाठ पढ़ाती है कि स्वार्थ के लिए भाई-भाई का रुधिर पीए? क्या शिक्षा यही सिखाती है कि बलवान राष्ट्र निर्बल राष्ट्र को कुचल दे, उसको संसार से मिटा दे? क्या ऐसा राष्ट्र किसी हिंसक पशु से कम है?

कृषि-कर्म का महत्व

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—जीवधारियों की सबसे बड़ी आवश्यकता; इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्यों के कार्य

(२) कृषि-कर्म का महत्व—

(क) कृषि से पशु, पक्षी और मनुष्य-जाति का भरण-पोषण

(ख) कृषि से शरीर की पुष्टता

(ग) कृषि से मनोरंजन

(घ) कृषि-कर्म की स्वतन्त्रता

(ङ) कृषि-कर्म द्वारा जीवन की अधिकाश आवश्यकताओं की पूर्ति

(३) उपसहार—साराश

जीवधारियों की सबसे बड़ी आवश्यकता पेट-सम्बन्धी है। थलचर जलचर और नभचर सभी को पेट भरने के लिए कुछ-न-कुछ खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। यदि ढोरों का घास से पेट भरता है तो हिंस्र पशुओ का माँस से। यदि कुछ पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं तो कुछ अनाज के दाने। यदि जल के रहनेवाले जीव केवल माँस का भक्षण करते है तो मनुष्य अनाज और माँस दोनों का। मनुष्य अपने पेट भरने के लिए कई प्रकार के कार्य करते है। कोई मजदूरी करता है, कोई व्यापार करता है, कोई हस्त कला से वस्तुओ का निर्माण करता है और अपने को कृषि-कार्य में लगाता है। इन सब कार्यों मे खेती का कार्य सबसे श्रेष्ठ है। उसी का सबसे अधिक महत्व है।

सार्वजनिक हित की दृष्टि से संसार का कोई भी कार्य खेती की समानता नहीं कर सकता। इससे केवल मनुष्यो का ही पेट नही भरता, यह केवल मनुष्यों के भरण-पोषण के लिए ही अनाज नहीं देती, बल्कि पशु और पक्षी भी इससे पलते है।

खेती सचमुच मनुष्य मात्र की अन्नदाता और पशु-पक्षियों की पालिका है। गेहूँ, चना, जो, बाजरा, चावल आदि सब अनाज जिन्हें मनुष्य खाते हैं खेती द्वारा उत्पन्न होते हैं। अनाज के पौधों से मवेशी के लिए चारा बनता है। खड़ी हुई खेती में से पक्षी दाने चुग-चुगकर अपनी भूख मिटाते हैं। सचमुच कृषि कर्म से बड़ा परोपकार होता है। यदि खेती न की जाय तो मनुष्य भूखे मर जायँ। कैसे अनाज मिले और कैसे उनका पेट-पालन हो ?

संसार में जितने व्यवसाय प्रचलित हैं उनमें स्वास्थ्य की दृष्टि से खेती का सर्वोच्च स्थान है। खेती करनेवाला किसान जितना हृष्ट-पुष्ट देखा जाता है उतना व्यापार करनेवाला अथवा मजदूरी करनेवाला व्यक्ति नहीं। किसान का शरीर जितना पुष्ट तथा बलिष्ट होता है उतना कुर्सी पर बैठकर काम करनेवाले क्लर्क अथवा दस्तकार का नहीं। क्यों ? कारण यह है कि कृषक को कठिन परिश्रम करना पड़ता है और साँस लेने को खुले मैदान की स्वच्छ वायु मिलती है। किसान से अधिक कड़ा परिश्रम कौन करता होगा ? पौ फटने के समय से लेकर सूर्यास्त के समय तक वह किसी न किसी काम में जुटा ही रहता है। उसे भूख की, प्यास की, धूप की, शीत की, लू की, मेघों की झड़ियों की, कुछ भी परवाह नहीं रहती। व्यापारी को कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता। मजदूर को मेहनत तो कड़ी करनी पड़ती है पर उसे कारखाने की गन्दी हवा में रहना पड़ता है। क्लर्क को शारीरिक परिश्रम नाम मात्र को भी नहीं करना पड़ता और हवा भी अच्छी नहीं मिलती। दस्तकार भी किसान की बराबर कड़ी मेहनत नहीं करता।

कृषि किसान का मनोरंजन करती है। किसान को लहलहाते हुए खेत अपूर्व आनन्द देते हैं। उसे हरी भरी वनस्थली में कभी कोयल की कूक सुनने को मिलती है तो कभी चातक की 'पिउ-

पिउ'। उसे कभी वसन्त की मनोहर शोभा देखने को मिलती है तो कभी वर्षा ऋतु की छटा। उसे कभी सरसो के पीले पुष्प देखकर आनन्द मिलता है तो कभी अलसी के नीले फूल देखकर। वह कभी सूर्योदय की स्वर्णश्री देखकर हर्ष से भर जाता है तो कभी सूर्यास्त की लालिमा देखकर। पक्षियों का चहचहाना और वृक्षो का झूमना उसका मनोविनोद करते हैं। उसे प्रकृति की मनोरम और आनन्ददायक गोद में रहने का सौभाग्य मिलता है। क्या ऐसा आनन्द किसी अन्य व्यवसायी को सम्भव है? कदापि नहीं।

कृषि का व्यवसाय एक स्वतन्त्र व्यवसाय है। इसमे किसी के पराधीन होकर नहीं रहना पड़ता। इच्छा हो जब जैसा रुचे वैसा काम कीजिए। न कोई समय का बन्धन है और न कोई काम का। न कोई आपके काम की देख-रेख रखने वाला है और न कोई आपको रोक-टोक करनेवाला। पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। कौन पूछता है, गेहूँ बोइये या जौ? कौन कहता है रबी और खरीफ दोनो फसल उगाइये अथवा केवल एक? नौकरी का काम पूर्णतया परतन्त्र है। जैसा मालिक कहता है वैसा नौकर को करना पड़ता है। जिस समय की ड्यूटी होती है उसी समय उपस्थित होना पड़ता है। यह कहना अनुचित न होगा कि नौकर का शरीर मालिक के हाथ बिक जाता है।

कृषि-कर्म द्वारा जीवन की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। किसान खेती से अनाज उत्पन्न करके भोजन की समस्या तो हल करता ही है कपड़ो की आवश्यकता की भी पूर्ति करता है। वह कपास की फसल उगाता है। उसकी स्त्री रहँटे द्वारा कपास से रुई निकालती है और चरखे से रुई को सूत मे परवर्तित कर देती है। गाँव का जुलाहा सूत का कपड़ा बुन देता है। गाजर, मूली, सकरकन्द, मूँगफली आदि मूल-फलो का

किसान को अभाव नहीं रहता। दाल-शाकों की उसके लिए कोई कमी नही। ये वस्तुएँ उसके खेतो में पैदा होकर केवल उसी की जरूरतो को पूरा नहीं करतीं वरन् अगणित मनुष्यो के खाने के काम आती हैं। वह तिली और सरसों उगाकर तेली से उनका तेल बनवा लेता है। घी-दूध की आवश्यकता की पूर्ति उसकी गाय-भैंस करती हैं जिनका पालन खेती के चारे से होता है। धनिया, जीरा, मिर्च, सौंफ आदि मसाले भी खेती से मिल जाते हैं। तात्पर्य यह कि खेती से बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कृषि-कर्म का अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक महत्व है। इससे संसार का भरण-पोषण होता है, शरीर पुष्ट बनता है, मन को आनन्द मिलता है, मनुष्य स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है और जीवन की अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति होती है। निस्सन्देह खेती का व्यवसाय सर्वोत्तम व्यवसाय है। किसी ने ठीक ही कहा है—

उत्तम खेती मध्यम बनिज, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।

मित्र के कर्तव्य

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—मित्र की आवश्यकता

(२) मित्र के कर्तव्य—

(क) दुःख में मित्र की सहायता करना

(ख) मित्र को सन्मार्ग पर चलाना

(ग) मित्र को दुःख के समय सान्त्वना देना और उसके साथ सहानुभूति दिखाना

(घ) मित्र का हित करना

(३) सुदामा और कृष्णजी की मित्रता का उदाहरण
(४) उपसंहार—आजकल के मित्र

मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह समाज से कभी पृथक नहीं रहना चाहता। जीवन में उसे कुछ-न-कुछ साथियों की, कुछ-न कुछ मित्रों की, आवश्यकता होती है। मनुष्य ही को क्यों पशु और पक्षी को भी साथियों की आवश्यकता होती है। पशु प्रायः टोलियों में रहते हैं। पक्षी भी झुण्ड बनाकर रहते हैं। वास्तव में मित्रों से जीवन में मिठास आ जाता है। जीवन भार-स्वरूप नहीं प्रतीत होता। मित्रों के संग गप-शप लड़ाकर मन बहलाता है। मित्रों के साथ घूम-फिर कर चित्त प्रसन्न होता है।

पर मन बहलाना या तबियत प्रसन्न करना ही मित्र का कार्य नहीं। ये तो बहुत साधारण कार्य हैं। सिनेमा से ही इनका सम्पादन हो सकता है। मित्र के कर्तव्य बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। जब हम दुःख में डूबे हुए हों, जब हमारे लिये संसार में अन्धकार ही अंधकार छाया हुआ हो, जब हमारे लिए संसार सूना हो गया हो तब मित्र का कर्तव्य है कि वह हमारी सहायता करे। जब दुःख से हमारे पैर लड़खड़ा रहे हों तब वह हमें गिरने से बचाए। गोस्वामीजी ने कहा भी है—

धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपति काल परखिए चारी॥

निस्सन्देह मित्र से दुःख में बड़ी सहायता मिल सकती है। उसे चाहिए कि वह तन, मन और धन से सहायता करे। यदि अपने मित्र के दुःख को दूर करने में उसे प्राण तक भी देने पड़ें तो भी वह सहर्ष दे दे। बतलाइए इससे अधिक सहायता और क्या हो सकती है? सच्चे मित्र का यह कर्तव्य कितना ऊँचा है।

मित्र का यह भी कर्तव्य है कि वह हमें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाए। यदि हम चोरी करते हैं या जुआ खेलते हैं

न्या व्यभिचार करते हैं या लोगों को कष्ट पहुँचाते हैं तो मित्र को चाहिए कि वह उपदेश द्वारा हमें इन कुकर्मों से विमुख करे और सन्मार्ग पर चलने के लिये उत्साहित करे। इस दृष्टि से वह हमारा उद्धारक हो सकेगा। यदि हमारा मित्र हमें सुमार्ग पर न लाए बल्कि कुकर्मों के अन्धकूप में ढकेल दे तो उससे हमारा क्या लाभ होगा? दोनों मित्रों को नरक का साथी बनना पड़ेगा। किसी विद्वान् ने कहा है कि विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा होती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिये कि खजाना मिल गया। सच्चा मित्र हमें उत्तम संकल्पों में दृढ़ करेगा, दोषो और त्रुटियों से बचाएगा और पवित्र तथा मर्यादा-पूर्वक जीवन व्यतीत करने मे हर तरह की सहायता देगा। वह हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक होगा। संसार में अनेक मनुष्यों को मित्रों ने कुमार्ग के गड्ढे से निकाल कर साधुता और श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचाया है।

मित्र को चाहिए कि वह दुःख के समय हमें सान्त्वना दे और हमारे साथ सहानुभूति दिखाए। हमारे दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख और हमारे हानि-लाभ को अपना हानि-लाभ समझे। जब हम दुःखी हो तब वह भी दुःख का अनुभव करे। जब हम सुखी हों तब वह भी फूला न समाए। मित्र का कर्तव्य है कि जब हम रो रहे हों तब हमारे आँसू पोछे। जब हमारा जी टूट रहा हो तब हमें ढाँढस बँधाए। सदैव आश्वासन द्वारा हमारे दुःखों को हल्का करता रहे। जब हम हताश हों तब हमें उत्साहित करे। सच्चा मित्र उत्तम वैद्य अथवा माता के सदृश होता है।

मित्र का यह भी कर्तव्य है कि वह सर्वदा हमारा हित करता रहे। हमारी कर्तव्य-बुद्धि को उत्तेजित करके हमें कार्यों में संलग्न रक्खे और कभी हाथ पर हाथ रखकर न बैठने दे। हमारे लिए

व्यवसाय ढूँढे। हमारी आय की वृद्धि के साधन जुटाता रहे। कर्म-क्षेत्र में आप भी श्रेष्ठ बने और हमको भी श्रेष्ठ बनाए। जीवन के संग्राम मे स्वयं वीरता से लड़े और हमे भी लड़ने के योग्य बनाए। हमारी उन्नति का मार्ग परिष्कृत करे। हमे ऐसे कार्यों मे लगाए जिनसे इस लोक मे सुख और परलोक मे शान्ति मिले। हमें समय-समय पर सुन्दर मंत्रणा देता रहे और हमारे सुख तथा सौभाग्य की निरन्तर चिन्ता रक्खे।

भारतवर्ष के इतिहास मे अनेक सच्चे मित्रों के उदाहरण मिलते है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता की कथा किसे न ज्ञात होगी? सहस्रो वर्ष व्यतीत होने पर भी उस आदर्श मित्रता के आज तक गुण गाए जाते हैं। कहाँ त्रिलोकीनाथ कृष्ण और कहाँ दाने-दाने को तरसनेवाला सुदामा! आकाश और पाताल का अन्तर था। पर कृष्ण जी ने अपनी महानता का गर्व न करके किस प्रेम से विपत्ति-ग्रस्त सुदामा की दशा से करुणार्द्र होकर उसकी सहायता की, इसे जानकर किसे आनन्द न होगा? किसके मुख से कृष्णजी के लिये 'धन्य धन्य' शब्द न निकलेंगे? कौन उस मित्रता से उपदेश न ग्रहण करेगा? कौन यह न कहेगा कि मित्रता हो तो ऐसी हो? देखिए, मित्र के दुःख से कृष्णजी को कितना शोक हुआ—

ऐसे बिहाल बिवायन सो भये कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय! महादुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहि नैनन के जल सो पग धोये॥

क्या आजकल कृष्ण और सुदामा सरीखे मित्र ढूँढ़ने से मिल सकते है? आजकल तो स्वार्थी मित्र होते है जो सुख के समय हमसे लाभ उठाते हैं और दुःख के समय हमको छोड़कर

अलग होजाते है। जब तक हमारे पास पैसा रहता है तब तक मित्र हमारे साथ लगे रहते हैं, और जब पैसा नही रहता तब वे हमसे मुख मे भी नहीं बोलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

हरो चरहि, तापहिं बरत, फरे पसारहि हाथ
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ।

व्यवसाय का चुनाव

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—व्यवसाय के चुनाव की आवश्यकता
(२) आजकल व्यवसाय-सम्बन्धी कठिनाई
(३) प्राचीन काल में व्यवसाय-सम्बन्धी कठिनाई का अभाव
(४) उचित व्यवसाय के चुनाव से लाभ
(५) व्यवसाय के चुनने में ध्यान रखने योग्य बातें—
  (क) रुचि
  (ख) शारीरिक और मानसिक योग्यता
  (ग) नैतिक उत्थान
  (घ) आर्थिक उन्नति की संभावना
(६) उपसहार—आजकल भारत में शिक्षा से पूर्व व्यवसाय न चुनने के दुष्परिणाम

रोटी की समस्या को हल करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को कुछ-न-कुछ व्यवसाय चुनना पड़ता है। यदि कोई मनुष्य कुछ काम न करे तो भला उसका पेट कैसे भरे? उसे कौन रोटी दे? इसलिए जीवन में व्यवसाय का चुनाव नितान्त आवश्यक है। कोई भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

आजकल व्यवसाय के चुनाव का प्रश्न दिन प्रति-दिन जटिल होता जा रहा है। मनुष्यो को जीविका उपार्जन करने के लिए

काम-काज मिलना कठिन हो रहा है। चारों ओर बेकारी का ताण्डव नृत्य हो रहा है। इसका कारण संसार में मशीनों का प्रचार है। मशीनों के बाहुल्य से न जाने कितने मनुष्यों की रोटियाँ छिन गई हैं और न जाने कितने उद्योग-धन्धों की तलाश मे मारे-मारे फिरते हैं, आजकल हमारे देश मे अनेक व्यक्ति हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं। वे अपने लिए इधर-उधर व्यवसाय ढूँढ़ते है पर उन्हे कोई व्यवसाय नहीं मिलता। ऐसी दशा मे वे बेचारे कहाँ जायँ और क्या करें?

प्राचीन समय मे ऐसी दशा न थी। किसी मनुष्य को कोई व्यवसाय सम्बन्धी कठिनाई का सामना नही करना पड़ता था। सब अपनी-अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार अपने लिए व्यवसाय चुन लिया करते थे। कोई खेती करता था तो कोई व्यापार। कोई दस्तकारी का काम करता था, तो कोई मजदूरी का काम करके अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। मशीनों का प्रचार न होने के कारण सबको कुछ-न-कुछ काम करने को मिल जाता था। सभी थोड़ा-थोडा काम करके अपनी उदर-पूर्ति करते थे। आजकल अकेली एक मशीन ही अनेक मनुष्यो के बराबर काम कर डालती है और इस प्रकार बहुत-सो को बेकार कर देती है।

आजकल व्यवसायों की तो कमी देखी ही जाती है, पर यह भी देखा जाता है कि अधिकांश लोग उचित व्यवसाय नहीं चुनते। कुछ लोगों को परिस्थिति-वश ऐसे व्यवसाय चुनने पड़ते हैं जो उनके लिए किसी प्रकार उपयुक्त नहीं होते। कुछ लोग बिना सोचे विचारे अनुपयुक्त व्यवसायों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि दोनों ही दशाओं मे जीवन दुःखमय हो जाता है। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अनुरूप अपने लिए व्यवसाय निश्चित करे तो इससे उसे बहुत लाभ हो। उसका जीवन सुखी

और शान्तिमय हो जाय। वह बहुत कुछ उन्नति कर सके। संसार में उसका नाम और आदर हो। रवीन्द्रनाथ टैगोर को देखिये। उन्होंने कवि बनकर देश-विदेश मे कितना यश और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आज वे संसार के श्रेष्ठ कवियों में अपना स्थान रखते है। उनका जीवन भी शान्तिमय है। सी० वी० रमन ने विज्ञापन के अध्यापक होकर कितनी ख्याति पाई है। उन्हें अपने इस व्यवसाय में बहुत आनन्द मिलता है। टैगोर और रमन ने आर्थिक दृष्टि से भी अपने उपयुक्त व्यवसायो के कारण पर्याप्त सफलता पाई है। दोनों ही को विश्व-विख्यात बहुमूल्य नोबुल पुरस्कार मिल चुके है। के० सी० डे० और सहगल ने संगीत को अपना व्यवसाय चुनकर कितना नाम पाया है। किसी भी फिल्म मे यदि इनमे से कोई गायक रहता है तो उसे लोग अगणित संख्या मे देखते हैं।

अब हमे यह देखना है कि कौन-कौन ऐसी बातें हैं जिनका व्यवसाय चुनने में ध्यान रखना आवश्यक है। सबसे पहले रुचि का ध्यान रखना चाहिए। जिस कार्य की ओर आपकी प्रवृत्ति हो उसे अवश्य चुनिये, चाहे ऐसा करने में आपको कितनी ही कठिनाइयो का सामना क्यो न करना पड़े। वास्तव मे जिस कार्य मे रुचि होती है उसके करने से चित्त को शान्ति मिलती है और मनुष्य उन्नति कर सकता है। यदि किसी की प्रवृत्ति अध्यापन की ओर है तो उसे चाहिए कि वह अध्यापक बने। यदि किसी का मन चित्रकारी में लगता है तो उसे चाहिए कि वह इसे अपने जीवन का व्यवसाय निश्चित करे।

रुचि के अतिरिक्त व्यवसाय के चुनाव में शारीरिक और मानसिक योग्यता का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि किसी मे शारीरिक बल की कमी है तो उसे ऐसा काम कभी नहीं चुनना चाहिए जिसके करने में अधिक बल की आवश्यकता पड़े। जैसे—

वह बोझा ढोने का काम कभी न करे। यही बात मानसिक योग्यता के बारे मे कही जा सकती है। यदि किसी की बुद्धि कुशाग्र नही, यदि किसी का मस्तिष्क अधिक अच्छा नहीं, तो उसे ऐसा काम कभी नही चुनना चाहिए जिसके करने मे तीव्र बुद्धि की जरूरत पड़े। जैसे—वह अध्यापन कार्य या वकालत न करे।

इस बात का भी ध्यान रहे कि जिस व्यवसाय को किया जाय उससे नैतिक उत्थान हो। चाहे कोई व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से कितना ही अच्छा क्यों न हो पर यदि उससे मनुष्य का नैतिक पतन हो, यदि उससे चरित्र-भ्रष्टता की आशंका हो, तो उसे दूर ही से नमस्कार करना अच्छा है। सदाचार जीवन का स्वर्ण है। सदाचार जीवन का सार है। सर्वस्व देकर भी हमे अपने आचरण को बनाना चाहिए। सारे विश्व की सम्पत्ति लेकर भी हमे अपना आचरण नहीं गिराना चाहिए। अतः चोरी करना, लूटना, जुआ खेलना, वेश्या-कर्म आदि दुष्कर्म भूलकर भी नहीं करने चाहिएँ।

जहाँ तक हो ऐसा व्यवसाय चुना जाय जिसमे आगे चलकर आर्थिक उन्नति की सम्भावना हो। यदि आप किसी ऐसे व्यवसाय को चुनते हैं जिससे आज आपको बहुत थोड़ी आमदनी होती है पर कुछ समय पश्चात् उससे बहुत आमदनी होने की सम्भावना है तो आप ठीक करते है। व्यवसाय के आरम्भ मे कम आय होना कोई चिन्ता की बात नही।

अन्त में यही कहना है कि माता-पिता को चाहिए कि बाल्यावस्था में बालक की प्रवृत्ति का अनुमान करके उसे उसी प्रकार के व्यवसाय के लिए शिक्षित करें। हमारे देश में यह बात नहीं देखी जाती। यहाँ कोई मनुष्य अपने बालक को पढ़ाने के पूर्व उसकी व्यवसाय सम्बन्धी मनोवृत्ति का अन्दाज लगाकर उसे

उसी प्रकार की शिक्षा नहीं देता। सभी बिना सोचे-समझे पढ़ाए चले जाते हैं। सभी का उद्देश्य अपने लड़कों को नौकरी कराना होता है। ऐसा करने से बड़े अनर्थ होते हैं। बालक की यदि पढ़ने मे रुचि नहीं होती तो भी उसको पढ़ना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि वह बेचारा बार-बार परीक्षा में फेल होता है और चारो ओर उसकी निन्दा होती है। उसको अपना जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है। कभी-कभी तो वह निराश होकर अपने जीवन का अन्त तक कर देता है। यह कैसे मान लिया जाय कि सभी बालको की पढ़ने में रुचि होती है? क्या अशिक्षित रहकर कोई व्यवसाय नही किया जा सकता? क्या आजकल की शिक्षा व्यवसाय-सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान कराती है? यह देखा गया है कि कई बालक जो अनेक प्रयत्न करने पर भी न पढ़ सके पीछे अच्छे चित्रकार, पत्रकार, संगीतज्ञ, कवि आदि हुए। क्या पता है कोई बालक जो बार-बार परीक्षाओं मे फेल होता है दस्तकारी या व्यापारी बनने की अच्छी क्षमता रखता हो? अतः स्पष्ट है कि यदि बचपन में बालक की रुचि देख कर उसी के अनुकूल उसे कार्य मे लगाया जाय तो उसे जीवन में पूर्ण सफलता मिले। आजकल की भाँति वह अपने जीवन में असफल न रहे। आजकल उच्च से उच्च शिक्षा पाकर भी मनुष्य उचित व्यवसाय नहीं पा सकता और बेकारी की समस्या का सामना करता है।

विद्या के प्रचार से देश की उन्नति

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—मानव-जीवन में विद्या की आवश्यकता

(२) विद्या के प्रचार से देश की उन्नति—

(क) मानसिक विकास

(ख) जागृति
(ग) ज्ञान-वृद्धि
(घ) कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों का अन्त
(ङ) सभ्यता का विकास

(३) विद्या-प्रचार से उन्नति करनेवाले कुछ देशों के उदाहरण
(४) उपसंहार—भारतवर्ष में विद्या-प्रचार की कमी

मानव-जीवन मे विद्या की बडी आवश्यकता होती है। इससे मनुष्य के हृदय मे प्रकाश हो जाता है, उसके भीतरी नेत्र खुल जाते है। ज्ञान के भण्डार को खोलने के लिए विद्या कुञ्जी है। विद्या से मनुष्य शोभा पाता है। विद्वान मनुष्य देश-विदेश मे झोंपड़ी से लेकर राजा के दरबार तक आदर का पात्र होता है। यह एक अद्भुत धन है जो व्यय करने से बढ़ता है और व्यय न करने से घटता है। इसे न तो चोर चुरा सकता है, न भाई बाँट सकता है और न राजा छीन सकता है। इससे मनुष्य की यश-चन्द्रिका विश्व में छा जाती है और उसे मृत्यु रूपी राहु नहीं मिटा सकता। विद्या बिना मनुष्य पुच्छ और विषाण-रहित पशु है।

प्रत्येक देश ने विद्या के महत्व को स्वीकार किया है। विद्या के प्रचार से देश की उन्नति होती है। जिस किसी देश में विद्या का प्रचार है वहाँ के निवासियों के मस्तिष्क भलीभाँति विकसित हैं उनमें विचार-शक्ति खूब पाई जाती है। कड़ी से कड़ी समस्या तथा जटिल से जटिल प्रश्न को वे हल कर सकते है और भयानक से भयानक परिस्थिति को सँभाल सकते हैं पर्वतों और झाड़-झंखाड़ो में वे अपना मार्ग निकाल सकते हैं। हजारो मील दूर के समाचार घर बैठे सुन सकते हैं। सहस्रों फीट ऊँचा उड सकते हैं। प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता का पता लगा सकते है। समय दूरी और प्रकृति पर अधिकार जमा सकते है। अधिक

क्या कहें, विकसित मस्तिष्क सब प्रकार से देश की उन्नति कर सकते हैं।

विद्या के प्रचार से देश में जागृति हो जाती है जिस प्रकार रात्रि भर सोए हुए जीवधारियो को सूर्य का प्रकाश जगा देता है उसी प्रकार मनुष्यो को विद्या की ज्योति जगा देती है। देश मे चारो ओर चैतन्यता देखी जाती है। अज्ञान-रूपी अन्धकार जो मनुष्यो को अपनी स्थिति नही देखने देता विद्या की ज्योति से भाग जाता है और वे अपनी स्थिति को, अपनी दशा को, समझने लगते है। वे जानने लगते है कि उनमें क्या-क्या कमी है। कहने की आवश्यकता नही कि जागृति उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।

विद्या-प्रचार से देश के निवासियो की ज्ञान-वृद्धि होती है। निरक्षर होने के कारण ज्ञान का भण्डार मनुष्य के लिए बन्द रहता है। वह कूप-मण्डूक बना रहता है। आदि काल से लेकर अब तक ज्ञान का जितना प्रसार हुआ है उसका उपयोग वह नहीं कर सकता। उसके लिए गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का भक्ति की दृष्टि से भले ही कुछ मूल्य हो, पर ज्ञान की दृष्टि से कुछ भी मूल्य नहीं। वह कालिदास, भवभूति, न्यूटन, प्लैटो, अरस्तू, शेक्सपियर, टाल्सटाय, लेनिन आदि महानुभावो के ज्ञान से क्या लाभ उठा सकता है? देश अथवा विदेश की दशा का उसे कुछ पता नही रहता। वास्तव मे वह वैसा ही मूर्ख रहता है जैसा कोई पशु। फिर बतलाइए उससे देश की उन्नति कैसे हो? फिर बतलाइए वह कैसे अपने देश की दशा का सुधार करे?

विद्या के प्रचार से देश मे प्रचलित कुरीतियो और अन्ध-विश्वासों का अन्त हो जाता है। उस देश की कभी उन्नति नहीं हो सकती जिसको कुरीतियो, अन्ध-विश्वासो और ढकोसलों ने अपना घर बना लिया है। भारतवर्ष को ही देखिए। यहाँ

बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, अछूतों के प्रति दुर्व्यवहार, स्त्रियों के प्रति अत्याचार आदि अनेक ऐसी बुरी बातें हैं जिनसे देश अधोगति के अन्धकूप मे पड़ा हुआ है। धार्मिक अन्ध-विश्वासों की भी यहाँ कमी नही। जैसे—यहाँ के निवासी चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण को एक राक्षस द्वारा चन्द्रमा और सूर्य का ग्रसना बतलाते है। यह अन्ध विश्वास नहीं तो क्या है ? यद्यपि विज्ञान ने यह भली भाँति प्रमाणित कर दिया है कि सूर्य और चन्द्रमा की विशेष स्थितियों मे पृथ्वी की उन पर छाया पड़ती है जो उनके प्रकाश को हर लेती है तो भी हमारे देश के अधिकांश निवासी उसी पुराने विश्वास पर आरूढ़ हैं यह सब विद्या प्रचार के अभाव का प्रसाद है।

विद्या के प्रचार से देश की सभ्यता भी विकसित होती है। जब विद्या से मानसिक विकास होगा, जब विद्या से जागृति होगी, जब विद्या से ज्ञान की वृद्धि होगी, जब विद्या से कुरीतियो और अन्ध-विश्वासो का अन्त हो जायगा तब क्या कारण है कि सभ्यता की उन्नति न हो ? जिन जातियो मे विद्या का प्रचार नही है वे आज तक जंगलों में या तो पशुओ की भाँति नग्ना-वस्था में रहती है या पेड़ो की छालों और पत्तियो से अपने शरीर को ढककर रहती हैं। वे पशुओ की भाँति खाती-पीती और सन्तान उत्पन्न करती हैं। न उनमें शिष्टता है और न अन्य कोई मनुष्योचित गुण।

संसार में अनेक ऐसे देश हैं जिन्होने विद्या के प्रचार से ही उन्नति की है। इङ्गलैण्ड, अमरीका, जापान आदि देश आज इसी के प्रताप से उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए है। जापान की तो विद्या के प्रचार ने २५-३० वर्ष में ही काया पलट दी है। उसने इतने थोड़े समय में जो आशातीत उन्नति की है उसे देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

खेद का विषय है कि हमारे देश में विद्या का प्रचार नहीं है। यहाँ पढ़े-लिखे मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। देश का अधिकांश भाग मूर्ख है। पुरुष तो थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे मिल भी जाते हैं पर स्त्रियाँ नहीं मिलती। इस देश में ग्राम तो पूर्णतया अविद्या के केन्द्र बने हुए है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि हमारा देश अवनति के गड्ढे में पड़ा हुआ है। कुरीतियो, ढोगो, आडम्बरों अज्ञानता, भय आदि ने यहाँ अपना अड्डा जमा लिया है। हे परमात्मा! क्या कभी वह दिन भी आयगा जब हमारे देश में विद्या की निर्मल ज्योति फैलेगी और वह पुनः उन्नति के शिखर पर आसीन होगा?

जीवन में अहिंसा का महत्व

रूप-रेखा—

(१) प्रस्तावना—संसार में हिंसा का अखंड साम्राज्य

(२) जीवन में अहिंसा का महत्व—

(क) 'अहिंसा परमो धर्मः'

(ख) अहिंसा से आत्मिक उत्थान

(ग) अहिंसा से मानव-समाज का कल्याण

(घ) अहिंसा से जीवन में सुख और शान्ति

(३) कुछ प्रसिद्ध अहिंसावादी व्यक्तियों के उदाहरण

(४) उपसंहार—सारांश

आजकल संसार में हिंसा का अखंड साम्राज्य है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को, एक जाति दूसरी जाति को और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खाने मे संलग्न है। इटलीवालों ने अबीसीनियाँ में कितना रक्तपात किया! जापानियों ने कितने चीनियों की जानें ली हैं! जर्मनो ने कैसी बर्बरता से फ्रान्स, हालैंड आदि देशवासियो को तलवार के घाट उतारा है और अब भी वे नित्य ऐसा

कर रहे हैं। पूँजीपति मजदूरों का खून चूसते हैं और महाजन कर्ज दारो की खाल खींचते हैं। पशु-पक्षियों की हत्या तो आजकल साधारण सी बात है। माँसाहारी व्यक्तियो की उदर-पूर्ति के लिए न जाने कितने पशु पक्षी नित्य मारे जाते हैं। धिक्कार है उन नर-पिशाचों को जो अनाज, दूध और कन्द-मूल फलो की कमी न होने पर भी अकारण ही भोले-भाले जीवो की गर्दनों पर छुरियाँ चलाते हैं। आज चारों ओर हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है। बड़े बड़े घातक यंत्रो और विषैली गैसों के आविष्कार हो रहे हैं। इस समय अहिंसा का उपदेश देना नक्कारखाने मे तूती की आवाज ही है।

आजकल कोई अहिंसा-देवी का पुजारी नहीं है। पर क्या इससे अहिंसा की महत्ता, अहिंसा का गौरव, कम हो सकता है ? 'अहिंसा परमो धर्म:', अर्थात् अहिंसा परम धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। आज तक संसार में कोई ऐसा धर्म नहीं चला है जिसने अहिंसा को अपने सिद्धान्तों मे स्थान न दिया हो। क्या ईसाई-धर्म, क्या बौद्ध धर्म, क्या जैन-धर्म, क्या वैदिक-धर्म सभी अहिंसा पर अत्यधिक जोर देते हैं। वास्तव में अहिंसा के तुल्य श्रेष्ठ धर्म का कोई अंग नहीं हो सकता। ईश्वर ने सभी प्राणियो को उत्पन्न किया है। हमें क्या अधिकार है कि हम उसके जीवों को कष्ट दें, उनकी हत्या करें ? सचमुच जीव की हिंसा करना ईश्वर को अप्रसन्न करना है। मनुष्यता की दृष्टि से इससे नीच कार्य और क्या हो सकता है कि हम ऐसे जीवो को मारें जो हमें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते, हमे कुछ भी कष्ट नहीं देते ? हिंसा के बराबर घोर पाप और क्या है ?

अहिंसा आत्मिक उत्थान का उत्तम साधन है। जो व्यक्ति अहिंसा व्रत का पालन करता है उसकी आत्मा निरन्तर उच्चता की ओर अग्रसर होती है। भगवान के बनाए हुए जीवो को प्यार करना भगवान की सच्ची अराधना है, क्योंकि सभी मे उसकी

सत्ता है। इसलिए अहिंसावादी व्यक्ति यदि बाहरी संध्या भी न करे तो भी ईश्वर उससे सदैव प्रसन्न रहता है और उसे सद्बुद्धि प्रदान करता है। सद्बुद्धि से वह श्रेष्ठ कार्यों में संलग्न होता है जिससे उसकी आत्मा उन्नत होती है।

अहिंसा से पशु-समाज और पक्षी-समाज का तो भला होता ही है मानव-समाज का भी कम कल्याण नहीं होता। जो मनुष्य अहिंसावादी होता है उससे समाज मे शान्ति स्थापित होती है। वह पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या, मार-काट और लड़ाई-झगड़ों का अन्त करता है। बहुत से मनुष्य जो उसके सम्पर्क में आते है सुधर जाते है। कैसे ही कट्टर हिंसावादी क्यों न हो उसके सम्मुख आकर उसके प्रभाव मे बच नहीं सकता। जिस समाज में अहिंसावादी व्यक्ति उत्पन्न होता उसमे मंगल की वर्षा होती है।

अहिंसा के व्रत का पालन करने से जीवन में सुख और शांति का संचार हो जाता है। अहिंसावादी व्यक्ति का संसार में कोई वैरी नहीं होता। वह किसी से लड़ता-झगड़ता नहीं। यदि उसे कोई कष्ट देता है तो वह उसको शान्तिपूर्वक सह लेता है। प्रति-हिंसा का भाव उसमे नहीं पाया जाता। सहन-शक्ति के कारण उसका जीवन सुखमय रहता है।

संसार मे कई अहिंसावादी व्यक्ति हुए हैं जिनकी यश-कौमुदी आज तक विश्व मे फैली हुई है। ईसा मसीह का नाम कौन नहीं जानता होगा? वे अहिंसा के बड़े भक्त थे। उनका कहना था कि यदि तुम्हारे बाएँ गाल पर कोई तमाचा मारे तो उससे कुछ न कहो वरन् अपना दाहिना गाल भी तमाचा मारने के लिए उसकी ओर कर दो। अहिंसा और सहन-शक्ति का यह कितना अच्छा सिद्धान्त है! गौतम बुद्ध भी अहिंसा के बड़े प्रेमी थे। उन्होने यज्ञो में की जाने वाली हिंसा का अन्त किया। उनके समय में सहस्रो जीवो की यज्ञो में बलि चढ़ाई जाती थी। यह बुद्धजी का

ही प्रभाव है कि आजकल यज्ञों में बलि नहीं चढ़ाई जाती। महावीरजी तो अहिंसा के साक्षात् अवतार थे। उन्होंने अहिंसा का बहुत प्रचार किया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुयायियो को कपड़े से छानकर जल पीना और मुँह पर कपड़े की पट्टी बांधना आवश्यक ठहराया। आजकल हमारे राष्ट्र-निर्माता महात्मा गांधी भी अहिंसा के पुजारी हैं। उन्होने अहिंसा के शस्त्र से स्वराज्य-संग्राम में आशातीत सफलता प्राप्त की है। आज तक अहिंसात्मक युद्ध कभी नहीं देखा गया था। गांधीजी ने सर्व प्रथम इस प्रकार का युद्ध किया और उसमे पर्याप्त सफलता पाई। वे कहते हैं कि विश्व-शान्ति का एकमात्र साधन अहिंसा है।

सारांश यह है कि जीवन में अहिंसा का अत्यन्त महत्व है। इससे व्यक्ति अपना और समाज दोनो का कल्याण कर सकता है। विश्व-मैत्री की स्थापना के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है। हमारी मनुष्यता इसी मे है कि हम सभी जीवधारियों के साथ हिल-मिल कर रहे और उनको किसी प्रकार का कष्ट न दें। अहा! किसी ने कैसा अच्छा कहा है, देखिए—

विधि के बनाये जेते जीव हैं जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्हे खेलन फिरन देहु।

हिन्दू-त्यौहार

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—त्यौहार क्या हैं? हिन्दू-त्यौहार के भेद।

(२) प्रधान हिन्दू त्यौहार—

(क) रक्षा-बन्धन

(ख) दशहरा

(ग) दिवाली

(घ) होली

(३) त्यौहारों का महत्व
(४) उपसंहार—हिन्दू-त्यौहारों में सुधार ।

त्यौहार से तात्पर्य सामाजिक उत्सव है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उत्सव और आनन्द मनाना मनुष्य का स्वभाव है। त्यौहार इसी स्वभाव का फल है। त्यौहार का सम्बन्ध धर्म से जोड़ दिया गया है। हिन्दुओं में अनेक प्रकार के त्यौहार प्रचलित हैं। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण हिन्दुओं के इतिहास की कोई प्रसिद्ध घटना है। जैसे—दशहरा नामक त्यौहार इसलिए मनाया जाता है कि कुआर सुदी १० को रामचन्द्रजी ने लंका पर चढ़ाई की थी। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण ऋतु परिवर्तन होता है। जैसे—होली नामक त्यौहार शिशिर ऋतु के पश्चात् वसंत के आगमन पर मनाया जाता है। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण किसी महान् पुरुष का जन्म होता है जैसे—कृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी आदि। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण धार्मिक होता है। जैसे—रक्षा-बन्धन, गणेश-चतुर्थी आदि। त्यौहार के दिन प्रत्येक हिन्दू के घर आनन्द मनाया जाता है। यों तो हिन्दुओं के अनेक त्यौहार हैं पर उनमें चार प्रधान हैं—रक्षा-बन्धन, दशहरा, दिवाली और होली।

रक्षा-बन्धन हिन्दुओं का एक प्रधान त्यौहार है। वह श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस त्यौहार के दिन ब्राह्मण मंत्र पढ़ता हुआ अपने यजमान के दाहिने हाथ की कलाई पर एक सूत्र बाँधता है। यजमान ब्राह्मण को दक्षिणा देता है। इस सूत्र का उद्देश्य यजमान की रक्षा होता है। अतः इसे रक्षा-बन्धन कहते हैं। इस त्यौहार के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है। एक समय देवता और दैत्यों में लगातार बारह वर्ष तक युद्ध होता रहा, जिसमें दैत्यों ने देवता समेत इन्द्र पर विजय प्राप्त कर ली।

इससे इन्द्र बड़ा दुःखी हुआ। इन्द्राणी ने उसे साहस बँधाया। उसने कहा कि मैं एक ऐसा उपाय करती हूँ जिससे आपकी अवश्य विजय होगी। दूसरे दिन श्रावणी पूर्णिमा थी। इन्द्राणी ने ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर इन्द्र के दाहिने हाथ मे रक्षा की पोटली बाँध दी। रक्षा-बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की तब उसे विजय प्राप्त हुई। यह त्यौहार विशेष-कर ब्राह्मणो का त्यौहार माना जाता है। रक्षा-बन्धन के दिन मनुष्य नवीन वस्त्राभूषण धारण करते हैं और मिष्टान तथा पक्वान्न खाते है। सायंकाल को वे बाग तथा वाटिकाओ मे खेल-कूद आदि से आमोद-प्रमोद करते हैं।

हिन्दुओ का द्वितीय प्रधान त्यौहार दशहरा है। इसे विजया-दशमी भी कहते हैं। यह त्यौहार कुआर सुदी १० को मनाया जाता है। इसका विशेष सम्बन्ध क्षत्रियो मे है। पर यह प्रत्येक हिन्दू-घर में मनाया जाता है। इस त्यौहार के दिन क्षत्रिय लोग अपने अस्त्र-शस्त्र पूजते हैं। क्षत्रिय राजे विविध प्रकार के उत्सव करते हैं। इस दिन उनकी सवारी धूम-धाम से निकलती है और फौज का प्रदर्शन होता है। क्षत्रिय लोग दशहरे के दिन दुर्गा पर भैसे का बलिदान चढ़ाते हैं। बंगाल प्रान्त मे यह त्यौहार दुर्गा-पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ इस अवसर पर दुर्गाजी की पूजा की जाती है। दशहरे के त्यौहार के दिन वैश्य लोग अपनी बहियाँ पूजते हैं। इस दिन प्रत्येक हिन्दू के घर मे आनन्द रहता है और मिष्टान्न तथा पकवान्न बनते हैं। रात्रि के समय रावण-वध का अभिनय किया जाता है। रावण की कागज की विशाल मूर्त्ति बनाकर उसे राम द्वारा नष्ट कराया जाता है। फिर उस मूर्त्ति मे आग लगा दी जाती है। इस त्यौहार का सम्बन्ध मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी की लंका पर की गई चढ़ाइ से है। इसलिए यह दिन श्रेष्ठ माना गया है और क्षत्रिय

लोग इसे अपना मुख्य त्यौहार मानते हैं। इसके विजया-दशमी नाम पड़ने का कारण भी यही है।

दिवाली तो हिन्दुओं का सबसे प्रधान त्यौहार है। इसका विशेष सम्बन्ध वैश्यो से है। इसे दीपावली भी कहते है। यह त्यौहार कार्तिक कृष्णा १३ से शुक्ल २ तक पाँच दिन मनाया जाता है। प्रथम दिन 'धन-तेरस' कहलाता है। इस दिन दीपक जलाकर सब लोग अपने-अपने द्वार पर रखते है और यमराज का पूजन करते हैं। इस दिन बर्तन खरीदना बड़ा शुभ समझा जाता है। अतः बाजारो मे बर्तन खूब सजाए जाते हैं और उनकी खूब बिक्री होती है। दूसरा दिन 'नरक-चौदस' कहलाता है। इसका कारण यह है कि इस दिन श्रीकृष्णजी ने नरकासुर का वध किया था। इसी दिन भगवान ने नृसिह का रूप धारण करके प्रह्लाद के पिता का वध किया था। इस दिन घरो की सफाई की जाती है और उन्हे लीपा-पोता जाता है। सायंकाल दीपक जलाए जाते हैं। तीसरा दिन लक्ष्मी-पूजन का होता है। कुछ लोग केवल इसी दिन को दिवाली के नाम से पुकारते है। इस दिन भगवान रामचन्द्रजी चौदह वर्ष के बनवास के पश्चात् अयोध्या लौट आये थे और वहाँ उनके स्वागत में निवासियों ने अनेक उत्सव मनाए थे। दिवाली का दिन मुख्य गिना जाता है। रात्रि के समय मनुष्य अपने मकानो को दीपको की अवलियों से सजाते है और लक्ष्मीजी की पूजा करते है। स्थान-स्थान पर दीपमालाएँ बड़े सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं। नगरो में श्वेत, हरे, नीले, पीले लाल और गुलाबी लट्टुओं मे बिजली का प्रकाश मन को हरता है। ऐसा विश्वास है कि इस रात्रि को लक्ष्मीजी प्रत्येक घर में आती हैं, और जिस घर की स्वच्छता और सुन्दरता देखकर प्रसन्न हो जाती हैं उसी को अपने निवास के लिए चुन लेती हैं। अतः लोग घरों को

खूब स्वच्छ और आकर्षक बनाते है, और कुछ लोग रात्रि भर लक्ष्मी की आराधना में जगते हैं। चौथे दिन गोवर्द्धन-पूजा होती है। यह पूजा श्रीकृष्णजी के गोवर्द्धन पर्वत उठाकर ब्रज की रक्षा करने के उपलक्ष मे की जाती है। इस दिन गोबर से गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है और रात्रि में उसकी पूजा होती है। गाय बैल भी पूजे जाते हैं। पाँचवाँ दिन 'भैया-दूज' और 'यम-द्वितीया' कहलाता है। ऐसा विश्वास है कि इस दिन यमुनाजी में स्नान करने से मनुष्य यमदूतो के चक्कर में नहीं पड़ता। इस दिन स्त्रियाँ अपने-अपने भाइयो को मिष्टान्न खिलाती है और उनके मस्तक पर तिलक लगाती है। भाई अपनी बहिनों को उपहार देते है। दिवाली का त्यौहार बड़े आमोद-प्रमोद का है। लोग नवीन वस्त्र पहनते है और मिठाई आदि अच्छे-अच्छे पकवान खाते हैं। इस अवसर पर जुआ खेलने का भी बहुत रिवाज है। गरीब और अमीर दोनो दिवाली पर अपने घरो को स्वच्छ करते है, और लीप पोतकर चित्रादि से सजाते है।

होली भी हिन्दुओं का प्रधान त्यौहार है। यह फागुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। पूर्णिमा के कुछ दिन पूर्व से लकड़ियों और घास-फूस का बड़ा ढेर एक स्थान पर लगाया जाता है, इसे 'होली' कहते हैं। पूर्णिमा की रात्रि को इसे जलाया जाता है। इसका सम्बन्ध प्रह्लाद की फूआ होलिका से है जो प्रह्लाद को गोदी मे लेकर उसे जलाने के लिए अग्नि मे बैठ गई थी। उसमें यह शक्ति थी कि वह अग्नि में नही जलती थी। पर जब वह प्रह्लाद को लेकर अग्नि मे बैठी तब स्वयं तो जल गई किन्तु प्रह्लाद का बाल भी बाँका न हुआ। होली का त्यौहार शूद्रो का त्यौहार कहा जाता है। इस अवसर पर बालक-वृद्ध सभी स्वाँगिए बनकर गन्दे वचनो का निर्लज्जता से उच्चारण करते

हैं। एक दूसरे पर रंग का पानी, कीचड़-मिट्टी और पेशाब तक डालते हैं। तरह-तरह के मजाक होते हैं। गुलाल की आँधी सी उड़ती है। स्थान-स्थान पर नाचरंग और गाने-बजाने होते हैं।

त्यौहारो की प्रत्येक जाति को आवश्यकता होती है। इनकी अपनी उपयोगिता है, अपना महत्व है। इनसे जीवन मे सरसता और मधुरता आ जाती है। लोगों मे स्नेह बढ़ता है। वे आपस मे मिलते-जुलते हैं। त्यौहारों से ऐतिहासिक स्मृति बनी रहती है और जीवन-निर्माण में बहुत सहायता मिलती है। इनका हम पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करने मे इनका बड़ा हाथ रहता है। इनसे जातीय भावो की भी वृद्धि होती है।

हमारे त्यौहारों में कुछ दोषो ने घर कर लिया है, जिससे इनका रूप विकृत हो गया है। इनमें सुधार की आवश्यकता है। दिवाली पर लोग जुआ खेलते है, जिसमें कुछ अपनी पसीने की कमाई को थोड़े समय मे नष्ट कर देते हैं और तरह-तरह के दुःख भोगते है। वे उदर-पोषण के लिए पाप करते है और जेल की हवा खाते है। यह खेल बन्द होना चाहिये। होली में पर्याप्त गन्दगी आ गई है। पेशाब और कीचड़ मटकों में भर-भर कर डालना कितना घृणित और बुरा है! गन्दे वचन कहना कितनी नीचता है! इन से कभी-कभी पारस्परिक झगड़ों और वैमनस्य की नींव पड़ जाती है? इन गन्दगियों का निराकरण होना बड़ा आवश्यक है। दशहरे के अवसर पर भैंसे का प्राण लेना बुरा है। कैसे शुभ अवसर पर कैसा नीच कार्य किया जाता है! क्या हम किसी जीव का प्राण लेकर अपना कल्याण कर सकते हैं? क्या हम किसी की हत्या करके किसी देवता को प्रसन्न कर सकते हैं? कदापि नहीं। हमें चाहिए कि हम अपने त्यौहारो के दोषों को दूर करें जिससे हमारी उन्नति हो, जिससे हमारा कल्याण हो।

आदर्श गृहिणी

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—गृहिणी का महत्त्व

(२) आदर्श गृहिणी द्वारा समाज का कल्याण

(३) आदर्श गृहिणी की आवश्यकताएं—

(क) शिक्षा

(ख) गृहस्थी के काम-काज करने की कुशलता

(ग) स्वच्छता-प्रियता

(घ) घरेलू चिकित्सा का ज्ञान

(ङ) मनोरञ्जन के लिए संगीत, नृत्यादि आदि ललित-कलाओं का ज्ञान

(च) पति-सेवा

(छ) उज्ज्वल चरित्र (नम्रता, सहनशीलता, मितव्ययता, एव मधुर भाषण)

(४) उपसंहार—सारांश

गार्हस्थ्य-जीवन एक गाड़ी है जिसके पुरुष और स्त्री दो पहिये है। इस गाड़ी के सुचारु-संचलानार्थ पति एवं स्त्री की उत्तमता वांछनीय है। गृहस्थी मे सुख और शान्ति का साम्राज्य तभी स्थापित होगा जब गृह-पति और गृहिणी दोनों ही आदर्श हों। इन दोनों में भी गृहिणी का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि गृहस्थ जीवन का अधिकांश भार गृहिणी के ही कंधों पर रहता है। वही घर की अधिष्ठात्री देवी है। यदि आदर्श गृहिणी जीवन को स्वर्गीय बना सकती है तो कलुषित गृहिणी उसे नारकीय। यदि आदर्श गृहिणी जीवन में सरसता का संचार कर सकती है तो अधम गृहिणी उसमें कटुता का। यदि आदर्श गृहिणी जीवन का अमृत है क्षुद्र गृहिणी उसका विष।

आदर्श गृहिणी से पति का तो जीवन मधुर होता ही है,

समाज का भी कम कल्याण नहीं होता। वह अपनी संतान को सुशील एवं सुयोग्य बनाती है, जिससे समाज का भला होता है। आदर्श गृहिणी की सन्तान ही देश तथा समाज का नेतृत्व कर सकती है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। हिन्दू-धर्म-रक्षक, हिन्दू-जाति के जीवनदाता छत्रपति शिवाजी का आविर्भाव करने वाली कौन थी? एक आदर्श गृहिणी जिसका नाम जीजाबाई था। जीजाबाई ने शिवाजी को शिवाजी बनाकर, हिन्दू-समाज के उद्धार का साधन जुटाया। आजकल गांधीजी को ही देखिए। उन्हे किसने जन्म दिया है? एक आदर्श गृहिणी पुतलबाई ने जो साधु स्वभाव की थीं और धर्म से बहुत निष्ठा रखती थीं।

आदर्श गृहिणी मे कौन-कौन गुण होने चाहिएँ? आदर्श गृहिणी का स्वरूप क्या है? किस प्रकार की स्त्री आदर्श गृहिणी कही जा सकती है? किसी स्त्री को आदर्श गृहिणी के सुनाम से विभूषित होने के लिए सबसे आवश्यक वस्तु शिक्षा है। स्त्री माता-रूप में हमारी गुरु और पत्नी-रूप में हमारी परामर्शदात्री है। इसलिए उसका शिक्षित होना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा के बिना मस्तिष्क का विकास नही हो सकता और बिना मस्तिष्क के विकास के गुरु और परामर्श देने के कार्य में सफलता नही मिल सकती। अशिक्षित पत्नी गृह-कार्य सुचारुता से नहीं चला सकती। सुशिक्षा से स्त्री की कूप-मंडूकता जाती रहती है। वह प्रत्येक बात की भलाई बुराई की विवेचना भली-भाँति कर सकती है।

आदर्श गृहिणी को गृहस्थी के प्रत्येक काम-काज में कुशलता प्राप्त करने की आवश्यकता है। उसे सीना-पिरोना, बुनना, कशीदाकारी, भोजन बनाना, बच्चों का लालन-पालन, गृह-प्रवन्ध, आय-व्यय का लेखा, तीमारदारी आदि कार्यों में दक्ष होना चाहिए जिससे वह इन्हें भली-भाँति स्वयं अपने हाथो से कर सके। अँगरेजी गृहणियाँ घर के सब काम-काज ठीक-ठीक करना

जानती है और उन्हे स्वयं करती हैं। हमारे यहाँ की शिक्षित स्त्रियो मे गृह-कार्यों से अरुचि उत्पन्न हो रही है, यह दुःख की बात है। पर इसमे दोष शिक्षा का है, स्त्रियो का नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक कार्य अपने हाथो से अच्छा होता है। हमारी प्राचीन गृह-देवियाँ स्वयं गृहस्थी के कार्य सँभालती थीं। सीताजी के विषय मे तुलसीदासजी ने लिखा है:—

निज कर गृह परिचरजा करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥

आदर्श गृहिणी स्वच्छता-प्रिय हो। वह घर को साफ-सुथरा रक्खे। घर में कहीं भी गन्दगी का नाम न रहे। वह स्वयं अपने तथा बाल-बच्चो के शरीर, वस्त्रादि स्वच्छ रक्खे। सफाई का स्वास्थ्य से और गन्दगी का रोगो से घनिष्ट सम्बन्ध है। सफाई की उपेक्षा करके कोई भी स्वस्थ नहीं रह सकता। अतः यदि गृहिणी स्वच्छता का ध्यान रक्खेगी तो वह गृह की रोगों से रक्षा कर सकेगी।

आदर्श गृहिणी के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे घरेलू चिकित्सा का ज्ञान हो। घर मे बालको को छोटे-मोटे रोग बहुत हुआ करते हैं। कभी किसी को खाँसी हो जाती है तो कभी कोई दस्तों से पीडित होता है। कभी किसी को ज्वर आ जाता है तो कभी किसी की आँखें दुखने लगती है। बच्चे नटखट भी होते हैं। एक दूसरे के चोट दे देते हैं। इन सब बातों के लिए डाक्टर की शरण ली जाय तो बहुत रुपये उड़ जायँ। इसलिए गृहिणी को साधारण रोगो की चिकित्सा स्वयं करनी चाहिये।

मानव-जीवन में मनोरंजन की अत्यन्त आवश्यकता है। जब हम दिन भर के परिश्रम से उकता जाते हैं, तब हमारा मन विनोद चाहता है। यदि पत्नी संगीत, नृत्यादि ललित कलाओं मे दक्ष हो तो फिर उस समय आनन्द का क्या कहना? उस

समय यदि अपनी स्त्री सुरीले कण्ठ से गा सकती हो, वाद्य-यन्त्रों से मधुर ध्वनि निकाल सकती हो, मनोमोहक नृत्य कर सकती हो, तो सिनेमा-हॉल के आनन्द की अपेक्षा घर का आनन्द दुगुना हो जाता है। अतः आदर्श गृहिणी के लिए संगीत, नृत्यादि कलाओं का ज्ञान भी वांछनीय है। इसके साथ साथ यदि उसमें परिहास पटुता हो तो सोने में सुगन्ध है।

पातिव्रत-धर्म का पालन तो आदर्श गृहिणी के लिए प्राणों से भी प्यारा होना चाहिए। उसके लिए पति ही एकमात्र देवता, पति ही एकमात्र धन, पति ही एकमात्र सम्बन्धी हो। वह पति के सुख में अपना सुख, पति के दुःख मे अपना दुःख, पति के उत्कर्ष मे अपना उत्कर्ष, पति के अपकर्ष में अपना अपकर्ष, पति के अपमान में अपना अपमान और पति के सम्मान में अपना सम्मान समझे। वह अपना सर्वस्व पति पर न्यौछावर कर दे।

आदर्श गृहिणी का चरित्र उज्ज्वल होना चाहिये। उसका स्वभाव सरल एवं विनम्र हो। वह सहनशील और मिष्ट-भाषिणी हो उसमे मितव्ययता का भी गुण होना चाहिए। जो गृहिणी फैशन मे मुक्तहस्त से रुपये व्यय करेगी वह आदर्श न कहला सकेगी।

संक्षेप में यही आदर्श गृहिणी की आवश्यकताएँ है। क्या हमारे देश की आधुनिक गृहणियाँ आदर्श हैं? प्राचीन काल मे अवश्य हमारे यहाँ की स्त्रियॉ आदर्श गृहणियाँ होती थीं और उन्हे गृह-लक्ष्मियो के भव्य नाम से सम्बोधित किया जाता था। खेद की बात है कि आजकल हमारी गृहणियॉ अशिक्षित हैं, उनमें विविध प्रकार की कुरीतियाँ पाई जाती है, वे अपने पतियों से दिन-रात कलह किया करती हैं, वे स्वच्छता से कोसों दूर रहती हैं और उनमे गृह-कार्य की कुछ भी योग्यता नहीं है। इसका उत्तरदायित्व पुरुष-समाज पर है। हमारा कर्तव्य है कि हम स्त्री-समाज की दशा सुधारें जिससे भारत में पुनः सीता,

सावित्री, अनुसूया सरीखी आदर्श गृहणियाँ उत्पन्न हो जो भारत के भाग्य सितारे को सातवें आसमान पर चढ़ावें।

देशाटन से लाभ

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—देशाटन किसे कहते हैं ? आज कल देशाटन के सुगम साधन

(२) देशाटन से लाभ—

(क) ज्ञान वृद्धि

(ख) मनोरंजन

(ग) स्वास्थ्य लाभ

(घ) उन्नति

(३) उपसंहार—हमारे देश में देशाटन के प्रेम की कमी

देश या विदेश का भ्रमण ही देशाटन कहलाता है। एक ही स्थान पर रहते-रहते मनुष्य का मन ऊब जाता है और वह इधर उधर घूमना-फिरना चाहता है। अन्य स्थानों की रहन सहन, रीति-रिवाज आदि से भी वह परिचित होना चाहता है। इन्हीं प्रवृत्तियों का फल देशाटन है। आजकल विज्ञान के प्रताप से देशाटन के लिए बड़े सुगम साधन उपलब्ध है। पहले यात्रियों को देशाटन मे बड़ी आपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। वे पैदल अथवा घोड़े पर या बैलगाड़ी में यात्रा करते थे। मार्ग मे उन्हें लुटेरे लूट लेते थे। वर्षाऋतु मे नदी-नालों के कारण मार्ग बन्द हो जाते थे। थोड़ी दूर पहुँचने में बहुत समय लग जाता था। धन्य है विज्ञान जिसने रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि यात्रा के सुगम साधन जुटाए हैं जिनसे देशाटन में बड़े आराम हो गए हैं।

प्रत्येक मनुष्य को देशाटन का प्रेमी होना चाहिए। इससे

अनेक लाभ है। यह ज्ञान-वृद्धि का बड़ा अच्छा साधन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी वस्तु का ठीक और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे स्वयं देखा जाय। यद्यपि पुस्तकें विविध वस्तुओं का ज्ञान कराती है तो भी उन्हे प्रत्यक्ष देखे बिना तत्सम्बन्धी ज्ञान अधूरा रहता है। जैसे— काश्मीर का वर्णन पढ़कर काश्मीर का वैसा ज्ञान नहीं हो सकता जैसा उसे देखकर। भौगोलिक ज्ञान के लिए तो देश-विदेश-भ्रमण अनिवार्य है। किसी देश की जलवायु, स्थिति, पैदावार आदि का समुचित ज्ञान उस देश मे घूमने-फिरने से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भू-भागो के निवासियो की रहन-सहन, रीति-रिवाज, राजनैतिक-परिस्थिति, आर्थिक अवस्था, धार्मिक दशा आदि का ठीक-ठीक परिचय भी देशाटन द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। देशाटन विविध अनुभवो की खानि है। जो व्यक्ति देशाटन करता रहता है उसे अनेक प्रकार के अनुभव हो जाते हैं। सांसारिक दॉव पेच वह भली भाति जान लेता है। किस प्रकार के व्यक्ति से कैसा व्यवहार करना चाहिए, किसी प्रकार की परिस्थिति मे कैसे काम करना चाहिए, इनका उसे अच्छा ज्ञान हो जाता है। स्वावलम्बन की भावना प्राप्त करने के लिए देशाटन बहुत आवश्यक है।

देशाटन से मनोरंजन भी होता है। अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखने को मिलती हैं। कहीं अजायबघर देखने को मिलता है तो कही सुन्दर भवन। कही कोई नया पशु देखने को मिलता है तो कही कोई नया पक्षी। कहीं मनोरम झील की छटा देखी जाती है तो कही मनोहर सरोवर की शोभा। कहीं समुद्र का सुन्दर रूप देखा जाता है तो कही नदी की चाँदी सी उज्ज्वलधारा। कहीं हँसती हुई प्रकृति मन को रिझाती है। कहीं गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ मन को प्रसन्न करती हैं। कहीं स्वच्छता देखकर हर्ष होता

है कहीं ग्रामीणो का सरल जीवन बड़ा अच्छा लगता है। कहीं नागरिको की सजावट मन को आकर्षित करती है।

देशाटन से स्वास्थ्य-लाभ भी होता है। मनोरंजन और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। डाक्टरों का मत है कि यदि कोई मनुष्य सदैव प्रसन्न रहे तो उसे कभी कोई रोग नहीं हो सकता, वह सर्वदा स्वस्थ रहेगा। देशाटन से मनोरंजन होता है। इसलिए देशाटन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। मनोरंजन के अतिरिक्त कई स्थानो की जल-वायु स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती है। पार्वतीय प्रदेशों में भ्रमण करके किसका स्वास्थ्य नहीं सुधर जाता? यह देखा जाता है कि निर्बल और रोगी मनुष्य पहाड़ो पर कुछ दिन जाकर टिकते हैं। देशाटन से कुछ समय के लिए गृहस्थी की चिन्ताओं से छुटकारा भी मिल जाता है। इसका भी तन्दुरुस्ती पर अच्छा असर पड़ता है।

उन्नति के लिए देशाटन बड़ी आवश्यक वस्तु है। हम भिन्न-भिन्न देशो में यात्रा करके अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं। दूसरे देशों की अच्छी समाज-व्यवस्था का अध्ययन करके अपने देश मे उसका अनुकरण कर सकते हैं। कुरीतियो का अन्त कर सकते हैं। अन्य देशो की राज्य-व्यवस्था देखकर अपनी राजनैतिक दशा को सुधार सकते हैं। देशाटन द्वारा ही दूसरे स्थानों के कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करके अपने देश मे उससे औद्योगिक उन्नति कर सकते है। आजकल जिस देश के निवासी देशाटन-प्रिय है वे अपने देश को दिन प्रतिदिन उन्नत बना रहे हैं। पश्चिमवाले देशाटन के कारण संसार भर का व्यापार अपने हाथो मे साधे हुए हैं। अँगरेजों ने देशाटन द्वारा कितनी अधिक उन्नति करली है! भारतवर्ष में उनके आधिपत्य का कारण देशाटन है।

हमारे देश के लोगों में देशाटन का प्रेम कम है। कारण यह है कि यहाँ प्राचीन काल में विलायत जाना धर्म की दृष्टि से बुरा समझा जाता था। जो मनुष्य विलायत चला जाता था, उसका जाति से बहिष्कार हो जाता था। इस प्रकार की धार्मिक बाधा के कारण यहाँ के निवासियो मे देशाटन की प्रवृत्ति का अभाव था। पर हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से यह धार्मिक बाधा दूर हो गई है और कुछ लोग इधर-उधर भ्रमण करने लगे हैं। भारतीय जनता की दरिद्रता भी देशाटन-प्रेम मे बाधक है। हे भगवान! क्या कभी हमारे देश की दरिद्रता दूर होगी और देशाटन द्वारा हमारा देश उन्नति करेगा?

हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति से देश, समाज और विद्यार्थियों की दुर्दशा

(२) वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दोष—

  (क) विद्यार्थियों का बुरा स्वास्थ्य

  (ख) विद्यार्थियों में चरित्र-बल की कमी

  (ग) शिक्षा के माध्यम का विदेशी भाषा होना

  (घ) शिक्षा का खर्चीला होना

  (ङ) शिक्षा का अव्यावहारिक होना

  (च) रहन-सहन का ऊँचा होना और फैशन का दासत्व

(३) वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण—

  (क) देश-प्रेम की भावना की जागृति

  (ख) मानसिक विकाश और ज्ञान वृद्धि

(४) उपसंहार—सुधार की आवश्यकता

आजकल हमारी शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध देश के कोने-कोने में आवाज उठाई जा रही है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इससे

समाज को कितनी हानि हुई है, इससे देश कितना नीचे गिरा है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इसका उद्देश्य व्यक्ति को पराधीन बना देना है, उसको सरकारी नौकरी के लिए तैयार करना है। मैकौले के इसका श्रीगणेश क्लर्क पैदा करने की गरज से ही किया था। इसने भारतीय विद्यार्थियो की जो दुर्दशा की है वह किसी से छिपी नहीं। आजकल यह देखा जाता है कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने मे हजारो रुपए व्यय करते हैं पर स्कूल या कॉलेज से निकलने के बाद उन्हे कोई टका सेर भी नहीं पूछता। वे जीविकोपार्जन नही कर सकते। दर-दर नौकरी के लिए फिरने पर भी उन्हें कही नौकरी नहीं मिलती। शिक्षित नवयुवकों मे बेकारी इतनी बढ़ी हुई है कि एक छोटी सी नौकरी के लिए हजारो ग्रेजुएटो की अर्जियाँ आती है कितने खेद की बात है कि जो विद्यार्थी अपने आधे जीवन तक शिक्षा की प्राप्ति में लगा रहता है, जो अपनी सम्पूर्ण शक्तियॉ पढ़ने मे जुटा देता है, जिसका जीवन त्यागमय होता है, वह पेट भरने के लिए इस प्रकार मारा-मारा फिरता है। बेकारी से उकताकर कितने ही होनहार नवयुवक अपने जीवन का अन्त कर डालते है। धिक्कार है वर्त्तमान शिक्षा पद्धति को। बहुत से शिक्षित कुशाग्र बुद्धि, अथाह ज्ञान-भण्डार और असीम उत्साह के होते हुए भी मन मारे अपने व्यर्थ जीवन और दूषित शिक्षा पर आँसू बहाते हैं, उसे कोसते हैं। किसी देश के लिए इससे बढ़कर हृदय-विदारक दृश्य और क्या हो सकता है?

हमारी शिक्षा-पद्धति अनेक दोषो से पूर्ण है। इसने विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को खराब किया है। किसी भी स्कूल या कालेज मे चले जाइए, आप विद्यार्थियों को रुग्ण और निर्बल पाएँगे। शिक्षालयों मे उनके स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। वास्तव में वह शिक्षा सच्ची शिक्षा नहीं जो विद्यार्थी का शारीरिक,

मानसिक और आत्मिक विकास नहीं करती। आजकल शारीरिक व्यायाम के लिए कोई समुचित प्रबन्ध शिक्षालयों में नहीं रहता। जब कभी विद्यार्थी फुटबॉल, हॉकी, टैनिस, वौलीबॉल आदि खेल खेल लेते हैं। इन खेलों से छात्रालय के विद्यार्थी तो कुछ लाभ उठा भी लेते हैं पर नगर में रहनेवाले विद्यार्थी उससे पूर्णतया वंचित रहते हैं। फल यह होता है कि उनका ठीक शारीरिक विकास नहीं होता। विद्याध्ययन में कठिन परिश्रम करने और व्यायाम के अभाव से शिक्षितों का स्वास्थ्य अशिक्षितों की अपेक्षा बहुत बुरा देखा जाता है।

शारीरिक विकास अथवा स्वास्थ्य से भी बुरी दशा है विद्यार्थियो के चरित्र की। वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति मे आत्मा को बिलकुल भुला दिया गया है। छात्रों के चरित्र-गठन के लिए शिक्षा-केन्द्रों मे कुछ भी व्यवस्था नहीं की जाती। न तो कोई उपदेशक रक्खा जाता है, न ईश्वर-वन्दना कराई जाती है और न सदाचार सम्बन्धी भाषण कराए जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियो का चरित्र दूषित हो जाता है। उनमे संयम, नियन्त्रण, नम्रता, गुरुजनो के प्रति आदर-व्यवहार आदि श्रेष्ठ गुण नही पाए जाते जिससे वे भविष्य मे अच्छे नागरिक नहीं बन सकते। कहने की आवश्यकता नही कि चरित्र जीवन का सिरमौर है। उसके दूषित हो जाने से मनुष्य मनुष्य नही रह जाता। किसी ने ठीक ही कहा है—When character is lost everything is lost अर्थात् आचरण के नष्ट हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। निस्सन्देह आचरण जीवन का सार है।

वर्त्तमान शिक्षा का माध्यम अँगरेजी भाषा है। इससे देश मे शिक्षा के प्रसार मे तो रुकावट हुई ही है पर सब से बड़ी हानि यह हुई कि हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को खो बैठे है।

संसार मे भारतवर्ष के अतिरिक्त शायद ही कोई देश ऐसा हो जहाँ विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती हो यह बात समझ में नहीं आती कि कोई देश किस प्रकार विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर उन्नति कर सकता है। क्या शिक्षा के प्रचार मे विदेशी भाषा मातृ-भाषा की अपेक्षा अधिक सफल हो सकती है? कदापि नहीं। शिक्षा और मातृ-भाषा का घनिष्ठ और स्वाभाविक सम्बन्ध है। जिस भाषा को बालक अपनी माता से सीखता है उससे वह सरलता-पूर्वक शिक्षित किया जा सकता है। अँगरेजी द्वारा शिक्षा-प्रदान से भारतीय स्त्री-पुरुषों में आत्म-सम्मान और आत्माभिमान के भाव नहीं रह गये हैं। अँगरेजी सभ्यता ने हमे मोह लिया है। अँगरेज हमारे आदर्श हो रहे हैं। उन्हीं की सभ्यता के हम भक्त है। उन्हीं की रहन-सहन, उन्हीं की वेश-भूषा, उन्हीं का खान-पान, हमें अच्छा लगता है। भारतीय वस्तुओं और मातृ-भाषा को हम बुरी समझते हैं। हममे जातीयता नही रह गई है। किसी ने ठीक ही कहा है 'भाषा की विजय तलवार की विजय से चिरस्थायी होती है।' भारतवर्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

वर्तमान शिक्षा की प्राप्ति मे विद्यार्थियों को सहस्रों रुपये व्यय करने पड़ते हैं। देश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि सर्वसाधारण ऐसी बहुमूल्य शिक्षा को नहीं प्राप्त कर सकता। तब बिना शिक्षा के किस प्रकार देश की उन्नति हो? हम तो यह समझते है कि अन्य देशो की भाँति दरिद्र भारतवर्ष मे भी सरकार को कम से कम निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। जिस प्रकार प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है उसी प्रकार प्रजा को सुशिक्षित बनाना भी राजा का धर्म होना चाहिए।

आजकल की शिक्षा-पद्धति के अनुसार हमे दस्तकारी की

शिक्षा नहीं मिलती। प्रचलित शिक्षा अव्यावहारिक है। इससे विद्यार्थियों को पुस्तकों मे सुरक्षित ज्ञान ही मिलता है। उन्हें कोई उद्योग-धन्धे नही सिखाए जाते। नौकरियो के अभाव में पुस्तक-गत ज्ञान से जीविका का प्रश्न हल नहीं हो सकता। यही कारण है कि आजकल शिक्षित नवयुवको के सामने पेट भरने की समस्या है। हमारे हित मे यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारी शिक्षा-पद्धति में दस्तकारी की शिक्षा को स्थान मिले जिससे हम स्वतंत्र रूप से जीविका उपार्जन करने के योग्य बन सके।

आजकल की शिक्षा पाकर हमारे नवयुवको की रहन-सहन ऊँची हो गई है और वे फैशन के गुलाम हो गए हैं। उनमें सादगी के बजाय फिजूल-खर्ची बहुत देखी जाती है सूट-बूट, सिगरेट, फाउन्टेनपैन, रिस्टवाच, क्रीम-पाउडर, सुगन्धित तेल-इत्र, साबुन, सिनेमा, नाच-रंग आदि मे वे अपने माता पिता की पसीने की कमाई उड़ाते हैं। उनका खर्च इतना अधिक होता है कि जहाँ एक अशिक्षित पन्द्रह रुपये मासिक से अपना काम चला सकता है वहाँ एक शिक्षित का चालीस रुपये मासिक से भी पूरा नहीं पड़ता। इसका दोष वर्तमान शिक्षा पर है। वह पढ़नेवालों क हृदय पर सादगी के जीवन का महत्व अङ्कित नही करती है।

जहाँ आजकल की शिक्षा में दोष हैं वहाँ कुछ गुण भी है। संसार मे कोई वस्तु ऐसी नही है जिसमें या तो दोष ही दोष हों या केवल गुण ही गुण हों। वर्तमान शिक्षा से हमारे हृदय में देश-प्रेम की भावना जाग्रत हुई है। अँगरेजी-साहित्य देश-प्रेम की भावनाओं से भरा पड़ा है। इस शिक्षा द्वारा अँगरेजी-साहित्य के सम्पर्क से भारतवर्ष में देश-प्रेम उमड़ पड़ा है। महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल, महामना मालवीय, बा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री वल्लभभाई पटैल, श्री भूलाभाई देसाई,

श्री राजगोपालाचार्य आदि देश-प्रेमी नेता इसी शिक्षा का प्रसाद है। हमारा साहित्य बतलाता है कि पहले हमारे पूर्वजो में प्रायः देश के प्रति ऐसा प्रेम नहीं था।

वर्तमान शिक्षा से मानसिक विकास और ज्ञान वृद्धि भी हुई है। आजकल हमारे देश में अच्छे-अच्छे विद्वान हैं। कुछ तो ऐसे हैं जिन्होंने विश्व भर मे अपनी विद्वता की धाक जमा दी है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति के अनुसार विविध विषयो की पढ़ाई से मस्तिष्क के विकास में बड़ी सहायता मिलती है और बहुत से विषयो का थोड़ा-थोडा ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति मे जितने अधिक दोप है उतने गुण नहीं। आजकल तो दोषों ने गुणो को पूर्णतया ढक लिया है। आजकल की यह शिक्षा-पद्धति नवयुवकों के जीवन को नीरस तथा कंटकाकीर्ण बना रही है। इसमें सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि उपर्युक्त दोपों का बहिष्कार नहीं किया जायगा तो एक दिन इससे देश तथा समाज की जो दशा होगी उसे सोचकर हृदय काँप उठता है। पर हर्ष पर हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार दूषित शिक्षा-पद्धति मे आवश्यक सुधार कर रही है।

किसी जाति की उन्नति के साधन

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—ॲंगरेज-जाति की उन्नति

(२) उन्नति के साधन—

(क) शिक्षा का प्रचार

(ख) उद्योग-धन्धों और कला-कौशल की वृद्धि

(ग) देशाटन

(घ) पारस्परिक प्रेम

(ङ) जातीय कुरीतियों का बहिष्कार

(च) सच्चरित्रता

(३) उपसंहार—सारांश; हिन्दू-जाति की दशा

संसार मे आजकल कई जातियाँ उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई हैं। अँगरेज-जाति को ही देखिए। इस जाति ने कितनी अधिक औद्योगिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उन्नति करली है! संसार में चारों ओर इसका सिक्का जमा हुआ है। यह जाति संसार भर के व्यापार की कर्ता-धर्ता बनी हुई है। इस जाति मे कला-कौशल की अत्यन्त वृद्धि देखी जाती है। जितनी धनाढ्य यह जाति है उतनी धनाढ्य संसार में आजकल कोई जाति नहीं। इसका इतना अधिक राज्य है कि उसमे सूर्य कभी नहीं डूबता। सामाजिक व्यवस्था भी इस जाति की प्रशंसनीय है। इतनी उन्नति देखकर यह जानने की इच्छा होती है कि वे क्या साधन है जिनके कारण कोई जाति उन्नति के आसन पर आसीन हो सकती है, किस प्रकार कोई मनुष्य अपनी जाति को ऊँचा उठा सकता है।

किसी जाति की उन्नति के लिए उसमें शिक्षा प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। कौन शिक्षा के महत्व को नही स्वीकार करेगा? कौन शिक्षा की उपयोगिता को न मानेगा? शिक्षा से मनुष्यो के मस्तिष्क विकसित होते है, विचार शक्ति बढ़ती है। कड़ी से कड़ी समस्या और जटिल से जटिल प्रश्न को एक शिक्षित मनुष्य ही हल कर सकता है। वह भयानक से भयानक परिस्थिति को अपने वश मे कर सकता है। रेल, तार, जहाज, एक्स-रे, टेलीविजन, केमरा, सिनेमा, ग्रामोफोन आदि का जन्म देनेवाली शिक्षा ही है। शिक्षा से जाति में जागृति होती है, ज्ञान की वृद्धि होती है, कूप-मंडूकता जाति रहती है और समस्त

काल और जातियों के ज्ञान-भण्डार का द्वार खुल जाता है। असभ्यता दूर होती है। जिन जातियों में शिक्षा का प्रचार नहीं है वे आज तक जंगलो में या तो पशुओं की भाँति नग्नावस्था में रहती हैं, अथवा वृक्षों की छालो और पत्तियो से अपने शरीर को ढकती है। वे पशुओं की भाँति खाती-पीती और सन्तान उत्पन्न करती है। न उन्हे अपनी दशा का ज्ञान है और न वे उन्नति का नाम जानती है। न उनमें शिष्टता देखी जाती है और न अन्य कोई मनुष्योचित गुण।

शिक्षा के अतिरिक्त किसी जाति की उन्नति के लिए उसमे उद्योग-धन्धो और कला-कौशल की वृद्धि भी आवश्यक है। उद्योग-धन्धो के कारण जापानी लोग बहुत उन्नति कर गए है। जापान के हर स्कूल मे चाहे वह प्राइमरी हो या मिडिल, हाई स्कूल हो या कॉलेज, प्रत्येक बालक को कुछ-न-कुछ धंधे की शिक्षा दी जाती है। बालक घडी बनाना साइकिल की मरम्मत करना, फोटोग्राफी आदि काम स्कूलो में सीखते है। सचमुच जापान की उन्नति का रहस्य दस्तकारी है। दस्तकारी से जाति की आर्थिक अवस्था सुधरती है। अन्य जातियो का धन खिच-खिच कर दस्तकार जाति में आ जाता है और वह धन-धान्य से सम्पन्न हो जाती है। दरिद्र जाति क्या कर सकती है? वह कैसे अपनी उन्नति कर सकती है? आजकल वही जाति उन्नत हो सकती है, आजकल वही जाति संसार में अपना सिक्का जमा सकती है, आजकल वही जाति अन्य जातियों की प्रतिष्ठा का पात्र हो सकती है, जिसने नाना प्रकार के उद्योग-धन्धो और कला-कौशल से अपने को धनाढ्य बना लिया है।

देशाटन भी जाति की उन्नति मे पर्याप्त योग देता है। जिस जाति में देशाटन का प्रेम पाया जाता है वह उन्नत देखी जाती है। किसी जाति के व्यक्ति भिन्न-भिन्न देशो मे भ्रमण करके

वहाँ की रीति-नीति, रहन-सहन, कला-कौशल आदि का परिचय प्राप्त करके काफी लाभ उठा सकते हैं। वे किसी देश की श्रेष्ठ समाज-व्यवस्था का अनुसरण कर सकते हैं, किसी देश की उत्तम राजनीति के आधार पर अपनी राजनैतिक परिस्थिति में सुधार कर सकते हैं, किसी देश के कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करके अपनी औद्योगिक उन्नति कर सकते है।

एकता उन्नति की जड़ है। जिस जाति में मनुष्य हिल-मिल कर रहेंगे, जिस जाति में ईर्ष्या, द्वेष और फूट के भाव न होंगे, वह जाति क्या कारण है कि उन्नति न करे? एकता अथवा पारस्परिक प्रेम में बड़ा बल है, बड़ी शक्ति है। वर्षा की छोटी-छोटी बूँदें मिलकर नदी की प्रबल धारा बन जाती हैं, और वह धारा बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ देती है तथा मिट्टी के विशाल टीलो को काटकर साफ कर देती है। तिनको से मिलकर बनी हुई रस्सी मतवाले हाथी को वश में कर लेती है। अतः यदि किसी जाति के मनुष्य प्रत्येक कार्य को मिल-जुल कर करें और आपस मे प्रेम का व्यवहार रक्खे तो वह जाति अवश्य बहुत शीघ्र उन्नति कर जाय। कहने की आवश्यकता नही कि पारस्परिक मेल-जोल से उन्नति के मार्ग की कठिनाइयों के गढ़ बड़ी जल्दी तोड़े जा सकते हैं।

जातीय कुरीतियाँ प्रत्येक जाति की उन्नति में बहुत बाधक होती है। जब तक उनका बहिष्कार नही किया जाता तब तक जाति किसी प्रकार उन्नति नही कर सकती। कुरीतियो से जाति की शक्ति कम होती है, कुरीतियो से जाति का पतन होता है। उससे जीवन दुःखमय होता है और समाज व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है।

सच्चरित्रता भी जाति की उन्नति का बहुत अच्छा साधन है। यह वह अद्वितीय सम्पत्ति है, यह वह अनुपम शक्ति है,

जिसके कारण मनुष्य अपना और अपनी जाति का उत्थान कर सकता है। जातीय जीवन मे इसका बड़ा महत्व है। जिस जाति में सच्चरित्रता का पाठ नहीं सिखाया जाता, जिस जाति मे बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं होता, जिस जाति में विद्वानो का आदर नहीं किया जाता, जिस जाति में शूरवीरों का सम्मान नहीं होता, जिस जाति में भलाई करनेवालों के प्रति कृतज्ञता नहीं प्रकट की जाती, जिस जाति में नीति और मर्यादा का उल्लंघन होता है, वह कैसे फूल और फल सकती है ?

सारांश यह है कि किसी जाति की उन्नति के लिए शिक्षा, दस्तकारी, देशाटन, एकता, कुरीतियो का बहिष्कार और सच्चरित्रता नितान्त आवश्यक हैं, जिस जाति में इनकी कमी है वह कभी ऊँची नहीं उठ सकती, वह सदैव अधोगति के गर्त मे पड़ी रहेगी। हमारी अवनत हिन्दू-जाति को देखिए। इसमें शिक्षा की कमी है। हम लोग अपने उद्योग-धन्धो और कला-कौशल को भूले हुए है, दरिद्रता और धर्म दोनो हमारे देशाटन के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। हममें फूट का आधिक्य है। बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, शूद्रो और स्त्रियो के प्रति अत्याचार आदि अनेक बातें हमारे समाज के कोढ़ हैं। हाँ, यदि हममें कोई श्रेष्ठता है तो वह सच्चरित्रता है जिसने अब तक हमारी रक्षा की है। हर्ष है कि कुछ दिनों से हमारी जाति में उन्नति के लक्षण दिखलाई दे रहे हैं आशा है हम लोग उन्नति के साधनो को जुटाकर शीघ्र से शीघ्र अपनी जाति का मुख उज्ज्वल कर सकेंगे।

उद्यान के आनन्द

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—उद्यान की आवश्यकता

(२) उद्यान के आनन्द—

(क) नेत्रों का आनन्द
(ख) कानों का आनन्द
(ग) नाक का आनन्द
(घ) जीभ का आनन्द

(३) उपसंहार—सारांश

जीवन में आनन्द देने के लिए जहाँ अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है वहाँ उद्यान की भी आवश्यकता है। कई वस्तुएँ तो ऐसी होती हैं जिनसे आनन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ लाभ नहीं होता। जैसे—चौपड़ आदि का खेल। पर उद्यान से आनन्द के साथ-साथ कई लाभ होते हैं। शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए व्यायाम के अतिरिक्त उद्यान से अच्छा कोई साधन नहीं। बालक हो अथवा वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, मनुष्य हो या पशु-पक्षी धनी हो या निर्धन, उद्यान की शुद्ध वायु से सबको स्वास्थ्य-लाभ होता है। उद्यान में घूमने से मस्तिष्क की थकावट दूर होती है। उद्यान के वृक्ष खाने के लिए फल देते हैं। चिन्ताओं को दूर करने के लिए भी उद्यान एक अच्छा साधन है।

उद्यान से नेत्रों को अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। हरे-भरे वृक्षों और लतिकाओं का वायु के साथ अठखेलियाँ करना कितना अच्छा लगता है! उद्यान के सरोवर मे लाल, पीले, नीले और सफेद कमल खिले रहते है। उनके चारों ओर काले-काले भ्रमर उड़ते रहते हैं। नीले जल पर हरे रंग की सेवार कितनी सुहावनी लगती है! जल में मछलियों की क्रीड़ाएँ नेत्रों को हर लेती हैं। रंग-विरंगे पुष्प उद्यान को जो शोभा प्रदान करते हैं वह केवल अनुभव करने की वस्तु है। लाल, पीली, हरी, गुलाबी भिन्न-भिन्न रंगो की तितलियाँ इधर-उधर उड़कर पुष्पो का रस लेती हैं। मधु-मक्खियाँ भी रस का संचय करती

हुई देखी जाती हैं। बसन्त ऋतु में उद्यान की निराली छटा हो जाती है। सभी वृक्ष और लताएँ पुष्पो को खिला-खिलाकर अपना हास्य प्रकट करती है। गुलाब, चम्पा, चमेली, बेला, मौलश्री, आम, नीम आदि वृक्ष नाना प्रकार के पुष्पों से अपने शरीर को अलंकृत करते है। सभी पेड़-पौधे नये-नये पत्तो से ढक जाते है। सभी पर एक नवीन आभा और सब में एक नवीन जीवन देखा जाता है। नेत्र जिस वृक्ष या जिस लता की ओर चले जाते हैं वही फँस जाते हैं। उन्हे अत्यन्त आनन्द मिलता है। चैत्र की चाँदनी मे उद्यान की शोभा कई गुनी बढ जाती है। घने वृक्षों की पत्तियो से छन-छन कर आती हुई चन्द्रिका कैसी अच्छी लगती है! पत्तो पर क्रीड़ा करता हुआ शुभ्र ज्योतसना का प्रकाश नेत्रो को बरबस अपनी ओर खीच लेता है। सरोवर के शान्त जल मे श्वेत चन्द्र का प्रतिबिम्ब अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि करता है। वर्षा ऋतु मे भी उद्यान अनूठी शोभा धारण कर लेता है। सकल पादप-पुंज हरे रंग में निमग्न हो जाते है। हरी-हरी दूब की नोकों से पृथ्वी अपना पुलक प्रकट करती है। दूब पर रेंगती हुई बीर-बहूटियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो हरी चद्दर पर माणिक टके हो। उद्यान में मयूरों का नृत्य, बन्दरो का खेल और पक्षियों की क्रीड़ाएँ नेत्रों को बडी अच्छी लगती है।

नेत्रों के अतिरिक्त उद्यान से कानो को भी कम आनन्द नहीं मिलता। कोयल की 'कुहू-कुहू', पपीहे की 'पिउ-पिउ' और मोर की मधुर ध्वनि श्रवणों में अमृत उँड़ेलती है। चिडियो की चहचहाहट कानों को बड़ी अच्छी लगती है। कही आम, जामुन आदि फल गिरने का 'टप टप' शब्द सुनाई पडता है। कहीं वायु के झकोरों से पेड़ो मे से तरह-तरह की ध्वनि निकलती है। बाँस के वृक्ष बाँसुरी बजाते हैं। कही कीश-मण्डली किलकारी

मारती हुई पेड़ों पर झूलती है। वर्षा ऋतु में रात्रि के समय झिल्लियों की झनकार और दादुरो की 'टर्र-टर्र' कानो को मधुर लगती है। हिंडोलो पर झूलती हुई लड़कियो का सरस गान कानों को वशीभूत कर लेता है। भौंरो की गुञ्जार और मधु-मक्खियों की 'भन-भन' सुनकर कानों को बहुत आनन्द होता है।

नाक को भी उद्यान से बड़ा आनन्द मिलता है। आम के मंजरी-विभूषित पेड के नीचे कुछ और ही सुगन्ध आती है और चम्पा के पुष्प-मज्जित वृक्ष के तले कुछ और ही। नीम का बौर कुछ और ही लपट देता है और मौलश्री के फूल कुछ और ही। महुआ के पुष्पो से कुछ और ही महक निकलती है और बेला के कुसुमो से कुछ और ही। गुलाब के फूल कुछ और ही सुगन्ध देते हैं और चमेली के पुष्प कुछ और ही। नासिका नाना प्रकार की सुगन्ध से मस्त हो जाती है।

उद्यान से जिह्वा को भी आनन्द मिलता है। उसे अनेक प्रकार के फल खाने को मिलते हैं। इच्छा हो आम का रस ले। इच्छा हो जामुन खाए। इच्छा हो अमरूद का आस्वादन करे। इच्छा हो केले खाए।

सारांश यह है कि उद्यान से नाक, जीभ, कानो और आँखों को बड़ा आनन्द मिलता है। इनके आनन्द से मन को आनन्द पहुँचता है। ये इन्द्रियाँ दुःख अथवा सुख को मन तक पहुँचाती हैं। अतः स्पष्ट है कि मन के लिए उद्यान आनन्द का अच्छा साधन है। यदि मन को कोई दुःख हो तो उसे दूर करने के लिए उद्यान का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। कोई भी ऋतु हो उद्यान से सदैव आनन्द मिलता है। कोई भी समय हो उद्यान से सर्वदा चित्त प्रफुल्लित रहता है।

विद्यार्थी को किन-किन गुणों की आवश्यकता है ?

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—विद्यार्थी का महत्त्व

(२) विद्यार्थी के गुण—

(क) अध्यवसाय और एकाग्रता

(ख) आत्म-संयम

(ग) विनय

(घ) आज्ञाकारिता

(ङ) अध्यापकों के प्रति आदर-भाव

(च) जिज्ञासा

(छ) व्यायाम-शीलता

(ज) मितव्ययता

(३) उपसंहार—हमारे देश के विद्यार्थी

विद्यार्थी पर देश की उन्नति निर्भर रहती है। विद्यार्थी अपने देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है, अपने ज्ञान और विकसित मस्तिष्क द्वारा वह अपनी जाति और देश में सुधार कर सकता है, सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों का अन्त कर सकता है, औद्योगिक और राजनैतिक दशा को अच्छी बना सकता है, ज्ञान के प्रसार में सहायता पहुँचा सकता है।

विद्यार्थी को भविष्य में श्रेष्ठ नागरिक बनने के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता है। उसे अध्यवसायी होना चाहिए। ज्ञान-प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन परिश्रम करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह पुस्तक पढ़ने का व्यसनी हो। जहाँ कहीं उसे विद्या मिले वहीं से उसे प्राप्त करे। नीच से विद्या लेने में विद्यार्थी की कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। किसी ने ठीक ही कहा है:—

उत्तम विद्या लीजए जदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौर में कंचन तजै न कोय ॥

जहाँ कहीं ज्ञान की एक किरण भी मिलने की आशा हो वहाँ जाने में विद्यार्थी को आलस्य न हो। वह व्याख्यान वाद-विवाद आदि से अपने ज्ञान-भण्डार को सदैव भरता रहे। मेहनती ऐसा हो कि बालू में से भी तेल निकाल सके। प्रातःकाल ४ बजे से अपनी पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ करे और रात्रि के १० बजे उसे समाप्त करे। जो बात समझ मे न आये उसे बार-बार पढ़े और समझने का प्रयत्न करे। कोई भी कठिनाई हो उसे अध्यापक से दूर कराए। जो कुछ पढ़ाया जाय उसे नित्य दुहरा ले। कक्षा मे अध्यापक जो बात बताएँ उन्हें एकाग्र चित्त से सुने और समझे। पढ़ते समय अपने ध्यान को इधर-उधर न जाने दे। उसे कौए के समान चेष्टा-शील, बगुले के समान ध्यानी और कुत्ते के समान नींदवाला होना चाहिए। कहा भी है :—

काक चेष्टा वकुल ध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थिम् पंच लक्षणम्॥

ऐसा होने से वह अपनी उन्नति करके संसार में नाम पैदा कर सकता है।

विद्यार्थी को आत्म-संयम के गुण की भी आवश्यकता है। बाल्यावस्था से लेकर यौवनावस्था तक का समय मनुष्य के लिए ऐसा होता है जबकि वह बन सकता है या बिगड़ सकता है। यही समय विद्योपार्जन का होता है। अतः विद्यार्थी को अपनी चित्तवृत्तियों को, अपनी इच्छाओं को, वश में करना चाहिए जिससे वह पतित न हो जाय। विद्या और आत्म-संयम का सम्बन्ध है। जो विद्यार्थी अपने मन पर नियंत्रण नहीं रखता, जो विद्यार्थी अपने मन को नहीं रोक सकता, वह विद्या नहीं प्राप्त कर सकता। जो कभी इच्छा होने पर सिनेमा-हॉल जायगा, कभी मेले की सैर करने भागेगा, कभी नाच देखने जायगा, कभी ताश, शतरंज

आदि खेलेगा, कभी गप-शप उड़ायेगा, कभी तमाशा देखने जायगा, वह क्या पढ़ेगा ? विद्यार्थी को एक योगी के समान होना चाहिए। तभी वह विद्योपार्जन में सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं। उसे चाहिए कि मन को अपने वश में करके उसे पढ़ने में लगाए। विद्याध्ययन को ही अपना आमोद-प्रमोद समझे।

विनय विद्यार्थी का आभूषण है। विद्या की शोभा विनय से होती है। प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिए कि वह विनम्र प्रकृति का हो। इससे वह अध्यापकों के स्नेह का, उनकी कृपा का, पात्र हो सकेगा। विनय वह शक्ति है जिससे मनुष्यों की क्या कहे, परमेश्वर भी प्रसन्न किया जा सकता है। अध्यापकों की कृपा से वह सरलता से विद्योपार्जन के कार्य में सफल हो सकता है। विनय विना विद्या नहीं प्राप्त की जा सकती।

विद्यार्थी को आज्ञाकारी भी होना चाहिए। अपने अध्यापकों की आज्ञा का वह उसी प्रकार पालन करे जिस प्रकार माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है। ऐसा करने से अध्यापक उससे सदैव प्रसन्न रहेंगे जिससे वह सरस्वती के प्रसाद का पात्र हो सकेगा। उनके आशीर्वाद से उसे जीवन में सफलता मिलेगी।

प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में अध्यापकों के प्रति आदर भाव होना चाहिए। क्या यह हमारा धर्म नहीं है कि जिस व्यक्ति से हम कुछ सीखते हैं उसे मस्तक नवाएँ ? क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि जो हमें मूर्ख से विद्वान् बनाए उसके प्रति श्रद्धा रक्खें ? बहुत से लड़के ऐसे होते हैं जो शिक्षकों की अवज्ञा करते हैं, उनका मजाक उड़ाते हैं और उनकी बुराई करते हैं। क्या वे कभी विद्या से विभूषित हो सकते हैं ? क्या विद्यादात्री उनसे प्रसन्न रह सकती है ? कदापि नहीं। ऐसे विद्यार्थी बार बार परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते हैं और अपना जीवन नष्ट करते हैं।

विद्यार्थी में जिज्ञासा होना भी नितान्त आवश्यक है। उसके

लिए उचित है कि वह अध्यापक से प्रश्न पूछ-पूछकर अपनी शंकाओं का समाधान करता रहे। जिस विद्यार्थी में ज्ञान की पिपासा सर्वदा रहती है, जिस विद्यार्थी मे कुछ-नकुछ नई बात जानने की इच्छा सदा रहती है, वही सच्चा विद्यार्थी है। ऐसा विद्यार्थी शीघ्र अपनी उन्नति कर सकता है। उसका ज्ञान-भंडार भी बहुत बढ़ जाता है। सफलता-देवी उसके द्वार पर खड़ी रहती है।

मस्तिष्क के कठिन परिश्रम से शरीर पर बुरा प्रभाव होता है। वह कमजोर हो जाता है। इसलिए विद्यार्थी को चाहिए कि शरीर को स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रखने के लिए कुछ-न-कुछ व्यायाम करता रहे। वह सर्वदा पुस्तकों का कीड़ा ही बना न रहकर यथा-शक्ति और यथारुचि खेल-कूद में भी भाग ले। ऐसा करने से उसके शरीर को तो लाभ पहुँचेगा ही साथ में उसका मस्तिष्क भी अच्छा रहेगा। बहुत से विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो रात-दिन किताबो पर चिपटे रहते है। वे न तो खेलते-कूदते हैं और न शुद्ध वायु मे पर्यटन करते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके मुख पीले पड़ जाते हैं, नेत्रों को चश्मे की आवश्यकता होती है और बार-बार उन्हें अजीर्ण की शिकायत होती रहती है।

विद्यार्थी को मितव्ययी होना चाहिए। यह देखा जाता है कि बहुत-से विद्यार्थी आजकल फैशन के गुलाम होकर अपने माँ-बाप के रुपये फूँकते हैं। सिनेमा, सिगरेट, नाच-रंग, क्रीम, पाउडर, तेल, इत्र, सूट, बूट आदि मे न जाने कितनी फिजूल-खर्ची करते हैं। क्या यह लज्जा की बात नहीं है? जिन पैसो को उनके माता-पिता पसीने की कमाई से एकत्रित करते हैं उनको व्यर्थ उड़ाने मे उन्हे शर्म नहीं आती? क्या विद्यार्थी की शोभा फैसन से होती है? विद्यार्थी की शोभा परीक्षा में उच्च से उच्च स्थान पाने में है, जिससे उसका नाम होता

है, उसका सन्मान होता है। विद्यार्थी को चाहिए कि वह कम से कम व्यय करके अपना काम चलाए और सादगी से रहे।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हमारे देश के विद्यार्थियों में उपर्युक्त गुण पाए जाते हैं? क्या वे सच्चे विद्यार्थी कहे जा सकते है? नहीं। हमारे ~~देश~~ पराधीन देश मे सभी प्रकार की अधोगति देखी जाती है। अतः यदि हमारे विद्यार्थी अधःपतित हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। जहाँ जापान के विद्यार्थी नियन्त्रण से रहते हैं वहाँ हमारे विद्यार्थी नियन्त्रण का उल्लंघन करने मे अपनी शान समझते हैं। स्कूल से छुट्टी होने पर सड़क पर जाते हुए जापानी विद्यार्थियो को देखिये। यहाँ की सी धक्का-मुक्की, हू-हुल्लड़ और गाली-गलौज का वहाँ नाम भी नहीं मिलेगा। यहाँ तो क्लास मे एक मिनट को भी अध्यापक चला जाता है तो क्लास में तूफान आ जाता है। आजकल हमारे विद्यार्थी उद्दण्ड भी देखे जाते हैं और अध्यापकों के प्रति उनके हृदय मे आदर-भाव नहीं होता। जहाँ अमरीका और जापान के विद्यार्थी स्वयं उद्योग करके अपना खर्च चलाते है वहाँ भारतवर्ष के विद्यार्थी अपने माता-पिता पर भार-स्वरूप होकर रहते है। इस प्रकार रहकर भी वे फैशन की गुलामी नहीं छोड़ते। हमारे विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भी दो कौड़ी का नहीं होता। हमे विश्वास है कि यदि हमारे विद्यार्थी उपर्युक्त गुणों को अपनाएँ तो उनकी दशा अवश्य सुधर जाय और वे अपने जीवन मे सफलता प्राप्त करें।

विज्ञान की उन्नति से हानि-लाभ

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का विस्तार

(२) विज्ञान की उन्नति से लाभ—

(क) स्थान की दूरी कम होना

(ख) समय के अन्तर में कमी
(ग) रोगों की चिकित्सा में सहायता
(घ) मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति
(ङ) मनुष्य की सुख-सामग्री में वृद्धि
(च) विद्या-प्रचार में योग

(३) विज्ञान की उन्नति से हानियाँ—

(क) जीवन-नष्ट के सरल साधन
(ख) मशीनों के बाहुल्य से बेकारी बढ़ना
(ग) मनुष्य की आवश्यकताओं की वृद्धि
(घ) मनुष्य में विलासिता और सांसारिकता का बढ़ना

(४) उपसंहार—विज्ञान का महत्व

यह वैज्ञानिक युग है। संसार के कोने-कोने में विज्ञान की दुन्दुभी बज रही है। चारों ओर वैज्ञानिक आविष्कारों तथा अनुसंधानों की धूम मची हुई है। आजकल विज्ञान का बहुत प्रचार है और दिन-दिन अन्यान्य विषयो मे उसका प्रवेश होता जा रहा है। इतिहास में विज्ञान का पर्याप्त प्रवेश हो चुका है। घटनाओं की परीक्षा विज्ञान की कसौटी पर की जाती है। समय का निश्चय भी विज्ञान के नियमों द्वारा किया जाता है। ज्योतिष-विज्ञान से ऐतिहासिक समय की जाँच की जाती है। चिकित्सा-क्षेत्र मे विज्ञान ने उलट-पुलट कर दी है। एक्स-रे इसी की देन है। धर्म को भी इसने प्रभावित किया है, उसके अंध-विश्वासों और ढकोसलो का अन्त कर दिया है। सारी प्रकृति विज्ञान का क्रीड़ा-क्षेत्र बनी हुई है। भौतिक-विज्ञान (Physics) और रसायन-विज्ञान (Chemistry) तो इसके प्रधान अंग हैं। वैसे जीव-जन्तु-विज्ञान (Zoology), वनस्पति-विज्ञान (Botany), खगोल-विज्ञान (Astronomy) ज्योतिष (Astrology)

आदि इसके कई अन्य अंग भी हैं। सारांश यह है कि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है।

विज्ञान की इस उन्नति से समाज को हानि हुई है या लाभ? विज्ञान की इस उन्नति ने मानव-समाज के सुख में वृद्धि की है या कमी? इसमें सन्देह नहीं कि संसार को विज्ञान से बहुत लाभ हुए हैं। विज्ञान ने स्थान की दूरी कम करदी है। रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि यात्रा के साधनो के कारण कोई भी स्थान दूर नहीं रह गया है। सबसे तीव्रगामी बुलैट है जिसमे बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारियाँ हो रही हैं। प्राचीन काल में इन साधनो के न होने से यात्रा में अनेक आपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। पर अब वे सब दूर हो गई हैं। आजकल तो विज्ञान के प्रताप से दूर से दूर स्थान भी घर आँगन हो गया है।

विज्ञान ने समय के अन्तर को भी कम करने के प्रयत्न किए हैं। ऐसी-ऐसी मशीनो के आविष्कार हुए हैं जो क्षण भर में मनुष्य की अपेक्षा कई गुना काम कर डालती है। समाचारों के पहुँचाने के लिए विज्ञान ने बडी अच्छी व्यवस्था की है। इस कार्य मे समय का अन्तर बहुत कम हो गया है। टेलीफोन द्वारा आगरे मे बैठा हुआ मनुष्य न्यूयार्क या लंदन मे बैठे हुए मनुष्य से उसी प्रकार बातचीत कर सकता है जैसे अपने निकट बैठे हुए मनुष्य से। एक की आवाज दूसरा सुनता है। समय के व्यतीत होने का पता ही नहीं चलता। बेतार का तार बात की बात मे एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार पहुँचा देता है। रेडियो से इंडलैण्ड के भाषण को आगरे में बैठे-बैठे सुन लीजिए। धन्य है विज्ञान जिसने ऐसी आश्चर्यजनक बाते कर दिखाई है।

प्राणियों की चिकित्सा में विज्ञान ने बहुत सहायता दी है। नित्य नई-नई औषधियाँ निकल रही हैं। मानव-शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन हो रहा है। इजेक्शन आदि चिकित्सा के नए

नए तरीके खोजे जा रहे हैं। एक्स-रे ने तो चिकित्सा-क्षेत्र में महान परिवर्तन कर दिया है। इससे शरीर के भीतरी से भीतरी भाग का ठीक-ठीक परिचय प्राप्त किया जा सकता है। मान लीजिए कोई बालक एक छोटा खिलौना निगल गया है और उसकी जान पर आ बनी है। एक्स-रे उस खिलौने का अनुसंधान करके उसकी जान बचाता है। कोढ़ का इलाज एक्स-रे से होता है। चीर-फाड़ के काम में भी विज्ञान ने पर्याप्त सहायता दी है। वस्तुतः शारीरिक पीड़ा और रोग को दूर करने के लिए इसने सराहनीय कार्य किए हैं।

मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ विज्ञान ने उसकी सुख-सामग्री में भी वृद्धि की है। नित्य काम मे आने वाली वस्तुओं को सस्ता करने वाला विज्ञान ही है। एक पैसे की पच्चीस सुइयाँ और दियासलाई की चालीस सींकें दिलानेवाला विज्ञान ही है। निब, बटन, कागज, पेंसिल, सुई, दियासलाई आदि प्रतिदिन के काम की वस्तुएँ विज्ञान ही देता है। धनिकों के सुख साधनों में विज्ञान ने बहुत वृद्धि की है। एक निर्धन मनुष्य भले ही ग्रीष्म-ऋतु में गरमी के मारे तड़पता रहे पर धनवान मनुष्य के लिए विज्ञान ने बिजली के पंखे का प्रबन्ध कर दिया है। एक गरीब भले ही अपने घर में टिम-टिमाता हुआ दीपक भी न जला सके पर धनिक के लिए विज्ञान ने बिजली के जगमगाते हुए उज्ज्वल प्रकाश का इन्तिज़ाम किया है। उनके सैर करने के लिए मोटर आदि सवारियों का निर्माण किया है। उसके मुँह की शोभा बढ़ाने के लिए सीजर की सिगरेटों और क्रीम-पाउडरों का प्रबन्ध किया है। उसके आमोद प्रमोद के लिए केमरा तथा तरह-तरह के वाद्य-यन्त्रों का विज्ञान द्वारा निर्माण हुआ है। हाँ, सिनेमा अवश्य ऐसा साधन है जिससे धनी अथवा निर्धन सभी का समान रूप से मनोरंजन होता है।

विज्ञान ने विद्या के प्रचार मे भी योग दिया है। यद्यपि विद्या-प्रचार मे बिना अध्यापको के पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती तो भी रेडियो ने इस कार्य मे पर्याप्त सहायता पहुँचाई है। कई देशों मे जनता को शिक्षित करने के लिए रेडियो का प्रयोग हो रहा है। रेडियो के स्टेशन पर विद्वानो से विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिलाए जाते है और वहाँ से उनको चारो ओर भेज दिया जाता है। यह विज्ञान का ही प्रताप है कि अंधे, बहरे और गूँगे शिक्षित किए जा रहे है। बलिहारी है विज्ञान की।

पर यह समझना भूल होगी कि विज्ञान से संसार को लाभ ही लाभ हुए है और हानियाँ कुछ भी नहीं हुई है। जहाँ विज्ञान ने मानव-समाज का कल्याण किया है वहाँ उसका अहित भी किया है। जहाँ उसका सदुपयोग हुआ है वहाँ उसका दुरुपयोग भी हुआ है। आजकल ऐसे-ऐसे प्राण-नाशक यन्त्र विज्ञान ने बनाए हैं जो क्षण भर में अगणित प्राणियो की हत्या कर डालते हैं। बन्दूक और रिवोल्वर को जाने दीजिए। मशीनगन और डाइनमाइट से गाँव के गाँव उजड जाते हैं। ऐसी-ऐसी गैस ईजाद हुई है जिनमे साँस लेते ही मनुष्य मर जाते हैं। धिक्कार है विज्ञान को जिसने हत्या के ऐसे उपाय निकाले हैं।

विज्ञान से दूसरी हानि यह हुई है कि मशीनो द्वारा क्रिया-शीलता के अनन्त गुनी हो जाने के कारण बेकारी बेतरह फैल गई है। एक मशीन सैकड़ों मनुष्यों के बराबर काम करती है। अतः जब से प्रत्येक कार्य क्षेत्र मे मशीनो का प्रवेश हो गया है तब से अगणित मनुष्यों की रोटियाँ छिन गई है। पहले प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करता था और पर्याप्त जीविका उपार्जन कर लेता था। पर अब मशीनों से सब घरेलू

उद्योग-धंधे उठ गए हैं। मशीनों की बनी हुई वस्तुओं की प्रतियोगिता मे हाथ की बनी हुई वस्तुएँ कैसे ठहर सकती हैं? यही कारण है कि आजकल बेकारी की समस्या भीषण रूप धारण किए हुए है।

विज्ञान से तीसरी हानि यह हुई है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गई हैं। मनुष्य की शान्ति और सुख के लिए यह आवश्यक है कि उसकी आवश्यकताएँ सीमित रहे। अतः उनके बढ़ जाने और पूर्ति न होने से मानव-समाज आज सुखी नहीं है।

विज्ञान से चौथी हानि यह हुई है कि मनुष्य अधिक सांसारिक और विलासप्रिय हो गए हैं, आत्मा भुला दी गई है। विज्ञान ने अपने चमत्कारो द्वारा मनुष्य को उनमे फँसा लिया है। संसार का रंग-रूप इतना आकर्षक हो गया है कि कोई उससे आकृष्ट हुए बिना नही रह सकता। बिजली का दमदमाता हुआ शुभ्र प्रकाश, बिजली का पंखा, मोटर, रेडियो, टेलीफोन, केमरा, टेलीविजन, क्रीम-पाउडर, सिनेमा आदि अनेक वस्तुओं ने संसार के सौन्दर्य में वृद्धि की है। विज्ञान ने इन्द्रियो के आनन्द के लिए ही ये साधन जुटाए हैं। इनसे वे शक्तिशाली तथा सजग हो गई हैं और मनुष्य को विलासिता की ओर ले जा रही है। आज कल संसार में मौज उड़ाना ही मानव-जीवन का उद्देश्य हो रहा है। Eat, drink and be merry अर्थात् 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' की ध्वनि से आज संसार गूँज रहा है। यदि कोई आत्मोन्नति-सम्बन्धी उपदेश देता है तो उसे कोई नहीं सुनता। धर्म के बन्धन ढीले पड़ गए हैं। मनुष्य उसके विरुद्ध आचरण करते हैं। वह धर्म जो एक दिन समस्त मानव-जाति पर अधिकार जमाए हुए था आज पैरों से कुचला जा रहा है, आज उद्दण्डता से तोड़ा जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान की उन्नति से जहाँ लाभ हुए हैं वहाँ हानियाँ भी हुई हैं। विज्ञान ने जहाँ जीवन को मधुर बनाया है वहाँ कटु भी बनाया है, जहाँ सुख के साधन जुटाए हैं वहाँ दुःख के भी साधन उपस्थित किए हैं। उसने सत्य की खोज में कारण कार्य सम्बन्ध द्वारा अनेक बातों को प्रकाश में लाकर मानव-जाति के ज्ञान का विकास किया है और सबसे बड़ा काम किया है सुधार और प्रगति की रूप-रेखा का विधान।

हिन्दू-समाज के दोष

रूप-रेखाः—

(१) प्रस्तावना—हिन्दू-समाज की पूर्व और वर्तमान दशा

(२) हिन्दू-समाज के दोष—

(क) स्त्रियों की दुर्दशा

(ख) शूद्रों की दुर्दशा

(ग) जाति-पाँति

(घ) वैवाहिक-कुरीतियाँ

(ङ) धार्मिक अन्ध-विश्वास

(३) उपसंहार—भविष्य

हिन्दू-समाज सभी गुणों से आज कैसा हीन है,
वह क्षीण और मलीन है आलस्य में ही लीन है।
परतन्त्र पद-पद पर विपद में पड़ रहा वह दीन है,
जीवन मरण उसका यहाँ अब एक दैवाधीन है॥

सचमुच हिन्दू-समाज की वर्तमान दशा बहुत गिरी हुई है। एक वह समय था जब हिन्दू-समाज विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में अपना सानी नहीं रखता था और एक यह समय है जब

इसमें इन सब बातो की शोचनीय दशा है। एक वह समय था जब हमारी जाति संसार की शिरोमणि थी और एक यह समय है जब इसका संसार मे तुच्छ स्थान है। एक वह समय था जब हमारा समाज अच्छे से अच्छे गुणो से विभूषित था और एक यह समय है जब इसे तरह-तरह के दोषो ने अपना घर बना लिया है।

हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा दोष स्त्रियो की दुर्दशा है। संसार मे शायद ही कोई ऐसा समाज हो जिसमें स्त्रियो की इतनी दुर्गति हो जितनी हिन्दू समाज मे है। न वे शिक्षित हैं और न उन्हे कुछ अधिकार हैं। उनकी स्थिति पुरुषों की काम वासना की तृप्ति के लिए ही है। वे पूर्णतया पुरुषो की गुलाम बनी हुई हैं। पुरुष उनके ऊपर अत्याचार करते हैं, उन्हें मारते-पीटते हैं, उनके साथ बलात्कार करते हैं, और वे अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं। उनमें पर्दे की कुप्रथा प्रचलित है जिससे उनका स्वास्थ्य खराब रहता है और वे अकाल ही काल के गाल में पहुँच जाती है। आभूषण-प्रियता से भी उन्हे हानि होती है। लुटेरे और डाकू कभी-कभी आभूषणो के साथ उनकी जान तक ले लेते हैं। बाल्यावस्था में ही उनको अपरिचित व्यक्तियों के गले मढ़ दिया जाता है जिससे अपरिपक्वावस्था में वे माता बन जाती हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर सदैव के लिये बुरा असर पड़ता है। हिन्दू-समाज में पुरुषवर्ग को तो एक पत्नी रहते भी अनेक शादी करने का अधिकार प्राप्त है, पर स्त्री-वर्ग के लिए भाँवर पड़ते ही यदि वैधव्य हो जाय तो भी सिवाय ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन व्यतीत करने के और कोई चारा नहीं। इसका परिणाम व्यभिचार होता है। हिन्दू-समाज में स्त्रियो को धनाधिकार भी नहीं है। नारी-जाति की ऐसी दुर्दशा से हिन्दू-समाज को भारी हानि हुई है। यदि अब भी उनकी दशा में सुधार न हुआ तो हमारा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो

जायगा। स्त्रियाँ माता-रूप में पुरुषों को बनाने वाली या बिगाड़ने वाली हैं।

हिन्दू-समाज में अन्य दोष शूद्रों की दुर्दशा है। हमारे समाज ने अपने इस अङ्ग की बड़ी उपेक्षा की है। इसको सड़ा-गला समझकर घृणा की दृष्टि से देखा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रों को छूते तक नहीं। उनको छूने से वे अपवित्र हो जाते हैं। क्या मांस और विष्टा तक खानेवाले जीव-जन्तु उनसे पवित्र है? यदि नहीं तो फिर क्यो उच्च कहलानेवाले लोग उन्हे स्पर्श करते हैं? क्यो शुद्ध भोजन करनेवाले शूद्र को छूने मे उन लोगों को आपत्ति है? धिक्कार है हिन्दू-समाज को। उच्चता के अभिमानी लोग शूद्रो को कुओं मे पानी नहीं लेने देते, मन्दिरो में घुसने नहीं देते, विद्यालयों में शिक्षा नहीं प्राप्त करने देते और सामाजिक उत्सवो मे सम्मिलित नहीं होने देते। इस प्रकार के अत्याचार शूद्रो के साथ सैकड़ो वर्षों से हो रहे हैं और वे शान्ति-पूर्वक सब कुछ सहे जा रहे हैं। धन्य है उनकी सहिष्णुता!

हिन्दू-समाज मे जाति-पाँति का दोष भी विद्यमान है। पहले तो आवश्यकता के कारण केवल चार जातियाँ बनी थीं पर अब असंख्य जातियाँ हो गई हैं। आजकल तो व्यवसाय के अनुसार जातियाँ बनती जा रही है। जो लोहे का काम करता है उसकी जाति लुहार हो गई है और जो सोने का काम करता है उसकी जाति सुनार हो गई है। शायद पढ़ानेवालो की भी भविष्य में पृथक् जाति बन जाय। प्राचीन काल मे जातियो की आवश्यकता थी—पर अब नहीं है। आजकल जाति-पाँति का झंझट हिन्दू-समाज को टुकड़ों-टुकड़ो मे विभक्त किए हुए है, एक समाज को कई समाजो मे बाँटे हुए है। इससे समाज की उन्नति में बड़ी बाधा हुई है। खान-पान का परहेज, विवाहों का संकुचित घेरा, छूआछूत आदि बातों से हिन्दू-समाज मे संगठन का अभाव है।

कभी-कभी जातियाँ पारस्परिक विद्वेष का भी कारण बन जाती है। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगो से शत्रुता रखने लगते हैं।

हमारे समाज में वैवाहिक कुरीतियाँ भी कई देखी जाती हैं। यह भी समाज का बड़ा दोष है। विवाह एक पवित्र संस्कार है। इसी पर गृहस्थाश्रम के सुख-दुःख अवलम्बित है। ऐसे महत्वपूर्ण संस्कार द्वारा जीवन भर के लिए बँधनेवाले दो व्यक्तियों—पुरुष और स्त्री—की इच्छा अनिच्छा का पता नही लगाया जाता। क्या पता लड़की उस लड़के को जिसके साथ उसका विवाह हो रहा है न चाहती हो? क्या पता लड़का उस लड़की को जिसके साथ उसकी शादी हो रही है न पसन्द करता हो? फिर दोनो में से प्रत्येक एक दूसरे की रुचि, स्वभाव आदि से अनभिज्ञ रहता है। ऐसी दशा मे माता पिता द्वारा दोनों का सदैव के लिए बाँधा जाना कभी-कभी कैसा अनर्थकारी होता है, यह सभी जानते होंगे। उनका गार्हस्थ-जीवन कलह-पूर्ण हो जाता है। वे तलाक द्वारा अपना सम्बन्ध-विच्छेद भी तो नहीं कर सकते। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह भी बुरे हैं। इनसे एक ओर विधवाओ की संख्या बढ़ती है और दूसरी ओर शक्तिहीन सन्तानो से समाज में बल-बुद्धि का ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त दहेज की कुप्रथा बड़ी निन्दनीय है। यह हमारे समाज का कलंक है। लड़की के माता-पिता लड़के के माता-पिता को बहुत धन देते हैं। इससे हमारे समाज में लड़कियो का जन्म बुरा समझा जाता है। कोई नहीं चाहता कि उसकी सन्तान लड़की हो। यह लिखते हुए हृदय काँपने लगता है कि कहीं-कही किसी-किसी जाति में लड़की का जन्म होते ही उसकी हत्या कर दी जाती है। धिक्कार है हिन्दू-समाज को। अपने ही दोष के कारण निर्दोष बालिका का प्राण लेता है। लड़की कब चाहती है कि उसके विवाह में दहेज दिया जाय? यह

हमारे समाज का ही दोष है कि यहाँ दहेज की कुप्रथा प्रचलित है। विवाह में लड़कीवाला और लड़केवाला दोनो अन्धे होकर धन व्यय करते है। ऋण लेकर भी विवाह किये जाते हैं जिससे सत्यानाश की नींव पड़ती है।

हिन्दू-समाज में धार्मिक अन्ध-विश्वास और ढकोसले भी बहुत हैं। लोग बिना विचार किये हुए धर्म-सम्बन्धी अनेक बातो मे विश्वास करते हैं। उनकी सत्यता की ढूँढ-खोज नही करते। वे चन्द्र-ग्रहण अथवा सूर्य-ग्रहण को राहु राक्षस द्वारा चन्द्रमा अथवा सूर्य देवता का ग्रसना समझते हैं और ग्रहण के समय चन्द्र अथवा सूर्य की मुक्ति के लिये भगवान की पूजा और दान-पुण्य करते हैं। यह धार्मिक अन्ध-विश्वास नहीं तो क्या है? ग्रहण की सत्यता तो यह है कि चन्द्रमा अथवा सूर्य पर पृथ्वी की छाया पडती है। रोग का कारण देवताओ का प्रकोप समझा जाता है। इस प्रकार के अनेक अन्ध-विश्वास हमारे समाज में प्रचलित हैं। धर्म के ढकोसलों के कारण कितने पाखंडी साधुओं की पूजा होती है! ये साधू कुछ काम-काज नही करते और समाज पर भार-स्वरूप है। अनेक देवी-देवताओ की आराधना की जाती है। उनकी सन्तुष्टि के लिए बलि चढ़ाई जाती हैं। भोपो, पीरों और सयानो से गंडे तथा तावीज बनवाकर उनके द्वारा देवी-देवताओं को प्रसन्न करके रोगो की मुक्ति के प्रयत्न किये जाते है।

सारांश यह है कि हिन्दू-समाज में अनेक दोष है जिनमें उपयुक्त दोष प्रधान हैं। हर्ष का विषय है कि शिक्षा के प्रचार से हमारा समाज दिन प्रतिदिन दोष-मुक्त हो रहा है और हमे आशा है कुछ दिनों में यह अपने कलंकों को धोकर संसार मे अपना मुख उज्ज्वल करेगा।

'साँच बरोबर तप नहीं झूंठ बरोबर पाप'

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—सत्य और झूंठ के स्वरूप

(२) सत्य बड़ा तप है—

(क) पवित्रता और आत्मोन्नति

(ख) चरित्र-निर्माण

(ग) प्रतिष्ठा और सुख

(३) झूंठ बड़ा पाप है—

(क) आत्मिक पतन

(ख) चरित्र-भ्रष्टता

(ग) निन्दा और दुःख

(४) कुछ सत्यवादी व्यक्तियों के उदाहरण

(५) उपसंहार—हमें सत्यवादी होना चाहिए

किसी बात को जिस रूप में देखा या सुना या अनुभव किया जाय उसे उसी रूप मे कह देना सत्य बोलना कहलाता है और उसी रूप मे न कहना झूंठ बोलना कहलाता है। सत्य में यथार्थता रहती है और झूंठ में वास्तविकता का अभाव रहता है।

यह कहना, कि सत्य के बराबर अन्य कोई तप और झूंठ के बराबर अन्य कोई पाप नहीं है, अत्युक्ति मात्र है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि सत्य बड़ी तपस्या है और झूंठ बड़ा पाप है। सत्य की सुरसरी में अवगाहन करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। उसके हृदय की कलुषता जाती रहती है। आत्मा को शान्ति मिलती है। तपस्वी कभी-कभी अपने पद से गिर भी जाता है पर सत्यवादी कभी पदच्युत नहीं होता। सत्य बोलने से आत्मा उत्तरोत्तर उच्चता की ओर अग्रसर होती है और सत्य-स्वरूप भगवान में लय हो जाती है।

तप की भाँति सत्य बोलने से चरित्र का निर्माण होता है, नियंत्रण की भावना दृढ़ होती है, चित्त-वृत्तियों का निरोध होता है। सत्यवादी का स्वभाव सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। उसमें निडरता, साहस, सहनशक्ति, त्याग, धैर्य आदि गुण पाये जाते हैं। इन गुणों से वह संसार का बहुत हित करता है। महात्मा गांधी को ही देखिये, सत्य बोलने के कारण उनका स्वभाव कितना अच्छा हो गया है! संसार का उन्होंने कितना अधिक हित किया है।

तपस्या समान सत्य से संसार मे प्रतिष्ठा और सुख मिलता है। जैसे तपस्वी का, साधु-महात्मा का, मनुष्य सम्मान करते हैं वैसे ही सत्यवादी का भी स्थान-स्थान पर आदर होता है है। जहाँ-कही वह जाता है वहीं झोपड़ी से लेकर महल तक के रहने वाले उसे अपने मस्तक नवाते है। सत्यवादी का जीवन सुखी रहता है। अन्य लोग जिसे दुःख समझते हैं सत्यवादी उसे दुःख नही समझता। वास्तव में साधारण मनुष्यो से वह बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसके दुःख-सुख साधारण मनुष्यो के दुःख-सुखो से भिन्न होते है।

जिस प्रकार सत्य बोलना बड़ी तपस्या है उसी प्रकार झूंठ बोलना बड़ा पाप है। इससे आत्मिक पतन होता है, आत्मा की शक्ति कम हो जाती है। मिथ्या भाषण से आत्म-वंचना होती है, आत्मा को दबना पड़ता है। धीरे-धीरे वह मृतप्राय हो जाती है। यही दशा पाप करने से होती है।

आत्मा के मृतप्राय होने से चरित्र भ्रष्टता आती है। मनुष्य को भले काम मे संलग्न करने वाली आत्मा होती है और वही उसे बुरा कार्य करने से रोकती है। प्राय: लोग कहा करते हैं— भाई, इसे करने के लिए हमारी आत्मा सम्मति नहीं देती, यह काम बुरा है। जब आत्मा मर सी जाती है तब मनुष्य को कोई रोकने वाला नहीं रहता और वह बुरे-बुरे कार्य करने लगता है

जिससे उसका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है, उसमें बुरे से बुरे दोष अपना अड्डा जमाते हैं।

पापी की तरह झूंठ बोलने वाले की संसार में निन्दा होती है। उससे सब लोग घृणा करते हैं। कोई उस पर विश्वास नही करता। स्थान-स्थान पर उसे नीचा देखना पड़ता है। मनुष्य-मनुष्य की उसे दुतकार और फटकार सहनी पड़ती है जिस घर मे वह पैदा होता है उसे कलंक लगता है। झूंठ बोलने वाला सदैव दुःखी रहता है। यदि कभी झूंठ बोलकर वह सुख भी पा ले तो अन्त में उसकी कलई खुले बिना नहीं रहती। फिर उसकी बड़ी दुर्दशा होती है।

हमारे देश में कई सत्यवादी व्यक्ति हुए हैं जिनका यश मयंक आज तक विश्व को आलोकित कर रहा है। महाराज हरिश्चन्द्र के नाम को कौन नहीं जानता ? उन्होंने सत्य पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, यहाँ तक कि स्वयं चांडाल के हाथ बिके। अपनी इस महान तपस्या के फल-स्वरूप वे निःसंदेह स्वर्ग जाने के अधिकारी हुए। महाराज दशरथ के लिए सत्य प्राणों से भी अधिक प्यारा था। उसके लिए उन्हें पुत्र-वियोग सहना पड़ा और अन्त मे प्राण छोड़ने पड़े। आजकल महात्मा गांधी सत्य के पुजारी है। सत्य की आराधना करके उन्होंने अपनी आत्मा को बहुत उन्नत कर लिया है और विश्व भर मे अपनी धाक जमा ली है। यह उनके सत्य रूपी तप का ही प्रभाव है कि संसार उनका इतना आदर करता है।

अतः हमे चाहिए कि हम सत्यवादी बने। तभी हम ईश्वर की सच्ची भक्ति, सच्ची तपस्या, कर सकते हैं। तभी हम संसार में आचरण की सभ्यता प्राप्त कर सकते हैं। तभी हम विश्व में प्रतिष्ठा के पात्र हो सकते हैं। वस्तुतः सत्य बोलना तप है, झूंठ बोलना पाप। सत्य ईश्वर से मिलाने वाली है, झूंठ नरक के कुत्तों

से। सत्य से उत्थान होता है, झूंठ से पतन। सत्य अमृत है, झूंठ विष। सत्य जीवन है, झूंठ मृत्यु।

स्वावलम्बन

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—स्वावलम्बन का महत्व
(२) स्वावलम्बन से लाभ
 (क) उन्नति
 (ख) सुख और शान्ति
 (ग) आत्म-संस्कार
 (घ) यश
(३) स्वावलम्बन से देश तथा समाज का हित
(४) कुछ स्वावलम्बी व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसंहार—हमें स्वावलम्बी होना चाहिए

स्वावलम्ब की एक झलक पर,
 न्यौछावर कुबेर का कोष।

सचमुच स्वावलम्बन एक स्वर्गीय गुण है। जिसमें यह गुण है उसके सम्मुख कुबेर का कोष तुच्छ है। जिसमें यह गुण है। उसके सामने कठिनाइयों के पहाड़ चूर-चूर हो जाते हैं। जिसमें यह गुण है वह जल मे तूँबी के समान सबके ऊपर रहता है। शरीर-बल, सैन्य-बल, प्रभुता-बल, कुलीनता-बल, धन बल, मित्र-बल इत्यादि जितने बल हैं वे स्वावलम्बन के बल के आगे सभी फीके पड़ जाते हैं। अमरीका, जापान, इंगलैंड आदि देश जिनके भाग्य का सितारा आज सातवें आसमान पर चमक रहा है, जो आज मनुष्य-जाति के सिरताज हो रहे हैं, स्वावलम्बन के कारण ही इतने ऊँचे उठे हैं। भारतवर्ष की जो वर्त्तमान अधोगति

देखी जाती है उसका उत्तरदायित्व स्वावलम्बन के अभाव पर ही है। आजकल हम आलसी बन कर परमुखापेक्षी हो गए है।

'God helps those who help themselves. अर्थात् ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। स्वावलम्बन उन्नति का सच्चा रहस्य है, उन्नति की दृढ़ भित्ति है, उन्नति की कुंजी है। जो मनुष्य अपने हाथों से अपना कार्य करता है वह अवश्य ऊँचा उठता है जो मनुष्य भाग्य पर ही रहता है वह अपनी दशा मे कुछ भी सुधार नहीं कर सकता, प्रत्युत उसका अधःपतन होता है। संसार में ऐसा कौनसा कार्य है जिसे स्वावलम्बी व्यक्ति न कर सके? संसार मे ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे वह प्राप्त न कर सके?

उन्नति के साथ-साथ स्वावलम्बन की शरण में जाने से मनुष्यको सुख भी मिलता है। जब किसी कार्य में स्वावलम्बन द्वारा सफलता मिलती है तब हृदय उल्लास से भर जाता है और यदि सफलता नहीं भी मिलती तो इस बात का सन्तोष रहता है कि हमने अपना कर्तव्य किया और परिश्रम से मुख नहीं मोड़ा। इससे शान्ति मिलती है। स्वावलम्बी व्यक्ति का जीवन सदैव सुखी रहता है। उसे न तो रोटी की समस्या सताती है और न वस्त्रों की। जो अपने पैरों पर खड़ा होगा, जो अपने हाथों से खूब काम करेगा, वह क्या कभी भूखा या नंगा रह सकता है? दुःखी तो वही रहेगा जो दूसरों का मुँह ताकेगा, जो अपने हाथ-पैर नही हिलाएगा।

स्वावलम्बी मनुष्य अपना आत्म-संस्कार भी कर सकता है। वह परिश्रम की अग्नि से अपनी आत्मा को स्वर्ण की भाँति निखार सकता है। आत्म-निर्भरता से आत्म-दमन, दृढ़ता, धैर्य, अध्यवसाय आदि उत्कृष्ट गुणों की प्राप्ति होती है जिससे मनुष्य

अपनी आत्मा का उत्तरोत्तर विकास करता हुआ अपना कल्याण करता है ।

स्वावलम्बी व्यक्ति की प्रशंसा होती है । वह कठिन से कठिन कार्य सम्पादन करने में कृतकार्य होता है । अतः संसार उसका लोहा मानता है । वह अपने वाहु-बल एवं मस्तिष्क के सहारे अनुपम उन्नति कर दिखाता है । इससे लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । और वे उसका आदर करते हैं । माता-पिता अपने बालकों को उसका अनुकरण करने की शिक्षा देते हैं ! आजीवन तो वह प्रशंसा का पात्र रहता ही है, मृत्यु पश्चात् भी उसकी यश-चन्द्रिका विश्व में अपना निर्मल तथा सुशीतल प्रकाश फैलाती है ।

यही नहीं कि स्वावलम्बन से मनुष्य अपना ही भला कर सकता है, अपना ही हित-साधन कर सकता है, वरन् वह देश और समाज की दशा भी सुधार सकता है, देश तथा समाज का मुख उज्ज्वल कर सकता है । बड़े-बड़े वैज्ञानिक कौन पैदा करता है ? बड़े-बड़े सुधारक कौन उत्पन्न करता है ? बड़े-बड़े विद्वानों को कौन जन्म देता है ? बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का जनक कौन है ? स्वावलम्बन, स्वावलम्बन, स्वावलम्बन । कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं व्यक्तियों से समाज और देश उन्नत एवं समृद्धशाली बनते हैं । अमरीका, इंगलैण्ड, जापान आदि देश इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

विश्व का इतिहास स्वावलम्बी आत्माओं की गौरवपूर्ण गाथाओं से जगमगा रहा है । नैपोलियन के नाम को कौन नहीं जानता ? कैसी निम्न स्थिति से ऊपर उठकर वह महान विजयी हुआ ! रैमजे मैकडानल्ड भी मजदूर से इङ्गलैण्ड का प्रधान मंत्री बन गया । आजकल हिटलर भी स्वावलम्बन के महामन्त्र से अभिमन्त्रित होकर बड़ी-बड़ी शक्तियों के छक्के छुड़ा रहा है ।

हमारे देश में भी शिवाजी ने अपने पैरों पर खड़े होकर मुगल-सम्राट औरंगजेब को नाक चने बिनवा दिए। महात्मा गांधी को देखिए। आत्म-निर्भरता के प्रबल प्रताप से उन्होंने विश्व को हिला दिया है। संसार भर की आँखें उनकी ओर लगी हुई हैं।

सारांश यह है कि प्रत्येक देश या जाति में बल, गौरव, समृद्धि आदि के आने का सच्चा द्वार स्वावलम्बन है। हम लोगों में इस दिव्य गुण का अभाव है। हमारी वर्तमान दुर्गति इसीका परिणाम है। हम अपने आप अपने पैरो पर नहीं खड़े होते, हम अपने आप अपनी सहायता नहीं करते। यही कारण है कि हम पराधीन हैं, हम दरिद्र हैं। न हममें बल है न हम में शक्ति है। हमें चाहिए कि हम आलस्य और दैव-अधीनता का परित्याग करके स्वावलम्बन का महामन्त्र जपें, जिससे हमारा देश बल, विद्या और धन से सम्पन्न हो और हम स्वतन्त्र वायु-मण्डल में सांस लें।

किसी रमणीक स्थान का वर्णन

(श्रीनगर)

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—प्रकृति-सौन्दर्य और काश्मीर
(२) श्रीनगर
(३) शंकराचार्य नामक पर्वत का शिव-मन्दिर
(४) प्राचीन मन्दिर और मसजिदें
(५) डल झील
(६) शालामार और निशात-बाग
(७) उपसंहार—सारांश

काश्मीर पृथ्वी का स्वर्ग है। वहाँ प्रकृति का रम्य-रूप किसके मन को मोहित नहीं करता? वहाँ सूर्य की किरणों से चमकते

हुए हिमाच्छादित शैल-शृङ्गों में, जल-प्रपातों से निनादित वन-प्रदेशो मे, मंजु छवि-पुंज कूंजो में, विमल जल-राशि के कमनीय कलेवरो मे,. मनोरम उद्यानो मे इतनी सामर्थ्य है कि वे दर्शक के नेत्रों को बरबस अपनी ओर खींच लेते है। काश्मीर में जहाँ देखिए वहीं सौन्दर्य का साम्राज्य है। प्रकृति-नायिका चारो ओर मुसकरा रही है।

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर बड़ी सुन्दर है। वह वितस्ता (झेलम) के किनारे पर बसी हुई है। नदी के दोनों तटों पर मकान हैं। नदी का प्रवाह बडा टेढ़ा-मेढ़ा है जिससे वह देखने मे बड़ी सुन्दर लगती है। उसमें इधर-उधर घूमती हुई नावों के दृश्य मन को हरते है। उसके किनारे बाँध बनाकर क्लब और अतिथि-घर बनाए गए है। वहाँ पर बहुत-सी दुकानें हैं। श्रीनगर में सात पुल हैं जो आजकल जीर्ण शीर्णावस्था में हैं। शहर में पर्याप्त गन्दगी रहती है। मकान लकड़ी के छोटे-छोटे बने हैं। दुकानों पर मांस बहुत बिकता है। इसका कारण मुसलमानों की ६५ फी सदी आबादी है। शहर का भीतरी भाग कुछ भी आकर्षक नहीं। शहर के प्रायः सभी सुन्दर स्थान बाहर की ओर हैं। हाँ, नगर के मध्य में राजा का महल अवश्य सुन्दर है। शहर के ऊपरी भाग मे लालमण्डी नामक स्थान पर पुस्तकालय और अजायबघर हैं। पुस्तकालय साधारण हैं। अजायबघर अच्छा है और उसमें काश्मीरी कला-कौशल के सुन्दर नमूने देखे जा सकते हैं। श्रीनगर में एक कालेज भी है जिसे श्रीप्रताप कालेज कहते हैं।

नगर के समीप शंकराचार्य नामक पर्वत है। उस पर्वत पर एक बड़ा मनोहर शिव-मन्दिर बना हुआ है। उस पर्वत से एक ओर बर्फ से ढके हुए गिरि-शृङ्गों का दृश्य और दूसरी ओर नागिन की भाँति बल खाती हुई झेलम को देखकर कौन हर्षित न होगा? एक ओर श्रीनगर शहर और दूसरी ओर डल झील

किसके मन को न मोह लेगी? शिव-मन्दिर बहुत प्राचीन है। उसकी इमारत तो अधिक सुन्दर नहीं, पर पहाड़ के नीचे चारों ओर के दृश्य उसे अनुपम छवि प्रदान करते है। उस मन्दिर में केवल हिन्दू ही जा सकते है।

श्रीनगर एक प्राचीन नगर है। उसमे हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियो की संस्कृति का मेल पाया जाता है। वहाँ बहुत-से प्राचीन मन्दिर और मसजिदें है। शङ्कराचार्य पर्वत के नीचे शङ्कर मठ है। उसे श्री शङ्कराचार्यजी ने स्थापित किया था। उस स्थान को दुर्गानाग मन्दिर भी कहते हैं। श्रीनगर के चौथे पुल के पास नदी के दक्षिणी किनारे पर महा-श्री का मन्दिर है। उस मन्दिर के पाँच शिखर हैं। अब वह मन्दिर श्मशान हो गया है। तीसरे पुल के निकट शाहहमदन की मसजिद है। वह देवदारु की लकड़ी से बड़ी सुन्दर बनी है। उस मसजिद के एक कोने में पानी का एक सोता है। कहते है कि वह एक हिन्दू-मन्दिर को तोड़कर बनाई गई थी। नूरजहाँ का बनवाई हुई एक पत्थर की मसजिद भी है। उसमे कोई मुसलमान नमाज नहीं पढ़ता क्योंकि उसे स्त्री ने बनवाया था। शहर के पास हरिपर्वत नामक एक पहाड़ी है। उस पर देवी का मन्दिर बना हुआ है। पहाड़ी के पूर्वी भाग पर मुसलमानो की जियारते है जो मन्दिरो को तोड़ कर बनाई गई है। पहाड़ी के दक्षिण भाग मे एक शिला पर गणेशजी की मूर्ति बनी हुई है।

डल झील का दृश्य बड़ा मनोहर है। उसके किनारो पर चिनार और बेंत के वृक्ष लगे हैं। इधर-उधर हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों का दृश्य बड़ा अच्छा लगता है। जल मे वृक्षावली और शिखरो के प्रतिबिम्ब नेत्रो को आनन्द देते हैं। दर्पण के समान निर्मल जल मे जलचरो की क्रीड़ाएँ सुहावनी लगती है। गुलाबी कमल-समूह से झील की धारा-सुशोभित हो जाती है। पत्तो के

साथ मोती के समान जल-बिन्दुओं का खेल मन को रिझाता है। प्रातःकाल किसी नाव में बैठकर कमलो की सुगन्ध से सुगन्धित और प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित डल के वृक्षःस्थल पर सैर कीजिए। फिर देखिए कैसा अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। झील मे नर-नारियो की जल-क्रीड़ाएँ भी देखी जाती हैं। जल पर तैरते हुए हरे-भरे खेत बड़े मनोरंजक हैं। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय डल में अद्भुत शोभा देखी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य झील में अपना सौन्दर्य देख-देखकर गुलाबी हास्य हँस रहा है। चाँदनी रात्रि में तो झील का वक्षःस्थल अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि करता है। चन्द्रमा और नक्षत्रो से युक्त नीले आकाश का प्रतिबिम्ब श्वेत जल मे अनिर्वचनीय छटा प्रदर्शित करता है।

श्रीनगर मे शालामार और निशात-बाग की शोभा दर्शनीय है। श्रीनगर शहर के समीप डल झील के तट पर उन उपवनों की समानता करने वाले उद्यान ससार भर में अन्य किसी स्थान पर नहीं हैं। शालामार उद्यान की रचना मुगल सम्राट जहाँगीर ने अपने आमोद-प्रमोद के लिए की थी। उसमें फव्वारो और कृत्रिम जल-प्रपातो की शोभा बड़ी अच्छी है। सम्राट जहाँगीर जब काश्मीर जाता था तब शालामार मे ही निवास करता था। शाहजहाँ ने इसमें काले संगमरमर की एक बहुत ही सुन्दर बारहदरी बनवाई थी जो अब तक देखी जाती है। वह हरे-भरे वृक्षों, चाँदी सी श्वेत जल-धाराओं और फव्वारो से आच्छादित बड़ी रमणीक लगती है। उद्यान अत्यन्त चित्ताकर्षक है। वृक्षावली, मुकुलित पुष्प-राशि, लता वितान, पक्षियो का कलरव, जल-प्रताप, फव्वारे, इमारतें देखकर मन को जो आनन्द होता है वह वर्णन नहीं किया जा सकता। आसपास के प्राकृतिक दृश्य उसकी सौन्दर्य-वृद्धि करते हैं। पहाड़ों की हिमाच्छादित चोटियाँ और डल झील उसे घेरे

हुई हैं। निशात बाग भी शालामार की तरह डल झील पर ही स्थित है। उसे नूरजहाँ के भाई आसफखाँ ने बनाया था। उसमें भी अनेक जल स्रोत और फव्वारे हैं जिनसे उद्यान की शोभा कई गुनी बढ़ गई है। वृक्ष, लतादि का निराला ही आकर्षण है। पर वह शालामार के समान सुन्दर नहीं है।

सारांश यह है कि श्रीनगर भारतवर्ष का ही नहीं विश्व का एक रमणीक स्थान है। वहाँ के उद्यान, वहाँ की झील, वहाँ की नदी, वहाँ के गिरि-शृङ्ग, वहाँ के स्त्री-पुरुष, सभी सुन्दरता की मूर्त्तियाँ हैं। पाठकजी ने श्रीनगर की शोभा के बारे में क्या कहा है, देखिए—

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै।
पुलिन-भौन-प्रतिबिम्ब सलिल-शोभा मन मोहै॥
लसत 'कदल' पुल सप्त, चपल नौकागनि डौलैं।
रूपरासि नर नारि वारि बिच करत कलोलैं॥

बूढ़े का विनोदपूर्ण वर्णन

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—मनुष्य की तीन अवस्थाएँ
(२) बूढ़े का शरीर
(३) बूढ़े के वस्त्र
(४) बूढ़े का स्वभाव, चेष्टाएँ आदि
(५) उपसंहार—बूढ़ा विनोद की सामग्री है

मनुष्य की तीन अवस्थाएँ होती हैं—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। तीनों मे मनुष्य की आकृति विभिन्न हो जाती है। जब वह बालक होता है तब उसके मुख से लार बहती है और नाक से रेंट निकलता है। शरीर कभी धूल-कीचड़ में लिपटा रहता है और कभी वस्त्राभूषणमें सुसज्जित। कभी मुख मे दही-

चावल लिपटे रहते हैं और कभी दाल साग। युवावस्था में मनुष्य की आकृति अच्छी हो जाती है। न तो मुख गदा रहता है और न शरीर। शारीरिक गठन से उसमे सुन्दरता आ जाती है।

वृद्धावस्था में फिर शरीर मे परिवर्तन होता है। वह सूखकर ठूँठ जैसा हो जाता है। नसें ताँतों का रूप धारण कर लेती हैं। चमडा हड्डियों से चिपट जाता है मानो उसे यह भय है कि कहीं अन्तिम समय मे बहिनो से साथ न छूट जाय। बाहे और टाँगें मरहरी के बाँसों से ईर्ष्या करने लगती हैं। खोपड़ी पर यत्र तत्र सफेद बालों के समूह जंगल मे सूखी घास के स्थल से प्रतीत होते हैं। शरीर की झुर्रियाँ साड़ी की सिलवटें सी लगती है। जब खोपडी के बाल छिल जाते है तो वह म्यूनिसिपैलिटी की सपाट सड़क हो जाती है। दाढ़ी ऐसी लगती है मानो चूहो ने चुन ली हो। मूँछें मुख-गृह के दो छप्पर अथवा फूले हुए काँस की दो अवलियाँ हैं। आखे गुफा मे घुसकर तपस्या करती है। दाँत-रहित मुख क्या है पिचकी हुई फूटबॉल है। जब बुड्ढा कुछ खाता है तब उसके मुख की शोभा का क्या कहना ? साक्षात बन्दर लगता है। डगमगाती हुई गर्दन नाचती हुई और हाव-भाव दिखाती हुई नायिका को भी मात करती है। नाक और ठुडी को मिलाने के लिए मुख रास्ता साफ कर देता है। उसके भीतर धँसने से दोनो बहिनें बे-रोक-टोक मिलती है। कमर झुककर संसार को प्रणाम करती है। वह इन्द्र धनुष अथवा द्वार की मेहराब-सी बन जाती है। मुख से लार बहती है जो ऐसी प्रतीत होती ह मानो हिमालय से गंगा की धार निकल रही हो। सारा शरीर ऐसा लगता है जैसा आग की लपटो से झुलसा हुआ मैदान का वृक्ष।

बूढ़े के वस्त्र भी अनोखे होते हैं। घुटनों तक की सफेद धोती से ढकी हुई टाँगे ऐसी लगती हैं मानो मकान के खम्भो को आधा-आधा सफेदी से पोत दिया गया हो। अँगरखा ऐसा प्रतीत

होता है मानो कठपुतली का सफेद कपड़े का घाँघरा है। पगड़ी का तो कहना ही क्या? सिर पर ऐसी लगती है जैसी हिमालय की चोटी पर बर्फ अथवा घसियारे के सिर पर घास की पोटली। बुड्ढे का वस्त्राभूषित शरीर शहर का घण्टाघर सा लगता है।

बूढ़े का स्वभाव चिड़चिड़ा होता है। बात-बात पर वह चिढ़ जाता है। जिस समय वह चिढ़ता है उस समय की उसकी आकृति दर्शनीय है। मुख का विचित्र रूप हो जाता है। वह भिड़ों का छत्ता सा लगता है। बैठी हुई आँखों से अग्नि की सी चिनगारियाँ निकलती हैं। ओठ लत्तों के समान लपालप हिलने लगते हैं। बूढ़े में तृष्णा ऐसी जोरदार होती है जैसे वर्षा ऋतु मे नदी। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। बुद्धि काम नहीं करती। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। पोपले मुख से बार-बार प्रयत्न करने पर भी स्पष्ट शब्द नहीं निकलते। वाणी ऐसी कर्ण-कटु होती है जैसे फटे बाँस की ध्वनि। बुड्ढा लठिया के सहारे इस प्रकार चलता है जिस प्रकार रेतीले मार्ग में छकड़ा। सदा खखारता हुआ ऐसा प्रतीत होता है जैसा भप्-भप् करता हुआ स्टीम-एंजिन। रात्रि में जगाने के लिए उसका खखारना घड़ी के अलार्म का काम करता है।

निस्सन्देह बूढ़ा संसार के विनोद की अच्छी सामग्री है। बूढ़े की आकृति और चेष्टाएँ देखकर किसे हँसी न आएगी? अतः इस दृष्टि से वृद्ध पुरुष से मनुष्य समाज का काफी हित होता है। बूढ़े का वर्णन मनुष्यो का मनोरंजन करता है। देखिए—

दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै बिन दाँतन मुहुँ अस पोपलान।
दाढ़ी पर बहि बहि आवति है कबौं तमाखू की फाँकन॥

बारि पाकिगै रीरौ झुकिगै मूड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन केहि के आगे दुख रोवन॥

एक रुपये की आत्म-कहानी

रूप-रेखा:—
(१) प्रस्तावना—जन्म और प्रारम्भिक जीवन
(२) भारत में पदार्पण और मेरा रूप-परिवर्तन
(३) भारतवर्ष की सैर
(४) कष्ट
(५) आजकल मेरा निवास-स्थान
(६) उपसंहार—मेरा महत्त्व

मेरा जन्म अमरीका के मेक्सिको प्रदेश की एक खानि में हुआ। मैं इस संसार में स्त्री-रूप में उत्पन्न हुआ पर पीछे ईश्वर ने मुझे पुरुष बना दिया। क्या विश्व में किसी और स्त्री को भी परमेश्वर ने आज तक पुरुष बनाया है? कदापि नहीं। तो फिर यह कहना चाहिये कि भगवान् ने मेरे ऊपर विशेष कृपा की। खानि में मैं सीसा, जस्ता आदि भाइयों के साथ रहता था। मेरा वर्ण काला था। हम सब भाई माता की प्रेम-भरी गोद से चिपटे रहते थे। पर यह आनन्द अधिक दिन तक न रहा। एक दिन मजदूरों की कुदालियों ने मुझे माता की मधुर गोद से अलग कर दिया। उस समय मुझे जो दुःख हुआ वह अपार था। माता और भाइयों का विछोह किसे न अखरेगा? मुझे कुछ सान्त्वना थी तो केवल यही कि एक-दो भाइयों ने मेरा साथ न छोड़ा। फिर मैं अग्नि की भट्टी में डाल दिया गया। उस समय का कष्ट अनिर्वचनीय है। असह्य उष्णता से मेरा शरीर गल गया। ऐसी भयंकर परिस्थिति में मेरे भाइयों ने साथ छोड़ दिया। सबको अपनी जान की चिन्ता रहती है। फिर ठण्डा होकर मैं छड़ रूप में हो गया और रजत नाम से विभूषित हुआ।

अब मुझे भारतवर्ष में आना पड़ा। भारत-सरकार ने मुझे खरीद लिया और मिंट में भेज दिया। वहाँ मेरे रूप में परिवर्तन किया गया। फिर मुझे अग्नि का ताप सहना पड़ा। मुझे गोल बनाया गया और मेरी एक ओर महाराज पंचमजार्ज का स्वरूप अङ्कित किया गया और दूसरी ओर मेरा नाम तथा निर्माण-तिथि लिखी गई। अब मैं स्त्री से पुरुष हो गया और 'रुपया' नाम से पुकारा जाने लगा। मुझे बड़ा हर्ष हुआ। भला स्त्री से पुरुष होने में किसे हर्ष न होगा ? इसके अतिरिक्त मेरा मनोरम रंग-रूप, मेरी चमक-दमक, मेरी मधुर ध्वनि, भी मुझे आनन्द देती थी।

रुपया बनकर अब मैं अपने सहस्रों साथियों के साथ इधर-उधर भारतवर्ष की सैर करने निकला। कभी कलकत्ता गया तो कभी बम्बई कभी मद्रास गया तो कभी श्रीनगर। कभी इलाहाबाद गया तो कभी दिल्ली। तात्पर्य यह कि भारतवर्ष के कोने-कोने में मैंने भ्रमण किया। देशाटन का खूब आनन्द लिया। कहीं प्रकृति के मनोहर दृश्य देखे। कहीं गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में निवास किया। कभी अपने स्वामी के साथ अजायबघर की सैर की तो कभी ताज की। कभी बैंक मे रहा तो कभी साहब के मनीबेग मे। कभी महाजन की थैली मे रहा तो कभी बाबू साहब की जेब में।

कभी-कभी मुझे अपने जीवन में आपत्तियाँ भी झेलनी पड़ी हैं। एक बार मैं एक ग्रामीण कंजूस दुकानदार के हाथ लगा। उसने मुझे धरती में गाड़ दिया। अब मुझे स्वच्छ वायु भी नहीं मिलने लगी। भला सोचिये तो सही कि जो भ्रमण करने का प्रेमी है उसे एक अँधेरे स्थान में पड़े रहने से कितना दुःख होगा। २० वर्ष तक इसी प्रकार पड़ा रहकर मैं अपने भाग्य को कोसता रहा। धरती की सील से मेरा मुख काला हो गया। धन्य है दयालु

भगवान। उनकी कृपा हुई। एक चोर ने मुझे निकाल लिया और मेरी कालिमा दूर करने के लिए मेरे शरीर को बालू से खूब रगड़ा। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ। फिर उसने एक मिठाईवाले से मेरे बदले में मिठाइयाँ खरीदीं। दुष्ट मिठाईवाले ने मुझे पत्थर पर पटक कर मेरी परीक्षा की। मुझे दुःख हुआ और मैं चीखने लगा। उसने अन्य साथियों के साथ मुझे लोहे की तिजोरी में कैद कर दिया। पर आवश्यकता महारानी की मुझ पर कृपा हुई और मैं बाहर निकाला गया।

तब से अब तक मैं न जाने कहाँ-कहाँ घूमा हूँ। अपनी यात्रा और अनुभवों का कहाँ तक वर्णन करूँ? कौनसा ऐसा घर है जहाँ मैं न गया हूँ? कौनसा ऐसा मनुष्य है जो मेरे शुभ्र वर्ण को देखकर आनन्दित नहीं हुआ हो? किसके मुख मे मुझे देखकर पानी नहीं भर आया है? आजकल मैं एक दीन विधवा की झोपडी में रहता हूँ। वह मुझे बहुत प्यार करती है। उसका एक-मात्र पुत्र मैं ही हूँ। उसके सुख का एकमात्र साधन मैं ही हूँ।

मैं अत्यन्त महत्वपूर्ण हूँ। संसार के सुखो और आशाओं को प्रदान करने वाला मैं ही हूँ। मरते हुए को जीवन-दान देने वाला, भूखे को अन्न देने वाला और नंगे को वस्त्र देने वाला मैं ही हूँ। रङ्क को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ। मनुष्य को प्रतिष्ठित करने वाला मैं ही हूँ सच पूछिए तो सारा संसार मेरे बल पर स्थित है। मेरी प्राप्ति के लिए लोग क्या क्या नहीं करते? लोग विद्योपार्जन करते हैं मेरे लिए। कठिन परिश्रम करते हैं मेरे लिए। पाप करते हैं मेरे लिए। जान खतरे में डालते हैं मेरे लिए। मैं मनुष्यों का सर्वस्व हूँ। अहा! मेरे समान श्रेष्ठ संसार मे कोई पदार्थ नहीं। अहा! सब मेरी पूजा करते हैं। अहा! सभी मेरी कृपा दृष्टि को लालायित रहते हैं।

हिन्दू-समाज और स्त्रियाँ

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—समानता का युग, प्राचीन काल में स्त्रियों की दशा
(२) आजकल हिन्दू-समाज में स्त्रियों का नीचा स्थान
(३) पुरुषों के अत्याचार
(४) बालिका-विवाह
(५) विधवा-विवाह का निषेध
(६) पर्दा
(७) आभूषण-प्रियता
(८) धनाधिकार का न होना
(९) वैवाहिक नियमों का बुरा होना
(१०) अशिक्षा
(११) उपसंहार—सुधार

आजकल समानता का युग है। प्रत्येक समाज अपने भिन्न-भिन्न अंगो मे बराबरी का व्यवहार चाहता है। हिन्दू-समाज मे भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। उसमे अछूतो और स्त्रियों के स्थानो को लोग परखने लगे है। आजकल समाज के इन्हीं अंगो की ओर जनता का ध्यान है। हमे यहाँ स्त्रियो के सम्बन्ध में ही विवेचन करना है। हिन्दुओ में प्राचीन काल मे स्त्रियो का स्थान पुरुषों के समान था। स्त्रियाँ पुरुषों की अर्द्धाङ्गिनी कही जाती थीं। उन्हे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। समाज में उनका आदर होता था। उन्हे उच्च उच्च शिक्षा दी जाती थी। वे अपने पतियो की योग्य सहचरी होती थीं, उनकी सेवा-शुश्रूषा करना अपना धर्म समझती थीं और उनके सभी कार्यों मे सहायता दिया करती थीं।

पर आज स्त्रियों की दशा मे महान् परिवर्तन है। हिन्दू-समाज में उनका स्थान आज बहुत नीचा है। समाज ने उनको दासत्व

की बेड़ियो मे जकड़ दिया है और उनको विलास का उपकरण मात्र समझ लिया है। स्त्री पति की वस्तु समझी जाती है, जिसका चाहे वह किसी प्रकार उपभोग करे। स्त्री का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व या व्यक्तित्व कुछ नही समझा जाता। उसके सभी कार्य पति की प्रसन्नता के लिए, पति की सन्तुष्टि के लिए, होते है। वह पति की सेवा तन-मन से करती है। वह कभी अपने स्वामी को कष्ट नहीं होने देती चाहे उसको स्वयं कितना ही कष्ट क्यो न उठाना पडे। इतने पर भी समाज में उसका कुछ आदर नही होता। उसके साथ दासी का सा व्यवहार होता है। वस्तुत: पातिव्रत धर्म की आड़ मे हिन्दू-समाज ने स्त्री को गुलामी के भारी बोझ से दबा दिया है। यदि स्त्री को पातिव्रता होना हमारे पूर्वजो ने आवश्यक ठहराया है तो पुरुषों को पत्नीव्रत होना भी। यदि पत्नी का प्रधान धर्म पति की सेवा बतलाया गया है तो पति का धर्म भी पत्नी का आदर, उसकी रक्षा, उसके साथ समानता का व्यवहार आदि कहा गया है। पर आजकल देखा जाता है कि पुरुष स्वयं तो अपने धर्म का पालन नहीं करते और स्त्रियों से टहल चाकरी कराते है। वे स्त्रियो के अधिकारो का अपहरण करते जाते है और उनके साथ पाशविक अत्याचार करते हैं।

पहिले बालिका-विवाह नामक अत्याचार को ही लीजिए। भारतीय समाज मे बालिकाओ का विवाह बहुत प्रचलित है। १०-१२ वर्ष की आयु मे बालिकाओ को एक अपरिचित व्यक्ति के गले मढ़ दिया जाता है। यह वह अवस्था होती है जब बालिका स्वयं यह नही जानती कि विवाह क्या वस्तु है और उसका उद्देश्य क्या होता है। छोटी अवस्था मे बेचारी को माता पिता का स्नेहपूर्ण घर छोड़कर पति के घर मे आना पड़ता है जहाँ प्राय: देखा जाता है कि उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता। फिर जब तक उसके अङ्ग भली-भाँति विकसित भी नही हो पाते

वह अपने पति की काम-वासना का शिकार बनकर माता बन जाती है। इससे उसके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ तक कि कभी-कभी वह बच्चा जनने के समय मर भी जाती है। उसकी संतान भी प्रायः जीवित नहीं रहती और रहती भी है तो दुर्बल और अस्वस्थ्य होती है। बतलाइए बाल-पत्नी समाज के इस अत्याचार का क्या जवाब दे? कभी-कभी तो यह भी देखा जाता है कि बालिकाएँ वृद्ध पुरुषो के साथ ब्याह दी जाती हैं। ऐसे सम्बन्धों का दुष्परिणाम प्रायः यह होता है कि बालिकाएँ विधवा हो जाती हैं और आजन्म कष्टमय जीवन व्यतीत करती हैं। समाज के कठोर नियम के कारण वे बेचारी पुनः अपना विवाह नही कर सकतीं।

हिन्दू समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है। यह भी स्त्रियों के साथ सरासर अत्याचार तथा अन्याय है। यद्यपि कानून उनका साथ देती है तो भी समाज में तिरस्कार के भय से वे पुनर्विवाह नहीं करती। शोक की बात है कि जिस समाज ने पुरुष को एक पत्नी के जीवित रहते भी अनेक पत्नी रखने का अधिकार दे रक्खा है उस समाज ने स्त्री को पति की मृत्यु हो जाने पर भी फिर विवाह करने का अधिकार नही दिया है। यह कैसा अन्याय-पूर्ण नियम है। इस नियम से समाज और स्त्री-जाति दोनों को ही पर्याप्त हानि पहुँची है। पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री के लिए सारा संसार सूना हो जाता है। वह कष्ट सहित भी अपने दिन कठिनाई से पूरे करती है। वह समाज तथा परिवार मे, अभागी, कलंकिनी और घृणित समझी जाती है। समाज को यह हानि पहुँचती है कि वह स्त्री यदि संयम से न रहकर व्यभिचार करने लगे तो समाज का नाम कलंकित होता है। पर इन बातों को कौन देखता है? पुरानी लकीर के फकीरों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।

हिन्दू-स्त्रियो में पर्दे की कुप्रथा प्रचलित है। इससे उनको कई हानियाँ होती हैं—

१ – उनकी शिक्षा में बाधा पड़ती है।

२—उनका स्वभाव भीरु बनता है।

३—उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है।

४—वे सांसारिक अनुभव से वंचित रहती हैं।

इतनी हानियाँ होते हुए भी न तो स्त्रियाँ और न पुरुष ही इस कुप्रथा के अन्त करने का प्रयत्न करते हैं। स्त्रियो को तो अशिक्षित होने के कारण अपनी हीन स्थिति का ज्ञान ही नही है। पुरुषो को ऐसा करने की चिन्ता ही क्या है?

हिन्दू-स्त्रियो मे आभूषण प्रियता बहुत देखी जाती है। प्रायः स्त्रियाँ अपने पतियो से आभूषणो के लिए कलह किया करती है। वे समझती है कि उनके सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए गहने अनिवार्य हैं, शरीर की सफाई और वस्त्रो की स्वच्छता नही। उन्हें नही मालूम कि सौन्दर्य का सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। क्रीम, पाउडरो और आभूषणो से शरीर सुन्दर नही होता। स्त्रियो की आभूषण-प्रियता के कारण गरीब मनुष्यो को अच्छा भोजन भी मिलना कठिन हो जाता है। कैसा ही गरीब क्यो न हो उसे अपने भोजन व्यय मे कमी करके अपनी स्त्री को सन्तुष्ट रखने के लिए गहने बनवाने ही पड़ते है। चाहे पीने को दूध न मिले, चाहे खाने को फल न मिलें, पर चाहिएँ स्त्री के लिए आभूषण।

हिन्दू-समाज मे स्त्रियो को धनाधिकार नहीं है। पति के धन में पत्नी का कोई भाग नही होता। पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी को रोटी कपड़ा मिलना भी कठिन हो जाता है। हिन्दू समाज ने स्त्रियो के लिए 'स्त्री धन' की अवश्य व्यवस्था की है। यह प्रधानतः माता-पिता आदि सम्बन्धियो द्वारा लड़की को दिया हुआ धन होता है। पर यह इतना कम होता है कि स्त्री इससे अपना भरण-पोषण नहीं कर सकती।

हमारे समाज में प्रचलित वैवाहिक नियम भी स्त्रियों के अधिकारों का अपहरण करते हैं। आजकल लड़की का पिता उसके लिए वर खोजता है। लड़की की स्वीकृति इस काम में नहीं ली जाती इसका परिणाम कभी-कभी भयानक होता है। यदि पति और पत्नी की प्रकृति न मिली तो दोनों का जीवन आजन्म कंटकाकीर्ण रहता है। कभी-कभी दोनों में घोर शत्रुता हो जाती है। वे फिर कभी अलग भी तो नहीं हो सकते। इससे आजकल का वैवाहिक बन्धन और भी दुःखदायी है। अच्छा हो यदि पति के चुनने में स्त्री का भी कुछ हाथ रहे।

हिन्दू-स्त्रियों की शोचनीय दशा का प्रधान कारण उनकी अशिक्षा है। आजकल अधिकांश स्त्रियाँ बिना पढ़ी-लिखी हैं। इससे उन्हें न तो अपनी स्थिति का ज्ञान है और न अपने अधिकारों का। वे अपने जीवन की उपयोगिता ही नही जानतीं। उन्होने तो अपने जीवन का लक्ष्य पतियो की काम-वासनाओं को शान्त करना ही समझ रक्खा है। समाज अथवा देश से उन्हे कोई सरोकार नहीं।

पर हर्ष का विषय है कि इधर कुछ दिनों से विशेष शक्ति-सम्पन्न महानुभावों के आविर्भाव से देश में जागृति हो रही है। क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मच गई है। समाज की कुरीतियाँ दूर हो रही हैं। स्त्रियो की दशा सुधारी जा रही है। उन्हे शिक्षित किया जा रहा है। विधवा-विवाह का प्रचार हो रहा है। बालक-बालिका-विवाह रोकने के लिए शारदा-ऐक्ट बन गया है। पर्दे की कुप्रथा टूटती जा रही है। स्त्रियों को धनाधिकार भी मिल रहे हैं। आशा है निकट भविष्य में हिन्दू-समाज में स्त्रियो का स्थान पुरुषों के समान हो जायगा और वे पुरुष की योग्य सहचरी हो जायँगी।

भारतवर्ष में ग्राम-सुधार

रूप-रेखा—

(१) प्रस्तावना—गाँवों की दुर्दशा और उनके सुधार की आवश्यकता
(२) कृषि सुधार—
  (क) सिंचाई का सुप्रबन्ध
  (ख) अच्छे हलों का प्रयोग
  (ग) अच्छे खाद का प्रबन्ध
  (घ) अच्छे बीजों का प्रयोग
  (ङ) रोगों से पौधों की रक्षा
(३) मवेशी के लिए चारे और चिकित्सा का प्रबन्ध
(४) गाँवों मे सफाई की आवश्यकता
(५) औषधालय की आवश्यकता
(६) अशिक्षा का निराकरण
(७) घरेलू उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान
(८) झगड़ों को निपटाने के लिए पचायतों की स्थापना
(९) उपसहार—सुधार के प्रयत्न

भारतवर्ष मे गाँवो की जो दुर्दशा है वह किसी से छिपी नहीं। शिक्षा की दृष्टि से, सभ्यता की दृष्टि से, वे बहुत पिछड़े हुए हैं। वहाँ की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। सामाजिक कुरीतियों ने गाँवो को अपना घर बना लिया है। भारतवर्ष गाँवों का ही देश है। इस देश मे गाँवो की संख्या लगभग ७ लाख और शहरों की संख्या लगभग २२०० है। अतः भारतवर्ष की उन्नति के लिए गाँवो की समस्या इस देश की सबसे बड़ी समस्या है। इसी के हल पर देश का कल्याण निर्भर है। अभी तक हमारा ध्यान उस समस्या पर नही गया था। हर्ष का विषय है कि महात्मा गांधी की प्रेरणा से हमारा और सरकार का ध्यान इस विशाल समस्या की ओर आकर्षित हुआ है।

कृषि भारतवर्ष का मुख्य व्यवसाय है। इसी के सहारे देश के असंख्य व्यक्तियों को खाने को रोटी और पहिनने को कपड़ा मिलता है। ग्राम्य सुधार के लिए कृषि में सुधार करना विशेष आवश्यक है। आजकल खेती की बड़ी बुरी दशा है। किसी भी देश में प्रति एकड़ और प्रति किसान भारतवर्ष की बराबर कम उपज नही होती। भरसक परिश्रम करने पर भी किसान अच्छी फसल नहीं उगा सकते। इसके कई कारण है। यहाँ सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध नहीं है। यद्यपि सरकार ने सिंचाई के लिए नहरें निकाली है और ट्यूब-वैल की भी स्कीम कार्य रूप में परिणित हो रही हैं तो भी अभी सिचाई का सुप्रबन्ध नहीं हो सका है। प्रत्येक किसान दरिद्रता के कारण कुआँ खुदाने में असमर्थ है। प्रायः वर्षा के आसरे ही भारतीय किसान खेती करते हैं। सिंचाई के अतिरिक्त कृषि की दुर्दशा के कारण पुराने ढंग के हलो का प्रयोग भी है। लकड़ी के बने हुए हल धरती में अधिक नीचे नही घुस सकते और नीचे की उपजाऊ मिट्टी को ऊपर नहीं ला सकते। ऊपर की मिट्टी अधिक दिनों तक उपजाऊ नही बनी रहती। इससे खेती की पैदावार कम हो जाती है। किसानों को लोहे के हलो का प्रयोग करना चाहिए। अच्छे खाद का अभाव भी खेती की कम पैदावार का उत्तरदायी है। हमारे देश के किसान यह तो जानते ही नही कि किस प्रकार की फसल उगाने के लिए किस प्रकार के खाद की आवश्यकता है। वे तो सभी फसलो के लिए एक प्रकार का खाद काम में लाते हैं। इसके अतिरिक्त वे खाद के घूरे लगाते हैं। उन्हे चाहिए कि ऐसा न करके खेतो के किनारे गड्ढों में खाद इकट्ठा किया करें। अच्छे बीजो के अभाव के कारण भी खेतों में अच्छी उपज नही होती। इसके लिए सरकार द्वारा पाँच पाँच मील दूरी पर बीजों के भंडार खुलने चाहिएँ जहाँ से किसान अच्छे बीज खरीद सकें।

अनेक प्रकार के रोगों से भी फसल को बहुत हानि होती है। सरकार को चाहिये कि वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा रोगों को दूर करने का साधन ढुंढ़वाए।

गाँवो मे मवेशियो की दशा शोचनीय है। न उन्हे खाने को पर्याप्त चारा मिलता है और न उनके रोगो की चिकित्सा का प्रबन्ध है। प्रत्येक देश में मवेशियों के लिए चारागाह हैं जिसमे वहाँ के मवेशियो के लिए चारे की कमी नहीं रहती। भारतवर्ष में चरागाह वैसे ही थोड़े हैं फिर भी किसान उन्हे जोतकर खेतो मे परिवर्तित करते रहते हैं। इससे मवेशियो के लिए चारे की समस्या के कारण प्रतिवर्ष अनेक मवेशी मर जाते हैं। यह बहुत आवश्यक है कि मवेशियो के लिए किसान चरागाह बनावें और सरकार पाँच-पॉच मील की दूरी पर चिकित्सालय स्थापित करे।

हमारे गाँवो मे सफाई की बडी आवश्यकता है। हमार गाँव गन्दगी के घर बने हुए हैं। जगह-जगह कूडा-करकट पड़ा रहता है। स्थान-स्थान पर पेशाबो और कीचड़ की मोरियॉ बहती रहती है। कहीं-कही तो लोग सड़कों पर ही मल मूत्र त्याग देते हैं। चारों ओर से दुर्गन्ध आती रहती है। मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। मैले-कुचैले जल से डबरे भरे रहते हैं। वर्षा ऋतु मे तो गाँव की गन्दगी बहुत बढ़ जाती है। जगह-जगह कीचड़ हो जाती है और गन्दे जल से छोटे-छोटे गड्ढे भर जाते है। उन गड्ढो में मैलेरिया फैलाने वाले मच्छर हो जाते है। यही कारण है कि वर्षा के बाद गॉवो मे मलेरिया का प्रकोप हुआ करता है। गोबर और कूड़े के ढेरो से भी वर्षा ऋतु मे बड़ी गंदगी फैलती है। उस समय असंख्य मक्खियाँ पैदा होकर गंदगी को चारो ओर फैलाती है। सचमुच वर्षा-काल मे गॉव गंदगी की मूर्ति हो जाते हैं। इसका कारण गावों मे शिक्षा का अभाव है। ग्राम-सुधारको का कर्तव्य है कि वे गांव में जाकर वहॉ के निवासियो को सफाई के लाभ

तथा गन्दगी की हानियाँ समझावें और प्रत्येक गाँव में एक सफाई-समिति की स्थापना करें।

गन्दगी के कारण गाँव में भाँति-भाँति की बीमारियाँ फैली रहती है जिनसे अनेक ग्रामीण मनुष्य अकाल ही काल के ग्रास बन जाते है। वहाँ औषधालय नहीं होते जिनमें उनकी चिकित्सा हो सके। प्रतिवर्ष गाँव में वर्षा ऋतु के बाद मलेरिया जोर पकड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में हैजा कोप करता है। यह आवश्यक है कि पाँच-पाँच मील की दूरी के गाँवो में औषधालय खोले जायँ जिससे ग्रामीण जनता कुत्तो की मौत न मरे।

गाँवो मे अशिक्षा बहुत फैली हुई है। अधिकांश गाँव के रहनेवालो को 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही है अशिक्षा के कारण गाँव के मनुष्यों में सामाजिक कुरीतियाँ बहुत देखी जाती है। उन्हे चपरासी, मुखिया, सिपाही, पटवारी और थानेदार से बहुत भय लगता है। ये लोग उन्हे खूब तंग करते हैं और लूटते हैं। महाजन और जमींदार भी उन्हे अपने चंगुलो में फँसा लेते है। गाँववाले देश-विदेश की परिस्थिति से अनभिज्ञ रहते हैं। उनके लिए उनका गाँव ही सारा संसार है। अशिक्षा को दूर करने के लिए गांवो में दो प्रकार के स्कूल खुलने चाहिएँ। एक प्रकार के स्कूल मे दिन में बालको को शिक्षा दी जाय। दूसरे प्रकार के स्कूलो मे रात्रि में युवकों और वृद्ध मनुष्यों को शिक्षा दी जाय। शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क हो और उसके द्वारा कुछ घरेलू धन्धे भी सिखाए जायँ। लड़कियो के लिए भी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। शिक्षालयों के साथ-साथ गाँवो में पुस्तकालय और वाचनालय भी खोले जायँ जिससे देश-विदेश की परिस्थिति का गाँववालो को ज्ञान हो और वे अपना सुधार कर सकें।

गाँवों में घरेलू उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान आवश्यक है।

किसान साल मे लगभग ४ माह तक वेकार रहते हैं। इस लम्बे समय को वे व्यर्थ नष्ट करते हैं। यदि वे किसी धन्धे को इस समय करें तो उनकी आय में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है और वे अपने ऋण भार को काफी हलका कर सकते है। आज किसान भूखे मरते हैं। शरीर ढकने के लिए उनके पास मावृत वस्त्र भी नहीं और वे ऋण की चिन्ता से घुले जा रहे हैं। ऐसी दशा में किसानो को अपनी दशा सुधारने के लिए घरेलू धंधो का अपनाना बहुत आवश्यक है। चरखा चलाना, कपड़ा बुनना, रेशम के कीड़े पालना, साबुन बनाना, मुर्गियाँ पालना, मधु-मक्खी-पालन, रस्सियाँ बनाना, चटाइयाँ बनाना, तेल-इत्र बनाना आदि अनेक ऐसे व्यवसाय हैं जिनके करने के लिए कुछ अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं। इनमे से किसान अपनी अपनी रुचि के अनुसार कोई धन्धा चुन सकते हैं।

ग्रामीण झगड़ों को निपटाने के लिए गाँवों में पंचायतो की स्थापना करनी चाहिए। आजकल देखा जाता है कि किसान आदि ग्रामीण मनुष्य जरा-जरा सी बातो पर झगड़े करके अदालतां में आते है और अपनी पसीने की कमाई को व्यर्थ व्यय करते है। यदि गाँवो मे पंचायतो की स्थापना हो जायगी तो ग्रामीण जनता का मुकदमो में व्यय होने वाला बहुत कुछ धन बच जायगा।

वास्तव मे हमारे गाँवो की जैसी दुर्दशा है वैसी किसी देश के गाँवो की नहीं। अशिक्षा, गंदगी, कृषि की अवनति, बेकारी, ऋण, झगड़े आदि रोगो ने भारतीय गाँवो के कलेवरो को खोखला कर दिया है। सौभाग्यवश इधर कुछ दिनों से सरकार तथा देशभक्त नेताओ का ध्यान गाँवो की समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ है और हम आशा करते है कि निकट भविष्य में हमारे गाँवों की दशा पूर्णतः सुधर जायगी।

समाचार-पत्र

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—समाचार-पत्र की आवश्यकता
(२) समाचार-पत्र का जन्म और विकास
(३) समाचार-पत्र का प्रचार
(४) समाचार-पत्र का व्यवसाय
(५) समाचार-पत्र से लाभ—
  (क) समाचारों का विज्ञापन
  (ख) विज्ञापन द्वारा व्यापार की उन्नति
  (ग) राजा और प्रजा में प्रेम-भाव की स्थापना
  (घ) राष्ट्रीय जागृति
(६) समाचार-पत्र से हानियाँ—
  (क) झूठे समाचारों से जनता को भुलावा देना
  (ख) गंदे विज्ञापनों और चित्रों द्वारा जनता में कुरुचि-उत्पादन
  (ग) साम्प्रदायिक और राजा-प्रजा आदि सम्बन्धी मनोमालिन्य का उत्पन्न करना
(७) उपसंहार—समाचार-पत्र का महत्व

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदैव समाज में रहना चाहता है। वह समाज के अन्य मनुष्यों के विचार जानना चाहता है और अपने विचार उनके सम्मुख प्रकट करना चाहता है। वह समाज के अन्य मनुष्यों की दशा से स्वयं परिचित होना चाहता है और अपनी दशा उनको बतलाना चाहता है। मनुष्य की इस मनोवृत्ति से ही समाचार-पत्र का जन्म हुआ है। समाचार-पत्र के अतिरिक्त अन्य ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे घर बैठे हम अपने भाइयों की स्थिति का परिचय पा सकें।

समाचार-पत्र का जन्म सोलहवीं शताब्दी में इटली देश के

वेनिस प्रान्त में हुआ। अन्य देशों ने वेनिस का अनुकरण किया। सत्रहवीं शताब्दी में इंगलैंड में समाचार-पत्र के दर्शन हुए। भारतवर्ष में अँगरेजों के आने से पहले कोई समाचार-पत्र प्रचलित नहीं था। अँगरेजों ने सबसे पहले 'इण्डिया गजट' नामक पत्र इस देश में निकाला। इसके पश्चात् ईसाई पादरियों ने 'समाचार-दर्पण' नामक पत्र हिन्दी में प्रकाशित किया। फिर राजा राममोहन राय ने "कौमुदी" और ईश्वरचन्द्र ने 'प्रभाकर' पत्रों को निकाला। सन् १८३५ में लार्ड आकलैण्ड ने मुद्रण-यंत्र को स्वतन्त्रता प्रदान की जिससे देश में समाचार-पत्रों की भरमार होने लगी।

आजकल तो देश के कोने-कोने से समाचार-पत्र निकलते हैं। अँगरेजी के अतिरिक्त देशी भाषाओं में भी अनेक पत्र प्रकाशित होते हैं। चारों ओर समाचार-पत्रों की धूम मची हुई है। दिन प्रतिदिन इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। यद्यपि कुछ पत्र चलकर कभी-कभी बैठ भी जाते हैं तो भी बैठने वालों की अपेक्षा नए निकलने वालों की संख्या कहीं अधिक होती है। पाठकों की संख्या भी आए दिन बढ़ती जा रही है। १० वर्ष पहले भारतवर्ष में समाचार-पत्र पढ़ने वालों की संख्या आज की संख्या की अपेक्षा कहीं कम थी। इधर कुछ दिनों से संसार की जटिल समस्याओं के कारण भी पाठक बहुत बढ़ गए हैं।

समाचार पत्र-प्रकाशन एक स्वतन्त्र व्यवसाय है इससे बहुत से मनुष्यों को रोटियाँ मिलती हैं। लेखक, सम्पादक और कम्पोजीटर से लेकर हॉकर तक इससे जीविका उपार्जन करते हैं। यदि पत्र का अच्छा प्रचार हो जाता है तो उसके चलानेवाले का घर सम्पन्न हो जाता है। उसकी सन्तान के लिए भी वह पत्र आय का स्थायी साधन हो जाता है। कई मनुष्य इस व्यवसाय से बन

गए हैं। प्रायः बड़े-बड़े समाचार-पत्रों को चलानेवाला एक व्यक्ति नही होता बल्कि कई व्यक्तियों की व्यापार-समितियाँ हुआ करती है। निस्सन्देह यह अच्छा व्यवसाय है।

समाचार-पत्रों से अनेक लाभ हैं। ये देश और विदेश के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा-सम्बन्धी, व्यापार-सम्बन्धी आदि समाचारो को चारो ओर फैलाते हैं। विश्व के कोने कोने में जो कुछ होता है उसका ज्ञान पत्रो द्वारा हम घर बैठे प्राप्त कर लेते है। समाचार-पत्र संसार की वर्तमान समस्याओं को हमारे सम्मुख उपस्थित करते है। इनकी सहायता से संसार की ताजी बातो से हम परिचित रहते है। यदि समाचार-पत्र न हो तो हम संसार के मामलों से, संसार की घटनाओं से, अनभिज्ञ रहे। हममे और कूप-मण्डूक में कोई अन्तर न रहे। कहना न होगा कि समाचार-पत्र संसार का ज्ञान कराने के लिए बड़ा सस्ता और सुगम साधन है। दरिद्र से दरिद्र मनुष्य भी वाचनालयो मे जाकर समाचार-पत्र पढ़ सकता है और मुफ्त अपने को संसार के सम्पर्क में रख सकता है।

समाचार-पत्र व्यापार की उन्नति का अच्छा साधन है इससे जितना अधिक विज्ञापन हो सकता है उतना अन्य किसी साधन से नहीं। यदि कोई व्यापारी अपने माल की खपत बढ़ाना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह जितना हो सके अपने माल का विज्ञापन कराए। कोई भी व्यापारी केवल स्थानीय ग्राहकों पर निर्भर रहकर अपने व्यवसाय में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। उसको वाणिज्य में अधिक लाभ नहीं हो सकता। व्यापार में तभी अधिक लाभ होता है जब व्यापारी का माल अधिक बिकता है। माल तभी अधिक बिकता है जब व्यापारी की दूकान को इधर-उधर के अधिक लोग जानते हैं। किस प्रकार यह कार्य सरलता से हो सकता है? यह तो सम्भव नही कि दुकानदार जन-

साधारण के घर जा-जाकर अपने माल और दुकान का परिचय देता फिरे। केवल समाचार-पत्र इस कार्य को अच्छी तरह कर सकते हैं और कर रहे हैं। कितने ही व्यौपारियों ने विज्ञापन द्वारा लाखो रुपये पैदा किए हैं। समाचार-पत्रो द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि कहाँ किस वस्तु का क्या भाव है, कहाँ कौनसी वस्तु खरीदनी चाहिए और कहाँ कौनसी बेचनी चाहिए।

समाचार-पत्र राजा और प्रजा मे प्रेम-भाव स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि कोई राजनैतिक समस्या उठ खड़ी होती है तो समाचार-पत्र सरकार और जनता दोनो के विचारो को प्रकाशित करते हैं और टीका टिप्पणी द्वारा समस्या को हल करने का प्रयत्न करते है। ये जन-साधारण के दुःखो को सरकार के सम्मुख रखते है और उसे उन दुःखों को दूर करने के उपाय भी बतलाते है। यदि सरकार ध्यान नहीं देती तो ये उसकी धज्जियाँ उड़ाते है। विवश होकर उसे झुकना ही पडता है। ये निरंकुश शासन की जड़ काटते है और शासक तथा शासित के मध्यस्थ होकर दोनो मे सहानुभूति एवं प्रेम की स्थापना करते है।

समाचार-पत्रो से राष्ट्रीय जागृति भी होती है। ससार भर के देशो को समाचार-पत्रो ने एक सूत्र मे बाँध रक्खा है। ये स्वतन्त्र देशो की रहन-सहन, आचार-विचार, रीति नीति, शासन-प्रणाली, जनता के अधिकार आदि बातो का विवेचन करते हुए उन्हे परतन्त्र राष्ट्र मे फैलाते हैं। देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावो को जन्म देने मे इनका बहुत हाथ रहता है। इनके द्वारा एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अपनी तुलना करके अपने गुण तथा दोषो को जान जाता है और दोषो को दूर करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार राष्ट्र के राजनैतिक और सामाजिक जीवन मे उलट-फेर होता रहता है। इस प्रकार देश में राष्ट्रीय जागृति होती है। इस प्रकार देश की सभ्यता का विकास होता है।

जहाँ समाचार पत्रों से ये लाभ हैं वहाँ कुछ हानियाँ भी हैं जिनका बहुत कुछ उत्तरदायित्व सम्पादकों पर है। यदि वे अपने कर्तव्य का ध्यान रखें तो समाचार-पत्रों से हानि होने की सम्भावना नहीं रहे। उन्हें दलबन्दी से दूर रहकर समाज के हित का ध्यान रखना चाहिए। कभी-कभी समाचार-पत्र जनता में झूठे समाचार फैला देते है जिससे समाज में हलचल हो जाती है और अनर्थ होते है। कभी कभी वे झूठे विज्ञापन छापकर जनता को ठगते हैं। गंदे विज्ञापनो और चित्रों से जन-साधारण के चरित्र को बिगाड़ते है, उसे भ्रष्ट करते हैं। नग्न चित्र तक समाचार-पत्रों में देने से सम्पादकगण नहीं हिचकिचाते। उन्हे जनता के आचार बनने या बिगड़ने की क्या चिन्ता है? उन्हें तो धन चाहिये। उनके तो पत्र की अधिक बिक्री होनी चाहिए। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि समाचार-पत्र भिन्न-भिन्नसम्प्रदायों मे, राजा और प्रजा में, भिन्न-भिन्न जातियो में, राजाओं मे मनोमालिन्य पैदा कर देते है। साम्प्रदायिक झगड़ों को ये ही फैलाते है। मान लीजिए एक स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है। समाचार-पत्र झूठी-सची खबरें फैलाकर अन्य स्थानों पर भी उसे फैला देंगे। राजा और प्रजा मे उल्टी सीधी आलोचनाओ द्वारा विद्रोह की आग भड़काने वाले ये समाचार-पत्र ही होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न जातियों और राजाओं में पारस्परिक द्वेष और अविश्वास कराने के प्रधान साधन ये समाचार-पत्र ही होते हैं।

यह सब होते हुए भी इस बीसवी शताब्दी में समाचार-पत्रों का महत्व कम नहीं है। आजकल ये जनता के भूखे मस्तिष्क के भोजन बने हुए हैं। आजकल ये सुधार, क्रान्ति और उन्नति के प्रधान साधन हैं। नाना प्रकार के समाचार और सूचनाएँ प्रदान करके मानव-समाज का जितना हित समाचार-पत्र करते हैं उतना

हित शायद ही कोई वस्तु करती हो। निस्सन्देह ये संस्कृति और सभ्यता के परिपोषक हैं और इनसे जनता का ज्ञान-भण्डार विकसित होता है।

पुस्तकालय से लाभ

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—पुस्तकालय की आवश्यकता
(२) पुस्तकालय के भेद
(३) पुस्तकालय से लाभ—
  (क) ज्ञान-वृद्धि और ज्ञान-प्रसार
  (ख) अवकाश का सदुपयोग
  (ग) आत्म-सस्कार
  (घ) सत्सग
  (ङ) समाज का हित और जागृति
(४) उपसहार—हमारे देश में पुस्तकालयों की कमी और इसका निराकरण

अध्ययन उन्नति की कुञ्जी है। इससे ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, मस्तिष्क का विकास होता है, साहित्य मे गति हो जाती है, सभ्यता का सूर्य चमकने लगता है। अध्ययन के प्रधान स्थान दो ही हैं—विद्यालय और पुस्तकालय। विद्यालय में तो केवल थोड़ी-सी पाठ्य-पुस्तकों का ही अध्ययन कराया जाता है। अतः वह अध्ययन का समुचित स्थान नही कहा जा सकता। हाँ, वहाँ इसकी नींव अवश्य पड़ जाती है। अध्ययन का समुचित स्थान है पुस्तकालय, जहाँ नाना प्रकार की अनेक पुस्तके पढ़ने को मिलती हैं। यह वह स्थान है जहाँ पुस्तको का बृहत् संग्रह रहता है।

पुस्तकालय कई प्रकार के होते है। स्कूलों और कालेजों में

पुस्तकालय होते है जिनका लाभ केवल विद्यार्थी-गण अथवा अध्यापक-वृन्द ही उठा सकते है। इनके अतिरिक्त निजी पुस्तकालय होते हैं जो किसी व्यक्ति और उससे सम्बन्ध रखने वाले लोगो के लाभ के लिए होते है। इनकी स्थापना वह व्यक्ति ही करता है। तीसरे प्रकार के पुस्तकालय सार्वजनिक पुस्तकालय कहलाते है जिनका लाभ सब लोग उठा सकते है। जो चाहे पुस्तकालय में बैठकर पुस्तक पढ़ सकता है और नियत शुल्क देकर नियत समय के लिए अपने घर भी पुस्तकें पढ़ने को ले जा सकता है।

पुस्तकालय से अनेक लाभ है। ज्ञान की वृद्धि मे पुस्तकालय से जो सहायता मिलती है वह अनेक शिक्षकों से भी नही मिल सकती। वास्तव मे शिक्षक ज्ञान का पथ प्रदर्शित करता है और पुस्तकालय ज्ञान तक पहुँचाता है। किसी विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय अनिवार्य है। किसी विषय की एक या दो पुस्तके पढ़ लेने से कुछ नहीं होता। जब तक उस विषय की अधिक से अधिक पुस्तकों का अध्ययन न किया जाय तब तक समुचित ज्ञान नही हो सकता। यह कार्य पुस्तकालय ही मे भली भाँति सम्पादित हो सकता है। वहीं अनेक पुस्तकें पढ़ने को मिल सकती हैं। एक मनुष्य कहाँ तक पुस्तकें एकत्रित कर सकता है? यदि एक विषय की संग्रह कर भी लें तो भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें इकट्ठी करना उसके लिए सर्वथा असम्भव है। हाँ, यदि वह अत्यन्त धनवान हो तो ऐसा कर सकता है, पर सब लोगों के लिए तो यह कार्य सरल नहीं। पुस्तकालय ऐसा सुगम साधन है जिसके द्वारा विविध विषयों का पूर्ण ज्ञान गरीब से गरीब भी प्राप्त कर सकता है। ज्ञान की वृद्धि के अतिरिक्त उसके प्रसार मे भी पुस्तकालय पर्याप्त योग देता है। कई देशों में चलते-फिरते पुस्तकालय खोले गए हैं। मोटरों में पुस्तके भर ली जाती हैं और ये

मोटरें एक स्थान से दूसरे स्थान को भागती हुई लोगो को पुस्तकें बाँटती फिरती है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य तक पुस्तकें पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है और ज्ञान का द्वार जन-साधारण के लिए खोल दिया गया है।

पुस्तकालय से अवकाश का सदुपयोग होता है। अवकाश के समय यदि कोई व्यक्ति हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे तो उसके मस्तिष्क मे गंदी-गंदी भावनाएँ उत्पन्न होगी। कहा भी है— An empty mind is a devil's work shop अर्थात् शून्य मस्तिष्क शैतान की कार्य शाला है। अतः यह वांछनीय है कि मनुष्य अपने अवकाश का सदुपयोग करे। पुस्तकालय से अच्छा साधन इस कार्य के लिए और क्या हो सकता है? निस्सन्देह खेल-कूद, ताश, शतरंज, सिनेमा, नाटक आदि अनेक अन्य साधन भी है। पर कहने की आवश्यकता नही कि ये पुस्तकालय की समानता नही कर सकते। इनसे केवल आनन्द ही मिलता है। किन्तु पुस्तकालय से आनन्द के साथ साथ ज्ञान भी मिलता है। जब अवकाश हो किसी पुस्तकालय मे बैठ जाइए। जी में आए तुलसी के 'रामचरित्र मानस' में गोते लगाइए। जी में आए सूर के पदो का रसास्वादन कीजिए। जी में आए जायसी की प्रेम कहानी का आनन्द लूटिए। जी में आए कबीर की वाणी से मन के मैल को काटिए। जी में आए भारतेन्दु की 'अंधेर नगरी' मे बिहार कीजिए। जी मे आए बिहारी की सतसई सरिता में अवगाहन कीजिए। जी में आए कालिदास के 'मेघदूत' में यक्ष के साथ सहानुभूति दिखलाइए। जी में आए भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' की सीता के साथ अश्रु पात कीजिए। जी में आये विज्ञान के चमत्कारो को पढ़कर चमत्कृत हो जाइए।

पुस्तकालय आत्म-संस्कार का भी अच्छा साधन है। जब हम उत्कृष्ट, उपदेशपूर्ण, मर्यादा-गर्भित और नीति-सम्बन्धी पुस्तकों

का अवलोकन करेंगे, सर्वदा उनके बीच रहेंगे, तब हमारा आचरण स्वतः सुधरेगा और हमारे हृदय में अच्छी-अच्छी भावनाएँ उत्पन्न होंगी। जब हम कबीर की पवित्र वाणी को पढ़ेंगे तो उससे अवश्य प्रभावित होंगे। जब हम गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' को पढ़ेंगे तो उससे हमें आज्ञा पालन, भ्रातृ-प्रेम, सेवा, नम्रता, शिष्टाचार आदि की शिक्षा मिलेगी। पुस्तकालय के सम्पर्क में रहने से हम कुवासनाओं और प्रलोभनों से बचते है। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के प्रकाश में ये चमगादड़ें और उल्लू भाग जाते हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के मनन द्वारा हम स्वर्ग के लिए मार्ग परिष्कृत करते हैं।

मनुष्य की यह प्रकृति है कि वह अपने लिए कुछ साथी चाहता है। अकेले रहना उसे कभी नहीं रुचता। पुस्तकालय हमारे लिये अच्छे साथियों की योजना करता है। यह हमें शेक्सपियर, न्यूटन, प्लैटो, अरस्तू, वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी, शङ्कराचार्य, भर्तृहरि सरीखे देशी और विदेशी सब प्रकार के साथी देता है जिनके सत्संग मे रहकर हम बहुत लाभ उठाते है। क्या हम इस संसार मे इनसे बढ़कर संगी पा सकते है? कभी नहीं। संसार के एक से एक अच्छे महात्मा का, एक से एक अच्छे विद्वान् का, हमे सत्संग मिलता है। धन्य है पुस्तकालय जिसकी सहायता से हम कभी शेक्सपियर से वार्तालाप करते है तो कभी न्यूटन से। कभी भवभूति के साथ दण्डकारण्य की सैर करते हैं तो कभी तुलसी के साथ चित्रकूट की। कभी प्लैटो के साथ खेलते है तो कभी अरस्तू के साथ।

पुस्तकालय से व्यक्ति का तो हित होता ही है साथ मे समाज का भी हित होता है। देश-विदेश की नई-पुरानी पुस्तके पढ़ने से देश विदेश की नई-पुरानी सामाजिक व्यवस्था का पता चलता है और सुधार का सूत्रपात होता है। सामाजिक कुरीतियाँ और

दोष दूर किये जाते हैं। अशिक्षा के निराकरण से चारों ओर जागृति हो जाती है। अन्यायियो और अत्याचारियों की कुचालें वन्द हो जाती हैं। जनता अपने अधिकारो को जानने लगती है। समाज के भिन्न-भिन्न अङ्गो में समानता का व्यवहार होने लगता है। जन-समुदाय मे देश-प्रेम और स्वतन्त्रता की लहरें उठने लगती है।

पर खेद का विषय है कि हमारे देश में पुस्तकालयों की बहुत कमी है। शहरों मे कहीं-कहीं पुस्तकालय देखे जाते हैं। गाँवो में तो पुस्तकालय का नाम भी नहीं है। यही कारण है कि यह देश इतना अशिक्षित और सभ्यता की दौड़ मे पिछड़ा हुआ है। अन्य देशों मे गाँव-गाँव मे पुस्तकालय हैं। जहाँ नहीं हैं वहाँ चलते-फिरते पुस्तकालयो की योजना है। इधर कुछ दिनो से भारतवर्ष मे भी सरकार ने पुस्तकालयों की समस्या पर ध्यान दिया है। गाँवो के लिए चलते-फिरते पुस्तकालयो का प्रबन्ध किया जा रहा है। वड़े गाँवो मे छोटे-छोटे पुस्तकालयों की स्थापना हो रही है। नगरो मे भी पुस्तकालयो की संख्या वढ़ाई जा रही है। हमें आशा है कि हमारे देश मे शीघ्र ऐसा प्रबन्ध हो जायगा जिससे देश का प्रत्येक व्यक्ति पुस्तकालय से लाभ उठा सकेगा और यहाँ ज्ञान का तीसरा शिव-नेत्र खुल जायगा।

किसी यात्रा का वर्णन

(रेल-यात्रा)

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—हमारी यात्रा का उद्देश्य

(२) तैयारी

(३) छात्रालय से प्रस्थान; टिकट लेने में आपत्ति

(४) प्लेटफार्म का दृश्य

(५) गाड़ी पर सवार होना और मार्ग की आपत्तियाँ
(६) मार्ग के दृश्य और आनन्द
(७) घर पर आ पहुँचना
(८) उपसंहार—यात्रा की उपयोगिता

बाट देखते-देखते अन्त मे वह दिन आया जिस दिन मेरी नवीं कक्षा की परीक्षा समाप्त हुई। बहुत दिनों से नित्य मै उस दिन की लालसा मे रहता था। बहुत दिनों से वह दिन मेरे नेत्रो में नाचता था। कई दिन स्वप्न में भी उस दिन के दृश्य को देखा था। मैं आनन्द के समुद्र मे डूबा हुआ था। ३॥ माह पश्चात् घर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तीन और साथी मिल गए। उनकी भी परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। वे भी मेरे निवास-स्थान देहली के रहनेवाले थे।

हमने प्रातःकाल से ही यात्रा की तैयारी आरम्भ की। हम लोग इलाहाबाद मे थे। अतः पुण्यसलिला गंगाजी के स्नान का सुयोग था। मेरी इच्छा हुई कि चलते समय गंगाजी में अवश्य स्नान किया जाय। साथियो से कहा वे भी स्नान को तैयार हो गए। फिर क्या था! स्नान हुआ और साथ में गंगा माता से प्रार्थना की गई कि हम सब परीक्षाओ मे उत्तीर्ण हो जायँ। मैंने घर के लिए ताँबे के पात्र में गंगाजल भरा और फिर हम लोग छात्रालय लौट आए। भोजनादि से निवृत्त होकर बाजार से आवश्यक वस्तुएँ खरीदीं। फिर आकर धोबी, दूधवाले और मैस का हिसाब चुकाया। सायंकाल अध्यापकों से मिलने गए। लौटकर भोजन किया। नौकर से सामान बँधवाया। तत्पश्चात् मित्रों से मिले। गाड़ी का समय हो रहा था। अतः ताँगा मँगवाया गया।

हम लोग ताँगे में बैठे और स्टेशन को चल दिए। ठीक ६॥

बजे स्टेशन आ पहुँचे। गाड़ी १० बजे छूटती थी। सामान कुली से उतरवाया गया। मैंने साथियो को कुली के साथ प्लेटफार्म भेजा और स्वयं टिकट लेने के लिए चल दिया। टिकटघर पर बडी भीड थी। यात्री एक दूसरे को धक्के दे रहे थे। यह दृश्य देख कर मेरे होश उड़ गए। टिकट लेने की हिम्मत न पड़ी। पर टिकट तो लेने ही थे। साहस करके भीड़ मे घुसा। जैसे-तैसे खिड़की तक पहुँचा। वहाँ मेरी दुर्दशा हुई। पीछे के लोग मुझे आगे ढकेलते थे और आगे के पीछे। दाहिनी ओर के मनुष्य मुझे बाईं ओर ढकेलते थे और बाईं ओर के दाहिनी ओर। गर्मी के मारे पसीना आने लगा। सारा शरीर भीग गया। कण्ठ भी सूखने लगा। उधर एक बाबू साहब मुझसे अटक पड़े। बोले—आपने मुझे धक्का क्यो दिया? मुझे समझ ही क्या रक्खा है? मैंने कहा—आपको मैंने मनुष्य समझ रक्खा है। संभव है, भूल हो गई हो। इस पर वे बिगड़ गए। उपस्थित लोगो ने उन्हे शान्त किया और कहा कि बाबूजी लड़के का कुछ दोष नही है। उसने जान-बूझकर आपको धक्का नहीं दिया। ऐसे अवसरो पर धक्का-मुक्की का बुरा नहीं मानना चाहिए। भीड़ के धक्के लगना साधारण बात है, जैसे-तैसे १० मिनट के बाद टिकट मिले। उन्हें लेकर प्लेटफार्म पहुँचा। चित्त मे बड़ा क्षोभ हुआ। निश्चय कर लिया भविष्य मे टिकट लेने नही जाऊँगा। साथियो को जब यह मालूम हुआ तब उन्होने मेरा खूब मजाक उड़ाया।

अभी गाड़ी आने मे १५ मिनट का समय था। हम लोग प्लेटफार्म पर इधर-उधर घूमकर मनोरंजन करने लगे। प्लेटफार्म का दृश्य बड़ा आकर्षक था। चारों ओर यात्रियो की भीड़ थी। पुरुष, स्त्री और बच्चे इधर-उधर घूम रहे थे। मेमें ऊँची एड़ी के जूते पहिने हुए खट-पट खट-पट करती हुई अपने पतियो

के हाथ पकड़े गिट-पिट बोलती हुई चली जा रहीं थीं। ग्रामीण स्त्रियाँ हाथ भर लम्बा घूँघट निकाले पति-देवों के पीछे जा रहीं थीं। उनके शरीर आभूषणों से लदे हुये थे। पैर जमीन मे धँसे जाते थे। कहीं साहब लोग मुँह में सिगार दबाए धुँए के गुब्बारे उड़ा रहे थे। कहीं गाँव के मनुष्य चिलम भर के पी रहे थे। कोई बेंच पर बैठकर भोजन कर रहा था। कोई पानवाले की दुकान पर खड़ा हुआ पान खा रहा था। कोई शरबत पी रहा था। कोई अपने बिस्तर के सहारे लेट रहा था। बच्चे खेल रहे थे। कुछ लोग समाचार पत्र पढ़ रहे थे। कुली इधर-उधर सामान ढो रहे थे। उनके एक से वस्त्र बड़े अच्छे लगते थे। कुछ मनचले लोग ताश खेल रहे थे और कहकहे उड़ा रहे थे। चारों ओर चहल-पहल थी। कुछ देर पीछे घण्टी बजी। लोग चौकन्ने हुए। कुलियों ने अपने बोझ सँभाले। सब लोग खड़े हो गए। एक मिनट में गाड़ी भप-भप करती हुई प्लेटफार्म पर आ पहुँची। इधर-उधर भग-दड़ मच गई। पान-बीड़ी, हलुआ, दाल-सोंठ, पेठा, सेब, सन्तरा, केला, दूध-गरम, पूड़ी, मिठाई आदि की तुमुल ध्वनि से प्लेटफार्म गूँज उठा। यात्रियों का गाड़ी में घुसना और उससे बाहर निकलना आरम्भ हुआ। कुली गाड़ी में सामान रखने और उससे बाहर निकालने लगे।

हमने एक डिब्बे का दरवाजा खोला और उसमें घुस गए। कुलियो ने सामान लाकर रख दिया। उनकी मजदूरी चुकाने के पश्चात् हम बैठने के लिए स्थान ढूँढ़ने लगे। क्या देखते हैं कि लोग पैर फैलाकर बेंचों पर पड़े हुए हैं और सोने का बहाना कर रहे हैं। हमने पहले तो उन्हें छेड़ना न चाहा परन्तु डिब्बे में जब हमें कहीं भी जगह न मिली तब विवश होकर ऐसा करना पड़ा। हमने पहले उनसे प्रार्थना की कि वे हमें थोड़ी

जगह दे दें। पर कौन सुनता है प्रार्थना को ? कुछ तो टस से मस न हुए। ज्यों के त्यो पड़े रहे, मानो गहरी निद्रा में निमग्न हैं। कुछ झगड़ने लगे। हमने सोचा कि सीधी अँगुली घी नहीं निकलता। इसलिए टेढ़ा होना चाहिए, क्योंकि गोस्वामीजी ने कहा है—टेढ़ जानि शङ्का सब काहू। हुआ भी यही। जैसे ही हम लोग तेज हुए वैसे ही वे भयभीत होकर दब गए। कई उठकर सामान रखने की पटरियों पर जा लेटे। फिर क्या था ? हम लोगों ने अपना-अपना बिस्तर बिछाया और लेट गए। गाड़ी सीटी देकर चल दी। मार्ग में गाड़ी के स्टेशन-स्टेशन पर ठहरने के कारण हम निद्रा का आनन्द न ले सके। पैसेंजर-गाडी होने के कारण वह लगभग आध-आध घण्टे बाद स्टेशनो पर ठहरती थी। जहाँ ठहरती वहीं यात्रियों के चढ़ने-उतरने से हमारी नींद टूट जाती।

नींद से युद्ध करते-करते प्रातःकाल हो गया। वह समय बड़ा सुहावना था। पौ फट रही थी। ठण्डी-ठण्डी वायु धीरे-धीरे चल रही थी। धूँधला आ गया था। आगे बढ़ने पर सूर्य-देव अपनी लाल-लाल रश्मियों को फैलाते हुए दिखाई पड़े। आकाश लाल-पीला हो गया। इधर-उधर के दृश्य जो अब तक अन्धकार में विलीन थे अब स्पष्ट दिखलाई देने लगे। गाड़ी कभी भयानक जंगल में होकर दौड रही थी और कभी मनोरम वनस्थली में होकर। कभी शस्य-श्यामला भूमि हमारे मन को अपनी ओर आकर्षित करती थी तो कभी उपवन हमको आनन्द देते थे। कभी नदी-नाले हमको प्रसन्न करते थे तो कभी पर्वत-छटा हमारा मनोरंजन करती थी। मार्ग के गाँव और नगर भिन्न-भिन्न दृश्य उपस्थित कर रहे थे। ऐसे समय हमारे एक साथी को जो कवि था कविता सुनाने की धुन सवार हुई। उसने बड़ी-बडी सुन्दर कविताएँ सुनाईं। डिब्बे भर के लोग आनन्द में मग्न होने लगे।

'पुनः पुनः' 'वाह-वाह' और 'बहुत सुन्दर' की ध्वनि से डिब्बा गूँजने लगा।

इस प्रकार आमोद-प्रमोद करते-करते हमारा निवास-स्थान देहली आ गया। हमने कुली को पुकारा। शीघ्र एक कुली आया और उसने हमारा सब सामान गाड़ी से उतारा। स्टेशन के बाहर पहुँचकर हमने एक ताँगा लिया और उसमे सामान रखवा कर हम अपने घर को चले। हम सानन्द अपने-अपने घर पहुँच गए। माता-पिता ने जब मुझे देखा तब उनके हृदय वात्सल्य प्रेम से भर गए और उनके नेत्रों मे प्रेमाश्रु भर आए। इस प्रकार हमारी यात्रा समाप्त हुई।

यात्रा की उपयोगिता को सभी स्वीकार करेंगे। विभिन्न प्रदेशों और जातियो के मनुष्यो के संसर्ग में आने से हमारा ज्ञान और परिचय बढ़ता है। दुःख झेलने से हममें सहन-शक्ति आती है। अपने आप सब कार्य करने से हममे स्वावलम्बन का गुण पैदा होता है। तरह-तरह के दृश्य हमारा मनोरंजन करते हैं।

किसी मेले का वर्णन

(कैलाश का मेला)

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—मेला किसे कहते हैं? मेले का उद्देश्य आदि

(२) कैलाश के मेले की तैयारी

(३) मार्ग के दृश्य और आपत्तियाँ

(४) यमुनाजी का स्थान और शिवजी की पूजा

(५) कैलाश के मेले का दृश्य

(६) कैलाश के मेले के आमोद-प्रमोद

(७) घर लौटने की आपत्तियाँ और मार्ग के दृश्य

(८) उपसंहार—मेले की उपयोगिता

मेले से अभिप्राय किसी स्थान पर बहुत से मनुष्यों का एकत्रित होना है। मनुष्य किसी न किसी उद्देश्य से इकट्ठे होते हैं। वे या तो किसी देवी-देवता की पूजा के लिए जुड़ते हैं अथवा व्यापार के लिए। कहीं-कहीं किसी विख्यात मृतात्मा की स्मृति बनाए रखने के लिए भी इधर-उधर से आकर मनुष्य इकट्ठे होते हैं। मेले सर्वदा निश्चित दिन और नियत स्थान पर होते हैं। कोई मेला वर्ष भर में एक बार होता है। कोई मेला वर्ष में दो बार होता है। कोई मेला ६ वर्ष पश्चात् होता है और कोई १२ वर्ष बाद लगता है। कुंभी और कुंभ इसी प्रकार के मेले हैं।

हम जिस मेले को देखने गए वह एक धार्मिक मेला है और प्रतिवर्ष लगता है। यह आगरे से ६ मील की दूरी पर यमुनाजी के किनारे कैलाश नामक शिवजी के मन्दिर के आस-पास लगता है। इस मेले का उद्देश्य भगवान शिव की पूजा है। यह श्रावण के महीने में तृतीय सोमवार को लगता है। हमारे प्रधानाध्यापकजी ने मेले से दो दिन पूर्व शनिवार को स्कूल में छुट्टी की सूचना कराई। जैसे ही हमको सूचना मिली हम हर्ष से फूल गए। मन में उसी समय मेले जाने का दृढ़ निश्चय किया। सोमवार को प्रातःकाल हम पाँच मित्र मेला जाने को तैयार हुए। मैस में दोपहर के भोजन की मना की गई। छात्रालय के अध्यक्ष से आज्ञा ली गई। फिर हमने कमीज और नेकर पहिने और मेले के लिए व्यय लेकर हम लोग लगभग ८ बजे कैलाश को चल दिए।

उस दिन रेल में बड़ी भीड़ थी। मनुष्यों के टोल के टोल डिब्बों पर टूट रहे थे। सारी गाड़ी मेले के यात्रियों से अट रही थी। कहीं भी एक इंच तक जगह नहीं दिखलाई पड़ती थी। ऐसी दशा में हम लोगों ने गाड़ी से यात्रा करना ठीक न समझा। हम मोटरों के अड्डे पर गये। मोटरवाले भी एक की जगह तीन तीन सवारी बैठा रहे थे। हमारा मन वहाँ

से भी उचट गया और हम सब ने पैदल जाने का निश्चय किया। बहुत से व्यक्ति पैदल जा रहे थे। हम भी उन्हीं के साथ हो लिए। मार्ग में स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे शिवजी के गीत गा रहे थे। मनुष्यो की कोई टोली 'जय शंकर की', कोई महादेव बाबा की जय हो' और कोई 'जय शिव' आदि के नारो से पृथ्वी को कँपा रही थी। कोई टोली चुपचाप रहकर शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर रही थी। हम मे एक कवि था। उससे प्रार्थना की गई। वह बड़ी सुन्दर कविताएँ सुनाने लगा। जिनसे हमारा बड़ा मनोरंजन हुआ मार्ग में कोई मनुष्य हमारे समान पैदल जा रहा था। कोई बैल-गाड़ी मे बैठा हुआ जा रहा था। कोई मोटर मे सवार हो रहा था। कोई ताँगे में आसन जमा रहा था। कोई इक्के में जा रहा था। मार्ग में बड़ी भीड़ थी। श्रावण का महीना तो था ही। वर्षा होने लगी। लोग इधर-उधर भागने लगे। हमारे पास एक भी छाता न था। हम लोगो ने भागकर एक वृक्ष के नीचे शरण ली। पर बेचारा वृक्ष हमारी अधिक देर तक रक्षा न कर सका। हम भीगने लगे। शिवजी की कृपा हुई और वर्षा बन्द हो गई। अब मार्ग में कीचड़ हो गई। हमारे पालिसदार जूते अपने भाग्य को धिक्कारने लगे। उनके चारो ओर कीचड़ लिपट गई। हमारा एक मित्र तो एक स्थान पर फिसल कर गिर गया। पर शिवजी की कृपा से उसे कुछ चोट न लगी। हाँ, कपडे अवश्य बिगड़ गए। इन सब आपत्तियों को सहते हुए लगभग १० बजे हम कैलाश पहुँच गए।

सबसे पहले हमने यमुनाजी के पवित्र किन्तु मैले जल में गोते लगाए। हमारे दो मित्र अच्छी तरह तैरना जानते थे। वे अन्य लोगों को तैरते हुए देखकर नदी में कूद पड़े। मुझे तैरना नहीं आता था। इसलिए भय लग रहा था। नदी का दृश्य बड़ा मनोरम था। कोई नदी के नीले जल में गोते लगा रहा था।

कोई तैर रहा था। कोई किनारे पर बैठकर संध्या कर रहा था। कोई कछुओं को भोजन खिला रहा था। स्नान के पश्चात हम शिवजी के मन्दिर में गए। वहाँ पूजा करनेवालों की भीड़ लगी हुई थी। शिव-मूर्ति पुष्प मालाओं से ढक रही थी। प्रत्येक भक्त यमुनाजी का जल पात्र में भरकर मन्त्र उच्चारण करता हुआ शिवजी की मूर्ति पर छोड़ रहा था। चन्दन और पुष्प चढ़ाए जा रहे थे। सुगन्धित बत्तियाँ चारों ओर जल रही थीं। मन्दिर की घंट-ध्वनि और देवालय की परिक्रमा देनेवालों की जयकार हमारे हृदय में भक्ति और धर्म की भावनाएँ उत्पन्न करती थीं। हमने भी शिवजी की पूजा की। फिर हम मन्दिर के बाहर आए। वहाँ साधू धूनी तप रहे थे। स्त्री-पुरुष उन पर पैसे चढ़ा रहे थे। हमें यह अच्छा न लगा। साधुओं को पैसों की क्या आवश्यकता? उन्हें तो चाहिए कि द्वार-द्वार से टुकड़े माँगकर पेट भरें। जो साधू ऐसा नहीं करते, वरन मेलों में जाकर पैसों की इच्छा करते हैं वे ढोंगी होते हैं। हमने पैसे चढ़ानेवाले कुछ लोगों को समझाया भी। पर कौन सुनता है? धर्मान्धों ने समझ रक्खा था कि ऐसा करने से स्वर्ग का द्वार उनके लिए खुल जायगा।

इस समय लगभग १२ बज चुके थे। अभी तक मुँह में एक दाना भी नहीं डाला था। पेट में चूहे दौड़ रहे थे। अतः एक पूड़ीवाले की दूकान पर हम लोग गए और अपनी क्षुधा निवृत्त की। अब हमने मेला देखना आरम्भ किया। दुकानें पंक्तियों में सजी हुई थीं। दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए दुकानदारों ने कुछ उठा न रक्खा था। खूब प्रयत्न किए थे। किसी दुकान पर ग्रामोफोन बज रहा था किसी पर विचित्र खिलौने टँगे हुए थे। मिठाई की दुकानों पर बड़ी भीड थी। दोपहर का समय होने के कारण सभी लोग खाने के लिये कुछ-न-कुछ खरीद रहे थे। रंग--

बिरंगे और विचित्र खिलौने देखकर मन प्रसन्न हो जाता था। दुकानों को देखते-देखते हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ बड़ी भीड़ लगी हुई थी। चारो ओर से मनुष्य आ-आकर वहाँ एकत्रित हो रहे थे। हमने देखा कि एक बाजीगर तरह-तरह के खेल दिखा रहा था। कभी वह लोंहे के गोले को उछालकर अदृश्य कर देता था। कभी आम का पेड़ खड़ा कर देता था। कभी ठीकरी का रुपया बना देता था। कभी एक कबूतर के कई कबूतर कर देता था। कभी साबूत रस्सी के टुकड़े-टुकड़े करके पुनः वैसी ही कर देता था। ये खेल देखकर हम दंग रह गए। फिर आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक स्थान पर एक ईसाई पादरी अपने धर्म की पुस्तकें मुफ्त बाँट रहा था। बेचारे भोले-भाले ग्रामीण उसकी पुस्तकें ले रहे थे। वह धार्मिक व्याख्यान भी दे रहा था। बहुत से लोग उसके चारो ओर खड़े हुए थे और व्याख्यान सुन रहे थे। ईसाई पादरी भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले हैं। अपने धर्म को फैलाने के लिए वे मेलो मे अवश्य पधारते हैं। आगे चलकर देखा तो आर्य-समाज के उपदेश हो रहे थे। लोगो को ईसाइयों के फंदे से बचने के लिए सचेत किया जा रहा था और हिन्दू-धर्म का महत्व उनके हृदय पर अंकित किया जा रहा था। एक स्थान पर 'रामचरित-मानस' की कथा हो रही थी। कथा-बाचक पंडितजी उपस्थित जनता को राम-भक्ति का प्रसाद दे रहे थे।

एक ओर संगीत हो रहा था। मल्हार राग अलापा जा रहा था। वाद्य-यन्त्र मधुर ध्वनि कर रहे थे। यह स्थान हमें सबसे अधिक रुचा। यहाँ हमारा खूब मनोरंजन हुआ। बैठकर आध घंटे तक आनन्द मे मस्त होकर भूमते रहे। फिर उठकर दंगल देखने चले गए। वहाँ पहलवानों की कुश्तियाँ देखी। एक स्थान पर रास हो रहा था, वहाँ का भी आनन्द लिया।

मेले में घूमते-घूमते ५ बज चुके थे। अतः लौटने का विचार किया। हम लोग काफी थक गए थे। सोचा कि गाड़ी मे चलेंगे। सिकन्दरा स्टेशन दो मील दूर था। वहाँ तक तो पैदल ही आए। फिर गाड़ी पर सवार हुए। भीड़ के कारण बैठने को कहीं जगह न मिली। खड़े-खड़े आना पड़ा। मार्ग मे 'जय शिव' की ध्वनि से गाड़ी गूँजने लगी। गर्मी के कारण हम लोग पसीने में तर हो गये और भीड़ मे हमारा दम घुटने लगा। इस समय वर्षा होने लगी। खिड़कियों से वर्षा का सुहावना दृश्य दिखलाई दिया। काले-काले मेघ आकाश मे इधर-उधर भाग रहे थे और जोर से गर्ज रहे थे। पैदल यात्री भीगते हुए भागे जा रहे थे। कुछ पेड़ो के नीचे खड़े हो गए थे। यह दृश्य देखते-देखते राजामण्डी स्टेशन आ गया। गाडी रुकी। हम लोग उतरे और अपने छात्रालय को चल दिए। सब सानन्द अपने-अपने कमरे मे पहुँचे।

मैं सोते समय मेले की उपयोगिता सोचने लगा। सचमुच मेला एक उपयोगी वस्तु है। इससे बहुत से अनुभव प्राप्त होते हैं। नेत्रो को तो मेले में नाना प्रकार की वस्तुएँ देखकर आनन्द मिलता ही है, साथ में हमारे ज्ञान की भी वृद्धि होती है। हमारा परिचय बढ़ता है। हमारे बहुत से मित्र तथा सम्बन्धी मिल जाते हैं और सैर भी हो जाती है।

किसी मैच का वर्णन

(फुटबॉल का मैच)

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—मैच की आवश्यकता

(२) मैच की तैयारी

(३) खेल के मैदान पर पहुँचना और मैच का आरम्भ

(४) खेल; मैच का फल

(५) ट्राफी मिलना और हर्ष के साथ लौटना
(६) उपसंहार—मैच से लाभ

विद्यार्थियों के लिए खेल खेलना बहुत आवश्यक है। इससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है और शारीरिक शक्ति बढ़ती है। खेलों का प्रचार और विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए मैचों की योजना की जाती है। प्रतिवर्ष इन्टर-स्कूल-टूर्नामेंट और इन्टर-कालेज टूर्नामेंट हुआ करते हैं जिनमें फुटवॉल, हॉकी, क्रिकेट आदि के मैच खेले जाते हैं। विजयी स्कूल या कालेज को पुरस्कार-स्वरूप ट्रॉफी मिलती है।

मैंने जिस मैच को देखा वह इन्टर-स्कूल टूर्नामेंट का फुटवॉल का अन्तिम मैच था। यह सितम्बर मे हुआ। इससे हमारा स्कूल और वैपटिस्ट मिशन हाईस्कूल खेले थे। मैच आरम्भ होने का समय रविवार को ४ बजे था। शनिवार को प्रधानाध्यापकजी ने मैच की सूचना स्कूल में कराई और इच्छा प्रकट की कि प्रत्येक विद्यार्थी मैच देखने को उपस्थित हो। मैं छात्रालय मे रहता था। वहाँ से खेल का मैदान लगभग २०० गज दूर होगा। अतः मुझे वहाँ जाने में कोई कठिनाई नहीं थीं, परन्तु घर पर रहने वाले कई विद्यार्थियों को कठिनाई थी उनके घर खेल के मैदान से ३ या ४ मील दूर थे। बेचारो को प्रधानाध्यापकजी के भय से विवश होकर आना पड़ा। ३ बजे हमारे स्कूल के खिलाड़ियों की टीम छात्रालय में एकत्रित हुई। छात्रालय के अध्यक्ष खेलों के सेक्रेटरी थे। उन्होंने ५ मिनट तक खिलाड़ियो को 'मैच सम्बन्धी कुछ आवश्यक शिक्षा दी। फिर खिलाड़ियों ने खेल की अपनी अपनी वर्दी पहनी।

३॥ बजे सेक्रेटरी के साथ वे पैदल ही खेल के मैदान को चल दिए। उनके पहुँचने के पहले ही वैपटिस्ट स्कूल की टीम आ पहुँची थी। दर्शकगण इकट्ठे हो रहे थे। ठीक ३॥। बजे रफरी

(निरीक्षक) भी आ गये। उन्होने सीटी बजाई। दोनों टीमों के कैप्टिन टौस करने के लिये रैफरी के पास गये। टौस में विपक्षी टीम जीत गई। इस पर वैपटिस्ट स्कूल के विद्यार्थियों ने तालियाँ बजाईं। इसके पश्चात कैप्टिनों ने खिलाड़ियों को यथा स्थान खड़ा किया। ठीक ४ बजे रैफरी की सीटी के साथ मैच आरम्भ हो गया। उस समय का दृश्य बड़ा आकर्षक था। खेल के मैदान के चारो कोनो पर झण्डियाँ लगी हुई थीं। गोल के स्थान पर जाली और लकडी की बल्लियो से चौड़ा दरवाजा-सा बना दिया गया था। मैदान के चारो ओर लाइनो के पीछे विद्यार्थी आदि दर्शको की भीड़ लगी हुई थी। दर्शक-गण कई पंक्तियो में खडे हुए थे। नगर के गण्य-मान्य व्यक्तियो के बैठने के लिये कुर्सियो का प्रबन्ध था। पुरस्कार देने के लिये कलक्टर साहब को सपत्नीक आमन्त्रित किया गया था। अतः पति-पत्नी दोनो आए थे और दर्शको के मध्य कुर्सियो पर विराज रहे थे। एक मेज पर ट्रॉफी रक्खी हुई थी। सडक पर मोटर, ताँगे और बग्घियाँ खडी थी। खोन्चेवाले इधर-उधर पैसे ठग रहे थे।

खेल बड़े जोरो से चल रहा था। दोनों टीमे समान थीं। ३० मिनट तक किसी ओर गोल न हुआ। कभी गेंद हमारी टीम की ओर आ जाती थी और कभी विपक्षी टीम की ओर जाती थी। एक बार गेंद विपक्षियों के गोल में घुसने से बाल-बाल बच गई। उधर का गोल-रक्षक बड़ा फुर्तीला और सजग था। गेंद को बड़ी चतुराई से फेंककर उसने गोल को बचाया। इस पर उधर के विद्यार्थियो ने बड़े जोर की करतल-ध्वनि की। खेल ने जोश पकड़ा। विपक्षी टीम ने हमारी टीम को दबाना आरम्भ किया और अवसर पाकर गेंद को इस प्रकार फेका कि वह गोल-रक्षक के पैरों के बीच से निकल कर गोल मे जा पहुँची। फिर क्या था ? वैपटिस्ट के विद्यार्थियों और दर्शको ने

बड़े जोर की तालियाँ पीटीं। विद्यार्थियों मे से किसी ने हर्ष में अपना हैट उछाला और किसी ने अपना रूमाल। हम लोग उदास हो गये। पर हतोत्साह नही हुए, क्योंकि अभी तो मैच का आधा समय भी समाप्त नहीं हुआ था। हमने आवाज लगा-लगा कर अपने खिलाड़ियो को उत्साहित करना आरम्भ किया। अब हमारी टीम जी तोड़कर खेलने लगी। थोड़ी देर बाद खेल का आधा-समय बीता। रैफरी ने सीटी बजाई। खिलाड़ी मैदान छोड़-छोड़कर विश्राम करने के लिए चल दिये। विपक्षी दर्शकों ने अपने खिलाड़ियों को खूब सराहा। विद्यार्थी गोल करनेवाले खिलाड़ी से लिपट गए। हम लोगों ने अपने खिलाड़ियो को खूब उत्साहित किया। सैक्रेटरी ने उनके खेल की कुछ त्रुटियाँ बतलाईं। दोनों ओर खिलाड़ियों को फल खिलाये गये। १० मिनट के विश्राम के पश्चात् सीटी बजी और खिलाड़ी अपने-अपने स्थान पर जा पहुँचे। खेल पुनः आरम्भ हुआ। हमारी ओर के खिलाड़ी अपनी सारी शक्ति लगा रहे थे। थोड़ी देर तक तो गेद कभी मैदान के इस ओर रही और कभी उस ओर। फिर हमारे एक खिलाड़ी ने गेंद मे ऐसी लात मारी कि वह विपक्षियो के गोल के ठीक सामने गिरी और जैसे ही उछली वैसे ही दूसरे खिलाड़ी ने अपने सिर द्वारा उसे गोल में पहुँचा दिया। गोल हो गया। हम लोगों ने तथा अन्य दर्शकों ने तालियों की तुमुल ध्वनि की। हमारे हर्ष का पारावार न रहा। हम फूले न समाए। विपक्षी लोगों के मुख मलीन हो गये। अब खेल में दोनो ओर से बराबर जोश फैला। उधर के दो-एक खिलाडी चिढ़ गये और फाउल खेलने लगे। इससे विपक्षी टीम को पर्याप्त हानि होने लगी। मैच समाप्त होने में दो ही मिनट बाकी थे कि हमारी टीम ने एक गोल और कर दिया। अब क्या था? केवल दो मिनट रहने के कारण उधर के खिलाड़ियों की हिम्मत टूट गई। वे कुछ न कर सके।

रैफरी ने लम्बी सीटी दी। खेल समाप्त हुआ। हम लोगो ने तालियो की झड़ी लगा दी। हैट और रूमाल उछाले गए। खिलाड़ियो को सोडा-वाटर पिलाया गया और फल खिलाए गए।

इसके पश्चात् पुरस्कार दिया गया। कलक्टर साहब की मेम साहिबा ने पहले खेलो की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। फिर टूर्नामेंट के संचालको को धन्यवाद देते हुए हमारे कैप्टिन को ट्रॉफी प्रदान की। हम लोगों ने खूब करतल-ध्वनि की। लगभग ६ बजे हम सानन्द ट्रॉफी लेकर छात्रालय आए। दूसरे दिन प्रधानाध्यापकजी से मैच जीतने के उपलक्ष मे एक दिन की छुट्टी पाई।

मैच खेलने से कई लाभ होते है। खिलाड़ी धैर्य, सजगता और सहनशक्ति के गुण प्राप्त करते हैं। वे सहयोग के साथ काम करना सीखते है और उनमे नियन्त्रण का भाव आ जाता है। खिलाड़ियों के लाभो के अतिरिक्त मैच से जन-साधारण का अच्छा मनोरंजन होता है। विजयी स्कूल अथवा कालेज की जनता मे ख्याति भी होती है।

हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी हो

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—राष्ट्र-भाषा किसे कहते हैं ? भारतवर्ष को राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता

(२) राष्ट्र-भाषा की विशेषताएँ :—

(क) बोलनेवालों की संख्या का अधिक होना

(ख) भाषा का सरल होना

(ग) प्राचीनता का गौरव

(घ) देश की संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्ध

(ङ) लिपि का सरल और वैज्ञानिक होना

(३) हिन्दी में इन सब विशेषताओं का होना
(४) हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने में कठिनाई
(५) उपसंहार—भविष्य

राष्ट्रभाषा किसे कहते हैं ? राष्ट्रभाषा से अभिप्राय किसी देश की उस भाषा से है जो उस सम्पूर्ण देश से सम्बन्धित कार्य-वाहियो का माध्यम हो और जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारो का साहित्य सुरक्षित रहे । राष्ट्रभाषा के अभिप्राय देश की प्रान्तीय भाषाओ का बहिष्कार करके उनके स्थान मे किसी एक भाषा की स्थापना नहीं है । राष्ट्रभाषा प्रान्तीय भाषाओं का स्थान कभी नही ग्रहण कर सकती । दोनों के क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं । राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध सम्पूर्ण देश से है । प्रान्तीय भाषा का सम्बन्ध एक प्रान्त से है । प्रत्येक प्रान्त मे वहीं के निवासियो की मातृभाषा वहाँ की शिक्षा और सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों का माध्यम रहेगी ।

भारतवर्ष सरीखे वृहत् देश में राष्ट्रभाषा का अभाव अत्यन्त शोचनीय और हानिकर है । कहने की आवश्यकता नहीं कि देश के निवासी इस अभाव का अनुभव करते हुए भी इसकी पूर्ति करने मे संलग्न नही होते । देश मे एक राष्ट्रभाषा के न होने से हमको न जाने कितनी हानियाँ हुई है । भिन्न-भिन्न प्रान्तो का पारस्परिक संसर्ग रुका हुआ है । कोई एक सामान्य भाषा न होने के कारण एक प्रान्त का निवासी दूसरे प्रान्त के निवासी के साथ विचार-विनिमय नही कर सकता । दो प्रान्तो के रहने-वाले ठीक उसी प्रकार एक दूसरे से अनभिज्ञ रहते है जैसे दो देशो के निवासी । इससे हमारे लिए मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण करना कठिन ही नही वरन् असम्भव सा हो गया है । अस्तु, अब हमको एक राष्ट्रभाषा स्थापित करके देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों को राष्ट्रीयता के बन्धन मे जकड़ देना चाहिये जिससे

भारतवर्ष भी अन्य देशो के समान अपनी उन्नति कर सके। हमे भली भाँति ज्ञात है कि विचार-ऐक्य, उद्देश्य-ऐक्य और कर्तव्य-ऐक्य हमारे देश को नया जीवन प्रदान करने के लिए नितान्त आवश्यक हैं, और यह तभी सम्भव है जब देश की एक राष्ट्रभाषा हो।

किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसमे कुछ विशेषताएँ होनी चाहिएँ। उसके बोलनेवालों की संख्या अधिक हो। वह सरल हो जिससे सीखनेवालो को कठिनाई न पड़े। उसे प्राचीनता का गौरव प्राप्त हो। वह देश की सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित हो। उसकी लिपि सरल और वैज्ञानिक हो। ये पाँच बातें उस भाषा मे होनी आवश्यक हैं जो राष्ट्रभाषा के उच्चपद पर आसीन की जाय।

हिन्दी के अतिरिक्त किसी भी भाषा मे ये विशेषताएँ नहीं पाई जातीं। हिन्दी के बोलनेवालों की संख्या बहुत अधिक है। इसका विस्तार बहुत है। यह किसी एक प्रान्त अथवा स्थान की सीमा के भीतर बद्ध नहीं है। समस्त भारतवर्ष में एक कोने से दूसरे कोने तक इसका थोड़ा बहुत आधिपत्य जमा हुआ है और इसके द्वारा एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के निवासियो से अपने भावों और विचारो को किसी न किसी प्रकार प्रकट कर सकते है। कारण यह है कि बँगला, मराठी, गुजराती आदि आर्य-भाषाएँ हिन्दी से बहुत समानता रखती है। ये सभी संस्कृत से सम्बन्धित है और अपने-अपने शब्द-भण्डार के लिए संस्कृत की ओर झुकती हैं। हिन्दी भी संस्कृत से सम्बन्धित है और संस्कृत के शब्द-भंडार से अपने शब्द-भंडार को सजाती है। अतः किसी भी आर्य-भाषा का बोलनेवाला हिन्दी को समझ सकता है।

सरलता का गुण भी हिन्दी मे अधिक है। किसी भी व्यक्ति के लिए जो हिन्दी नहीं जानता इस भाषा का ज्ञान प्राप्त करना

कठिन नहीं। थोड़े से समय में ही वह हिन्दी में अपने विचार प्रकट कर सकता है। यह देखा गया है कि जो विदेशी थोड़े समय के लिए भी हिन्दी भाषा-भाषी लोगों के सम्पर्क में आते हैं वे विचार करने के योग्य टूटी-फूटी हिन्दी सीख लेते हैं। जब विदेशियों की यह दशा है तब भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों के निवासियो के लिए यह कार्य और भी सरल है, क्योंकि उनकी मातृ-भाषाओं और हिन्दी में बहुत कुछ समानता है।

प्राचीनता का गौरव भी हिन्दी को खूब प्राप्त है। इसका जन्म विक्रम की ११ वीं शताब्दी में ही हो गया था। आज इसे जन-साधारण की सेवा करते हुए लगभग ६०० वर्ष व्यतीत हो गए है। जिस प्रकार किसी जाति की उन्नति के लिए उसका प्राचीन इतिहास आवश्यक है उसी प्रकार भाषा का प्राचीन साहित्य उसको शक्ति प्रदान करता है। जब कोई भाषा पर्याप्त समय तक साहित्य-रक्षा द्वारा मँज जाती है तभी वह राष्ट्रभाषा के योग्य होती है। हिन्दी में अच्छे से अच्छा साहित्य है और यह प्राचीन काल से अब तक खूब मँज चुकी है।

हिन्दी पूर्णतया भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित है। इसका साहित्य देश की प्राचीन सभ्यता का रूप हमारे सामने उपस्थित करता है। संस्कृत के प्रायः सभी प्रधान-ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। वेद, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ जिनमें भारतीय सभ्यता झाँक रही है हिन्दी में अनुवादित हो गए हैं। अनेक मौलिक ग्रन्थ भी हिन्दी में रचे गए हैं जो भारतीय संस्कृति के चित्र खीचते है और हमारे प्राचीन समाज का धर्म का, राजनीति का, स्वरूप हमारे नेत्रो के सम्मुख उपस्थित करते हैं। 'पृथ्वीराज-रासो' को ही ले लीजिए। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि हमारे देश में शरणागत-रक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था।

पृथ्वीराज ने एक स्त्री के शरण में आने पर मुहम्मदगोरी से लोहा लिया था। 'रामचरितमानस' तो हिन्दू-सभ्यता का अक्षय भण्डार है। गार्हस्थ्य-जीवन, समाज, धर्म, राजनीति आदि अनेक विषयो को गोस्वामी ने भारतीयता के रंग में रँगकर सर्व साधारण के सामने उपस्थित किया है। उन्होंने भाई-भाई का, माता-पिता और सन्तान का, पति-पत्नी का, राजा-प्रजा का, स्वामी सेवक का सम्बन्ध मर्यादा के साथ चित्रित किया है। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी मे हमारी सभ्यता का, हमारे ज्ञान का, भण्डार सुरक्षित है।

हिन्दी की देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। यह अनेक गुणों से परिपूर्ण है, इसे सभी जानते है। यह सरल, सुबोध और दोष-रहित है। इसमें एक भी अनावश्यक वर्ण नही है। ध्वनि की दृष्टि से भी यह ठीक है। इसमे किसी विशेष प्रकार की ध्वनि के लिए सदैव ही एक वर्ण प्रयुक्त होता है। रोमन और उर्दू-लिपि दोनो ही दोषो से भरी हुई हैं।

इन सब गुणो के होते हुए भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना कुछ लोगो को खलता है। मुसलमानो ने कठिन समस्या उपस्थित कर दी है। वे नहीं चाहते कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बनाई जाय। वे उर्दू को यह पद प्रदान करना चाहते है। कहना न होगा कि उर्दू मे राष्ट्रभाषा की एक भी विशेषता नही है। न उसका विस्तार अधिक है, न वह इतनी सरल है, न उसको प्राचीनता का गौरव प्राप्त है, न उसका सम्बन्ध देश की प्राचीन सभ्यता से है, और न उसकी लिपि दोष-रहित है। केवल साम्प्रदायिकता की गन्दी मनोवृत्ति ही मुसलमान की हिन्दी-विषयक अप्रसन्नता का कारण है।

वास्तव मे हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया जा सकता है। हमें पूर्ण आशा है कि मुसल-

मानो के विरोध करने पर भी निकट भविष्य में हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी। लिपि की समस्या अवश्य जटिल प्रतीत होती है। आज कल कुछ विद्वान् तो यह कहते है कि राष्ट्रभाषा की लिपियाँ देवनागरी और उर्दू-लिपि दोनो हों। पर हमे यह ठीक नहीं जँचता। क्यों जनता पर दो लिपि सीखने का भार डाला जाय? क्यों अच्छी लिपि को न चुन लिया जाय?

विज्ञान के चमत्कार

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का विस्तार
(२) स्थान-सम्बन्धी चमत्कार—रेल, मोटर, जलयान, वायुयान, बुलैट, दूर-दर्शक यन्त्र और टेलीविजन
(३) समाचार सम्बन्धी चमत्कार—तार, टेलीफोन और बिना तार का तार
(४) केमरा
(५) मुद्रण-यन्त्र
(६) ऐक्सरे
(७) आमोद-प्रमोद-सम्बन्धी चमत्कार—सिनेमा, ग्रामोफोन, रेडियो आदि
(८) बिजली का पखा और बिजली का प्रकाश
(९) उपसंहार—विज्ञान का महत्व

यह विज्ञान का युग है। संसार के कोने-कोने मे विज्ञान की दुन्दुभी बज रही है। चारो ओर वैज्ञानिक आविष्कारो तथा अनुसन्धानों की धूम मची हुई है! विज्ञान ने आधुनिक जगत में एक प्रकार से क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। आज ऐसी-ऐसी विचित्र वस्तुएँ विज्ञान की कृपा से प्राप्त हुई हैं जिनकी पहले कोई कल्पना भी नही कर सकता था। आजकल विज्ञान का बहुत प्रचार है।

दिन-दिन अन्यान्य विषयो मे इसका प्रवेश होता जा रहा है। इतिहास मे इसका पर्याप्त प्रवेश हो चुका है। घटनाओ की परीक्षा विज्ञान की कसौटी पर की जाती है। ज्योतिष से ऐतिहासिक समय की जॉच की जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र पर भी विज्ञान ने अपना आधिपत्य जमाया है। धर्म को इसने उलट-पुलट दिया है। हम कह सकते हैं कि आज प्रकृति और मनुष्य-समाज का कोई भी विषय इसकी गति से बाहर नही है। सारा संसार विज्ञान के चमत्कारो से भरा हुआ है। जिधर देखिए उधर ही इसकी करामात दिखलाई देती है।

पहले स्थान-सम्बन्धी चमत्कारो को लीजिए जिन्होने स्थान की दूरी बहुत कम कर दी है। रेल, मोटर और जलयान की तो क्या कहे, आजकल वायुयान और बुलैट थोड़ी सी देर मे सैकडो मील दूर पहुँचा देते है। प्राचीन काल मे एक रावण के पास ही पुष्पक विमान था, आज सर्व-साधारण को सबके लिए वायुयान प्रस्तुत है। बुलैट अत्यन्त तीव्रगामी है। इसमे बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारियाँ हो रही है। इससे पहले कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बम्बई से कलकत्ते कभी कुछ घण्टो मे ही पहुँचा जा सकेगा। कोई यह नहीं सोच सकता था कि एक दिन मनुष्य आकाश में उडने लगेगा। आजकल तो विज्ञान के प्रताप से सब कुछ सभव हो गया है। दूर से दूर स्थान भी घर-ऑगन हो गया है। विज्ञान केवल हमको बात की बात मे दूर पहुँचाता ही नही है बल्कि सहस्रो मील दूरी के दृश्यो को टेलीविजन और दूर-दर्शक-यंत्र द्वारा दिखलाता भी है। टेलीविजन द्वारा किसी दृश्य का चित्र एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। दूर-दर्शक-यन्त्र दृश्य के आकार को बहुत बड़ा बना देता है। वह दृश्य को किसी स्थान को भेजता नही। कैसे आश्चर्य की बात है कि घर बैठे दुनिया के दृश्य देख लिये जायँ।

यदि आज महाभारत का युद्ध होता तो क्यों धृतराष्ट्र को संजय से युद्ध-वर्णन सुनने की आवश्यकता होती ? वे स्वयं युद्ध का दृश्य देख लेते। यदि कोई कहे कि वे तो अन्धे थे तो विज्ञान ने अन्धेपन को भी दूर कर दिया है।

समाचार-सम्बन्धी चमत्कार भी कम आकर्षक नहीं हैं। समाचार भेजने के लिए विज्ञान ने अद्भुत चमत्कारों की सृष्टि की है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पतला तार लगा रहता है। उसकी सहायता से समाचार भेज दिया जाता है। टेलीफोन से आगरे मे बैठा हुआ मनुष्य लन्दन या न्यूयार्क मे बैठे हुए अपने आत्मीय-जन से उसी प्रकार बातचीत कर सकता है जैसे अपने निकट बैठकर। बिना तार का तार क्षण भर में इंगलैण्ड के किसी स्थान के भाषण या समाचार को आगरे में सुना देता है। इसमें तार की बिलकुल आवश्यकता नहीं होती।

केमरा पलक मारते मारते हमारा चित्र खींच लेता है। उड़ती हुई चिड़िया और बन्दूक से निकलती हुई गोली के भी चित्र खींचने मे केमरा को सफलता मिली है। पहले चित्रकार पर्याप्त समय लगाकर चित्र खींचते थे और फिर भी वे चित्र असली पदार्थ के सदृश नही बनते थे। अभी तक केमरे से जो चित्र लिये जाते थे उनमें वास्तविक वस्तु का रूप तो आ जाता था पर रंग नहीं आ पाता था। अब इस प्रकार की युक्ति निकाली गई है जिससे रंग भी आ जाता है।

मुद्रण यन्त्र जरा-सी देर मे किसी पुस्तक की हजारों प्रतियाँ छाप देता है। पहले किसी पुस्तक की दूसरी प्रतिलिपि करने में ही कई महीने लग जाते थे। आजकल मुद्रण-यंत्र ने इतनी उन्नति की है कि एक-एक घण्टे में ५०-५५ हजार प्रतियाँ तक इससे सहज में छप जाती हैं। अब इस यन्त्र में केवल अक्षरों को जोड़कर रखने के अतिरिक्त मनुष्य को इससे हाथ लगाने की

आवश्यकता नहीं रह गई है। एक ओर कोरा कागज आपसे-आप चलता जाता है और दूसरी ओर छपे हुए कागजों की गड्डी अपने आप बनती जाती है।

एक्स-रे विज्ञान का अद्भुत आविष्कार है। इससे विज्ञान-जगत में हलचल हो गई है। किसी पदार्थ के बाहरी भाग को देखने की तो सब लोगों मे शक्ति है पर उसके अन्दर क्या है यह जानना किसी के लिए सम्भव नही। परन्तु आज एक्स-रे की सहायता से लकड़ी, चमड़ा, लोहा, हड्डी आदि के भीतर की वस्तु भी देखी जा सकती है। कैसे आश्चर्य की बात है! डाक्टर लोग इस विज्ञान की देन द्वारा शरीर के अन्दर की दशा देखकर बडे-बड़े भयङ्कर रोगों को दूर करने मे समर्थ हुए हैं। कभी-कभी खेल मे बच्चा किसी छोटे खिलौने को निगल जाता है और उसकी जान पर आ बनती है। उस समय एक्स-रे ही उसकी प्राण रक्षा करती है। इस यन्त्र ने जड पदार्थों की आन्तरिक अवस्था बताकर वैज्ञानिको के अनुसंधान के लिए सामग्री जुटाई है।

आमोद प्रमोद देने वाले कई चमत्कारो को विज्ञान ने जन्म दिया है। सिनेमा कैसा चकित करनेवाला चमत्कार है! परदे पर नाचते, गाते, उछलते-कूदते और बातचीत करते हुए चित्रों को देखकर दाँतो तले अँगुली दबानी पड़ती है। भागते हुए घोड़े की टाप, मोटर की आवाज आदि सुनकर हम दङ्ग रह जाते हैं। प्रकृति के हरे, गुलाबी, काले, लाल, नीले, पीले आदि रङ्ग के पदार्थों को उनके स्वाभाविक रङ्ग में देखकर अचम्भा होता है। उषा की लालिमा, वनस्थली की हरीतिमा, आकाश की नीलिमा, मेघों की कालिमा और सफेदी तथा पुष्पों का तरह-तरह का रङ्ग चित्र-पट पर देखा जाता है। ग्रामोफोन नामक चमत्कार देखकर बुद्धि काम नहीं करती। नाना प्रकार के गाने विभिन्न स्वरों में

सुनकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। धन्य है विज्ञान जिसने ध्वनि पर भी आधिपत्य जमा लिया है। रेडियो भी इसी प्रकार का आविष्कार है। इससे भी घर बैठे संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गायक का गायन सुना जा सकता है। यह ग्रामोफोन से भी अधिक चमत्कृत करने वाला है। ग्रामोफोन में गायकों के रैकर्ड मशीन पर लाए जाते हैं जिनमें गाना भरा रहता है। रेडियो मे यह कुछ भी नहीं करना पड़ता। सामने एक सन्दूक सा रक्खा रहता है और वही भाँति-भाँति के गाने सुनाता रहता है। अभी एक और आविष्कार हुआ है जिससे गाना सुनने के साथ-साथ गायक का चित्र अथवा नर्तकी का नृत्य भी दिखलाई पड़ता है। बलिहारी है विज्ञान की।

बिजली के लैम्प और पंखों का आजकल खूब प्रचार है। बिना किसी के जलाए बटन के दबाने मात्र से क्षण भर मे लैम्प जल जाता है और चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। कैसी आश्चर्यजनक बात है! आँधी और मेह लैम्प को नहीं बुझा सकते। तेल की उसे आवश्यकता नही पड़ती। पंखे बिना किसी के हिलाए चलते रहते हैं, केवल बटन दबाना पड़ता है। पंखा चलाने को किसी नौकर की जरूरत नही होती।

विज्ञान के असंख्य चमत्कार देखे जाते है। सबका दिग्दर्शन कराना असम्भवं सा है। इन चमत्कारो ने विश्व को पूर्णतया परवर्तित कर दिया है। यदि किसी शक्ति से १०० वर्ष पहले का मनुष्य आजकल के संसार में लाया जा सके तो शायद वह यह न पहचान सकेगा कि यह वही संसार है जिसमे पहले वह रहता था। अपनी चारो ओर तरह-तरह के चमत्कार देखकर वह दंग रह जायगा। आजकल विज्ञान बड़ी द्रुत-गति से असम्भव बातो को भी संभव कर रहा है। स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के प्रयत्न करके विधाता की सृष्टि मे हस्तक्षेप कर रहा है। कृत्रिम

मनुष्य बना रहा है और मृतक शरीर में जीवन संचार करने के प्रयत्नो में संलग्न है। यदि यह सब हो गया तो विधाता का स्थान विज्ञान ग्रहण कर लेगा, इसमे सन्देह नही।

पाश्चात्य सभ्यता का भारत पर प्रभाव

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—प्राचीन भारतीय सभ्यता की एक झलक
(२) पाश्चात्य सभ्यता से भारत को हानियाँ—
  (क) फैशन की गुलामी और दिखावटीपन
  (ख) धर्म से उदासीनता
  (ग) रहन-सहन का ऊँचा होना
  (घ) आत्म गौरव पर कुठाराघात
(३) पाश्चात्य सभ्यता से लाभ—
  (क) राष्ट्रीयता के भाव की उत्पत्ति
  (ख) सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों का बहिष्कार
  (ग) समय की पाबन्दी और सफाई-प्रियता
(४) उपसंहार—पाश्चात्य सभ्यता का मूल्य

भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता का मूल मन्त्र था—Plain living and high thinking अर्थात् सादा जीवन और उच्च विचार। हमारे पूर्वज अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करते थे। राजे-महाराजे तक एक दुपट्टा ओढ कर राज-सभा में बैठ जाया करते थे। खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज सब मे उन्हे सादगी प्रिय थी। उनकी प्रकृति बड़ी सीधी-सादी होती थी। उन्हे दिखावटीपन नहीं रुचता था। प्राचीन सभ्यता संतोष का पाठ पढ़ाती थी और आत्मोन्नति के लिए मार्ग परिष्कृत करती थी। धर्म हमारी प्राचीन सभ्यता का महत्वपूर्ण अंग था। प्रत्येक

कार्य की अच्छाई बुराई की जाँच धर्म की कसौटी पर कसकर की जाती थी। वस्तुतः प्राचीन भारतीय सभ्यता पूर्णतः अध्यात्मवाद की ओर झुकी हुई थी।

पर आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय सभ्यता पूर्वकालीन सभ्यता से बिल्कुल पृथक् हो गई है। यहाँ की फैशन की गुलामी और दिखावटीपन पाश्चात्य सभ्यता की देन है। यह देखा जाता है कि भारतीय पुरुष विलायती साहबों की और भारतीय स्त्रियाँ विलायती मेमों की नकल करती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि पाश्चात्य देशों मे फैशन का बाजार गरम है। यहाँ नित्य नए फैशन बदलते रहते हैं जिनका कुप्रभाव भारतवर्ष पर पड़ता रहता है। हमारे देश मे पढ़े-लिखे व्यक्तियों पर तो फैशन का भूत खूब सवार है। हाँ, अशिक्षित उसके पंजे से अभी बाहर हैं। विद्यार्थियो अथवा सरकारी कर्मचारियो को देखिए। उनमें टीम-टाम तड़क-भड़क और चटक-मटक का बाहुल्य मिलेगा। हममे आजकल दिखवटीपन भी कम नहीं है। हम अपनी वास्तविकता को छिपाकर बाहरी शान-शौकत दिखाते हैं। निस्सन्देह हम फैशन और दिखावटीपन के पूरे गुलाम बने हुए हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीयो को धर्म से भी उदासीन बना दिया है। यह इसी सभ्यता का कुप्रभाव है कि हमारे देश में धर्म के बन्धन ढीले पड़ गए हैं। वह धर्म जो एक दिन समस्त भारत पर अपना अधिकार रखता था आज पैरो से कुचला जा रहा है। वह धर्म जो एक दिन इस देश का प्राण था आज पैर का जूता समझा जा रहा है। पाश्चात्य भौतिकवाद ने हमारी धर्म-प्रियता और अध्यात्मवाद की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। खाओ पीओ और मौज उड़ाओ की तुमुल ध्वनि ने देश को गुँजा दिया है। हम ईश्वर और आत्मा को भूल गए हैं।

पाश्चात्य सभ्यता से अन्य हानि यह हुई है कि फैशन के कारण भारतीयों की रहन-सहन ऊँची हो गई है। पहिले यदि किसी परिवार का मासिक व्यय ३० रुपये होता था तो आज-कल ७०—७५ रुपये से कम नहीं होता। पश्चिमवालों की रहन-सहन ऊँची है। उनके संसर्ग में रह कर हम लोगों की रहन-सहन भी ऊँची हो गई है। हमारी आवश्यकताएँ नित्य बढ़ती जा रही हैं। पहले यदि किसी मनुष्य को दो कुरते या अँगरखे, दो धोतियाँ, एक दुपट्टा और एक टोपी पर्याप्त होती थी तो आज उसको कम से कम दो कोट, चार कमीज-कुरते. चार धोतियाँ, एक दो पायजामे, एक-दो पेंट, एक-दो नेकर, दो जोड़े मोजे, दो बनियान और दो टोपियों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई है। कई आवश्यकताएँ तो नितान्त नई हैं। आवश्यकताओं मे तो वृद्धि हो गई है पर आय में नहीं। परिणाम यह हुआ कि भारतीयों का जीवन दुःखमय हो गया है।

भारत को पाश्चात्य सभ्यता से जो सबसे बड़ी हानि हुई है वह आत्मगौरव पर कुठाराघात है। भारतीय स्त्री-पुरुषों में आत्मगौरव का भाव नहीं रह गया है। हम लोग सब बातों में अपने को अँगरेजों से छोटा समझते हैं। अँगरेज हमारे अनुकरणीय हो रहे हैं। उनके ताल सुर पर हम नाचते हैं। उनकी रहन-सहन, उनकी वेष-भूषा, उनके खान-पान का अनुकरण करने में हम अपना महत्व समझते हैं। हममें यह विचार जड़ पकड़ गया है कि प्रत्येक भारतीय वस्तु बुरी है। उसे त्याग देना चाहिए। हम भारतीय रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान से मुख मोड़ रहे हैं। क्या कोई जाति या देश आत्म-गौरव से च्युत होकर अपना अस्तित्व संसार में रख सकता है?

निष्पक्षता की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि पाश्चात्य

सभ्यता से जहाँ हमारे देश को हानियाँ हुई है वहाँ कुछ लाभ भी हुए हैं। यह पाश्चात्य सभ्यता का ही प्रसाद है कि भारतीयो में कुछ राष्ट्रीयता दिखलाई देने लगी है। आज हमारे मध्य महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नहरू, महामना मालवीय, डा० राजेन्द्र-प्रसाद आदि राष्ट्रीय व्यक्ति विद्यमान हैं। देश मे स्वतन्त्रता की लहर फैल रही हैं। कहना न होगा कि पश्चिमवालो का राष्ट्र-प्रेम जगत मे प्रसिद्ध है।

पाश्चात्य सभ्यता ने हमारी सामाजिक कुरीतियो और धार्मिक ढकोसलो का बहिष्कार किया है। स्त्रियो की स्थिति में सुधार, सती की प्रथा का अन्त, बाल विवाहो में कमी, विधवा-विवाह-प्रचार, शूद्रो के प्रति सद्व्यवहार आदि इसी सभ्यता की देन हैं। हमारे धार्मिक ढोगों और आडम्बरों का अन्त भी पाश्चात्य सभ्यता ने ही किया है.

पश्चिमवालो से हमने समय की पाबन्दी और सफाई रखना सीखा है। अँगरेज लोग समय के बड़े पाबन्द होते हैं और साफ-सुथरा रहना उन्हे बहुत पसन्द है। भारतीय लोगो मे इन दोनो बातो का अभाव है। गाँवो मे चले जाइए, आजकल भी इन बातों का अभाव मिलेगा। जो भारतीय अँगरेजो के अथवा उनकी सभ्यता के सम्पर्क में आगए है उनमें सफाई और समय की पाबन्दी खूब देखी जाती है।

ऐसी दशा मे यह प्रश्न उठता है कि भारतवर्ष के लिए पाश्चात्य सभ्यता का क्या मूल्य है? उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि हमारे लिए पाश्चात्य सभ्यता मूल्य-रहित नहीं साबित हुई है। यद्यपि लाभ की अपेक्षा इससे हानियाँ अधिक हुई है तो भी हमें इसका महत्व स्वीकार करना पड़ेगा। जहाँ इसका एक अंग कलुषित है वहाँ दूसरा उज्ज्वल भी है। हमें चाहिए कि नीर-क्षीर विवेक से इसकी अच्छाइयों को ही

ग्रहण करते रहे। तभी हमारा और हमारे देश का कल्याण हो सकता है।

वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध का भारत पर प्रभाव

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—वर्तमान युद्ध की विकरालता

(२) भारतवर्ष पर प्रभाव—

(क) भोजन-वस्त्र की तेजी और कमी

(ख) आवागमन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ

(ग) समाचार-पत्रों पर नियन्त्रण

(घ) देश के नवयुवकों का संहार

(ङ) बेकारी से मुक्ति

(च) वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति

(३) उपसंहार—सारांश

आज विश्व में हिंसा का तांडव नृत्य हो रहा है। आज संसार में रण-चण्डी विकराल रूप धारण करके रक्त से सनी हुई जीभ चारों ओर लपलपा रही है। आज नर-संहार बर्बरता की चरम-सीमा तक पहुँच गया है। आज महाकाल की ध्वंस-लीला हो रही है। आज दिग-दिगन्त व्यापी समर प्रलय कालीन दृश्य उपस्थित कर रहा है। आज इस कुरुक्षेत्र में असंख्य परिवारों का अस्तित्व मिट रहा है, असंख्य स्त्री-पुरुषों की जीवन-लीला समाप्त हो रही है, अनेक देश पद-दलित हो रहे हैं, अनेक राष्ट्र मिट्टी में मिल रहे हैं। इसके बादल भारतवर्ष के क्षितिज पर भी मँडराने लगे हैं और यह अपनी लपटों से हमारे देश को भी झुलसा रहा है।

वर्तमान युद्ध से देश के कोने-कोने में त्राहि-त्राहि मची हुई है। गरीबों को भोजन मिलना दुर्लभ हो रहा है। बंगाल की

दयनीय दशा पढ़कर आँखों में आँसू आ जाते हैं, हृदय विदीर्ण होने लगता है। वहाँ भोजन के अभाव मे बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष क्षुधाग्नि से तड़प-तड़प कर प्राण दे रहे हैं। नित्य सैकड़ों निरीह प्राणियों का अन्त हो रहा है। वे दाने-दाने को तरस रहे हैं। पहले यहाँ दूध-घी की नदियाँ बहती थीं। आज यहाँ दूध-घी का दर्शन होना भी मुश्किल है। आजकल तो दूध का स्थान चाय ने और घी का स्थान तेल ने ले लिया है। खाद्य पदार्थ अत्यन्त मँहगे हो रहे हैं। वस्त्रों की भी यही दशा है। कपड़े का भाव पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गया है। फिर भला गरीब मनुष्य किस प्रकार शरीर ढकने के लिए वस्त्र प्राप्त करें? आजकल उन्हे प्रायः अर्द्ध-नग्न अवस्था में देखा जाता है। यद्यपि सरकार गरीबो के लिए कम मूल्य पर भोजन-वस्त्र प्रदान करने की व्यवस्था कर रही है, तथापि उससे यथेष्ट लाभ नहीं हो रहा है। जन-साधारण भोजन-वस्त्र की तेजी से बहुत दुःखी हैं। सरकार द्वारा खाद्य पदार्थों का कंट्रोल होने पर भी लोगों को समुचित आराम नहीं है। अधिकांश व्यक्ति स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन से वंचित हैं।

वर्तमान युद्ध के कारण यातायात-सम्बन्धी कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई हैं। न मनुष्यो के लिए आने-जाने की सुविधा है और न माल के लिए। यहाँ तक कि कतिपय ट्रेनें सप्ताह मे कुछ दिनों के लिए जन-साधारण की यात्रा के लिए बिल्कुल बन्द कर दी गई है। इससे बड़ी बेचैनी फैली हुई है। यात्रा काफी कष्ट-प्रद हो गई है। ट्रेनें खचाखच भरी रहती है, उनमे तिल रखने को भी स्थान नहीं मिलता। युद्ध का सामान इधर-उधर भेजने के लिए मालगाड़ियाँ धड़ाधड़ दौड़ रही हैं। उन्हे इतना अवकाश नहीं है कि सर्व-साधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। एक स्थान से दूसरे स्थान को माल ले जाने के लिए कभी-कभी महीनो तक रेल के डिब्बों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिसके फल-

स्वरूप कभी किसी स्थान मे किसी माल की कमी पड़ जाती है और कभी किसी माल की।

आजकल समाचार-पत्रो पर सरकार ने कड़ा नियंत्रण कायम कर दिया है। फलतः जनता को वास्तविक समाचार नहीं प्राप्त होते। सेंसर होकर जो समाचार मिलते है उनसे सर्व-साधारण की जिज्ञासा नहीं शांत होती, लोगो को संतोष नहीं मिलता। इससे भी शिक्षित जन-समुदाय मे पर्याप्त बेचैनी फैली हुई है। जो समाचार-पत्र सरकार के विरुद्ध आवाज उठाते है अथवा उसके किसी कार्य की आलोचना करते है उन्हे भारत रक्षा कानून (D. I. R.) का शिकार बनना पड़ता है। अतः अनेक समाचार-पत्रो ने अपनी रक्षा के लिए प्रकाशन बन्द कर दिया है।

वर्तमान युद्ध में अगणित भारतीय नवयुवक काम आ रहे हैं, अनेक भारतमाता के सपूत अपने प्राणो की बाजी लगा रहे हैं क्यो ? क्या गुलामी की बेड़ियो को ढीली करने के लिए, क्या वीरता का सेहरा बँधवाने के लिए, क्या बेकारी की समस्या हल करने के लिए, क्या विक्टोरिया क्रॉस प्राप्त करने के लिए, क्या पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए ? अनेक भारत के वीर शत्रु के कारागृहों मे सड़ रहे हैं। उनके लिए उनके माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-बच्चे आठ-आठ आँसू रो रहे। एक दूसरे के कुशल समाचार से वंचित है।

यह तो हुआ वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध के भारतीय प्रभाव का मलिन पहलू। अब उज्ज्वल पहलू को लीजिये। इस युद्ध ने शिक्षित नवयुवको को बेकारी के अभिशाप से पूर्ण रूप से मुक्त कर दिया है। इससे पूर्व शिक्षित व्यक्ति दर-दर नौकरियो की तलाश में ठोकरें खाते फिरते थे, पर उन्हें कोई टका सेर भी नहीं पूछता था। आज इस युद्ध ने उनके लिए विभिन्न विभाग खोल

दिए है जहाँ उनकी खूब खपत हो रही है। अतः कुछ समय के लिए बेकारी यहाँ से बिदा हो गई है।

इसके अतिरिक्त वर्त्तमान युद्ध के फल-स्वरूप हमारे देश में वाणिज्य—व्यवसाय की भी उन्नति हो रही है। व्यापारी-समाज प्रसन्न है और वस्तुओं के क्रय-विक्रय के भाव मे द्रुति गति से उलट-फेर होने के कारण अधिक लाभ उठा रहा है। कहीं किसी माल की माँग अधिक बढ़ जाती है और कहीं किसी की। इस परिस्थिति से व्यापारी लोग पूर्ण लाभ उठाते है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यापारी अनाज एवं कपडे के भंडारो को भविष्य के लिए सुरक्षित रखते है और मँहगा होने पर बेचते हैं। यद्यपि ऐसा करना सरकार ने वर्जित कर दिया है, तथापि धूर्त व्यापारी कोई न कोई मार्ग निकाल कर अपना उल्लू सीधा कर ही रहे हैं। वे अपने स्वार्थ में अंधे हो रहे है। कितनी लज्जा की बात है कि वे गरीबो का क्षुधा-जन्य करुण-क्रन्दन सुनकर भी इस कुकर्म से विरत नहीं होते! निस्संदेह गरीबो के भोजन-वस्त्र सम्बन्धी संकट का बहुत कुछ उत्तरदायित्व इन अन्न-कपड़े के अजगरो पर है।

आजकल हमारे यहाँ कलों का उद्योग भी उन्नति पर है। युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मशीने धड़ाधड काम कर रही हैं। उन्हें क्षणभर के लिए भी विश्राम नहीं है। अनेक कारखाने खुल गए हैं तथा खुल रहे है। कही वायुयानो के पुर्जे बन रहे है तो कही जलयानो के। कही मशीनगनो का निर्माण हो रहा है तो कहीं बन्दूकों का। कहीं बम्ब बन रहे है तो कहीं गोला बारूद तैयार हो रही है। गर्ज यह कि लड़ाई का तरह-तरह का सामान तैयार हो रहा है। इसके अतिरिक्त फौज के भोजन-वस्त्र तथा निवास-सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अगणित कारखानो मे काम हो रहा है जिससे भारतीय व्यवसाय अभ्युत्थान को प्राप्त हो रहा है।

सारांश यह है कि वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध भारतवर्ष को सब प्रकार से प्रभावित कर रहा है। धन एवं जन से हमारा देश युद्ध में सरकार की भरसक सहायता कर रहा है और इस कार्य में वह किसी भी अन्य देश से पीछे नहीं है। चाहे भारतमाता के दीन-दरिद्र पूतों को पेट भरने के लिए रूखी-सूखी रोटियाँ और शरीर ढकने के लिए फटा-पुराना वस्त्र भी उपलब्ध न हो, पर युद्ध के लिए धन की कमी नहीं है। हमारे अगणित वीर फौज में भरती होकर युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं के छक्के छुड़ा रहे है। जनता अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ एवं कष्ट झेल रही है। पर क्या युद्ध-समाप्ति पर भारत को इसका कुछ पुरस्कार मिलेगा? क्या सरकार द्वारा स्वतन्त्रता-प्रदान करने का वचन कार्य-रूप में परिणत होगा? क्या भारत की आशाएँ फलीभूत होंगी? भविष्य ही इसका निर्णय करेगा।

धन का सदुपयोग

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—धन का महत्व

(२) धन का सदुपयोग—

(क) परिवार का पालन-पोषण और सन्तान की शिक्षा

(ख) दान-पुण्य और परोपकार

(ग) आवश्यक आमोद-प्रमोद और रक्षा

(घ) अपव्यय न करना

(३) उपसंहार—धन के सदुपयोग से लाभ

संसार में धन का महत्व कौन स्वीकार न करेगा? ऐसी कौन सी सांसारिक वस्तु है जो धन द्वारा प्राप्त न की जा सके? ऐसा कौनसा सांसारिक कार्य है जिसकी सफलता धन पर निर्भर न हो? धन से यश मिलता है और विश्व में प्रतिष्ठा होती है।

जिस पर लक्ष्मी देवी की कृपा-दृष्टि हो जाती है वह जगत् में सर्वगुण-सम्पन्न समझा जाता है। किसी ने ठीक ही कहा है—'सर्वगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' अर्थात् सब गुणों का आश्रय धन में है। जिस पर कमला देवी प्रसन्न हो जाती हैं उसकी चारों ओर पूजा होती है। धनिक के अनेक लोग मित्र बन जाते है। अनेक उसकी चापलूसी करते है। अनेक उसकी आज्ञा में खड़े रहते है। धन के प्रताप से सब प्रकार के सुख सुलभ हो जाते हैं। परोपकार के लिए भी धन अच्छा साधन है। विद्या, पुण्य और ऐश्वर्य भी धन से प्राप्त होते है। सच तो यह है कि जिसके पास धन है उसके पास सब कुछ है।

पर केवल धन होने से अधिक लाभ नही, यदि उसका सदुपयोग नही किया जाय। अब प्रश्न उठता है कि धन का किस प्रकार का व्यय उसका सदुपयोग कहा जा सकता है? परिवार के पालन-पोषण और सन्तान की शिक्षा मे धन का व्यय उसका सदुपयोग है। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि अपने धन से अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करे, अपने माता पिता, भाई-बहिन, बाल-बच्चे आदि की उदर-पूर्ति करे। पशु-पक्षी भी अपने बच्चो का पेट भरते है। सन्तान की शिक्षा में भी धन अवश्य व्यय करना चाहिए। कुछ कृपणो को देखा गया है कि वे रुपयो के इतने अधिक प्रेमी होते है कि उन्हें अपने पुत्र-पुत्रियों के शिक्षित करने मे भी नही खर्च करते। धिक्कार है ऐसे नर-पिशाचो को जो अपनी सन्तान से भी अधिक निर्जीव धातु के टुकड़ो को प्यार करते हैं, जो अपनी सन्तान को पढ़ा-लिखा कर योग्य नहीं बनाते। अशिक्षित मनुष्य पूँछ और सींग-रहित पशु ही है। प्रत्येक पिता का धर्म है कि वह उन आत्माओं को जिन्हें परमात्मा ने उसे प्रदान किया है सुसंस्कृत बनाए।

दान-पुण्य और परोपकार मे धन का व्यय करना भी उसका

सदुपयोग है। हमारे पूर्वज ऋषियों का कहना है कि इस प्रकार का व्यय सर्वोत्तम व्यय है। इस प्रकार के व्यय से और अच्छा उपयोग धन का हो ही क्या सकता है। भूखे को रोटी देना, नंगे को वस्त्र देना, दीन-हीन की सहायता करना, मनुष्य मात्र का परम धर्म है। कहा भी है—'परहित सरिस धर्म नहिं भाई'। पूर्वज ऋषियों ने यहाँ तक लिख दिया है कि यदि धन का कुछ भाग दान-पुण्य में न दिया जाय तो वह धन फूल-फल नहीं सकता वरन नष्ट हो जायगा। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह जो कुछ धन उपार्जित करे उसका कुछ-न-कुछ अंश अवश्य दान करे, उसका कुछ-न-कुछ अंश अवश्य समाजोपयोगी कार्यों में लगाए।

आवश्यक आमोद-प्रमोद और अपनी रक्षा में धन का व्यय करना भी उसका सदुपयोग है। जीवन में केवल रोटी-कपड़े से ही काम नहीं चलता। मनुष्य को कुछ आमोद-प्रमोद की, मनोविनोद की वस्तुएँ भी चाहिएँ जिनसे उसके जीवन में मधुरता आ जाय, जीवन भार-स्वरूप प्रतीत न हो। अतएव सिनेमा, नाटक, गाना-बजाना, खेल-कूद आदि में रुपये व्यय करना धन का दुरुपयोग नहीं कहा जा सकता। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सारा धन मनोरंजन के साधनों के जुटाने में ही खर्च कर दिया जाय। मनोरंजन अन्य आवश्यक कार्यों के सम्पादन में बाधा उपस्थित न करे। आपत्ति के समय अपनी रक्षा के लिए धन व्यय करने में किसी को आगा-पीछा नहीं करना चाहिए। जीवन में न जाने कब कोई सङ्कट आ जाय, न जाने कब कोई पीड़ा हो जाय, न जाने कब कोई मुकदमा लग जाय, न जाने कब कोई रोग हो जाय। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि भविष्य के लिए कुछ धन संचित करके अवश्य रक्खे।

धन का अपव्यय करना कभी उचित नहीं। फिजूल खर्ची और बुरे कार्यों में रुपये व्यय करने से लोक-निन्दा होती है और

कभी-कभी भूखा तक मरना पड़ता है। शराबियों, व्यभिचारियों, विलासियो और जुआ खेलनेवालों को देखिये। उनकी कैसी दुर्गति होती है! वे अपने धन को कुकर्मों में फूँककर कैसे-कैसे कष्ट भोगते हैं! पैसे-पैसे के लिये सर्वदा तरसते रहते हैं। अनेक दुर्गुण उनमें अपना घर बनाते हैं और उन्हें पतन की ओर ले जाते हैं। अतः मनुष्य को चाहिये कि अपव्यय कभी न करे और मितव्ययता का सद्गुण प्राप्त करे। मितव्ययी सदा सुखी रहता है। उसके सब कार्य सुचारु रूप से चलते हैं। उसे न कभी किसी महाजन के सामने हाथ पसारना पड़ता है और न कभी नीचा देखना पड़ता है।

जो मनुष्य धन का सदुपयोग करना जानता है उसे बहुत लाभ होते है। वह इस लोक और परलोक मे सुख और शान्ति प्राप्त करता है। आजन्म तो इस दुनिया मे उसकी प्रशंसा होती ही है मरने के पश्चात् भी उसका नाम संसार में बना रहता है। दान-पुण्य और परोपकार करने से वह सर्वप्रिय हो जाता है। लोगों के हृदय पर वह अपना अधिकार जमा लेता है। ऐसे मनुष्य से परमेश्वर भी प्रसन्न रहता है। ऐसे मनुष्य का आत्मिक उत्थान होता है। ऐसा मनुष्य अपना और समाज का कल्याण करता है। अतः हमे चाहिये कि हम धन का सदुपयोग करना सीखें जिससे हमे यश, सुख और शान्ति की प्राप्ति हो।

वायुयान

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—विज्ञान की करामात और वायुयान

(२) वायुयान का जन्म और विकास

(३) वायुयान की बनावट और उड़ने का ढङ्ग

(४) वायुयान से लाभ

(५) वायुयान की हानियाँ और कठिनाइयाँ
(६) उपसंहार—वायुयान का भविष्य

विज्ञान के आविष्कारों ने संसार मे क्रान्ति उपस्थित कर दी है, असम्भव बातो को भी संभव कर दिखलाया है। विज्ञान की करामात देखकर हम आश्चर्य-सागर में निमग्न हो जाते हैं। टेलीफोन, बेतार का तार, ग्रामोफोन, सिनेमा, एक्स रे, केमरा, टेलीविजन वायुयान आदि विज्ञान के अनेक एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक चमत्कार हैं। कौन जानता था एक दिन मनुष्य भी पक्षियो की भाँति वायु मे उड़ सकेगा ? रामचन्द्रजी के पुष्पक विमान की बात कोरी कवि-कल्पना ही समझी जाती थी। पर आज जब हम पक्षियो की तरह पंखों को फड़फड़ाते हुए वायुयानों को इधर से उधर उड़ते हुए देखते है तब पुष्पक-विमान की सत्यता में विश्वास होता है।

आधुनिक वायुयानों का विकास गुब्बारो से हुआ है। आरम्भ पक्षियों को उड़ते हुए देख कर मनुष्य को भी उड़ने की इच्छा हुई। फल-स्वरूप गुब्बारों की रचना की गई। १८वीं शताब्दी मे गुब्बारो का व्यवहार होने लगा। उनमें हाईड्रोजन नामक गैस भरी जाती थी जो वायु से हल्की होने के कारण उनको उड़ा सकती थी। मनुष्य उनमे बैठकर उड़ने लगे। पर उनमें सैर करना भय-रहित न था। हवा के झोंके से गुब्बारा चाहे जिधर उड़ जाता था। उस पर कोई नियंत्रण न था। जो लोग उसमें उड़ते थे वे कभी कभी बड़े संकट मे पड़ जाते थे। धीरे-धीरे गुब्बारों पर नियन्त्रण किया गया। ऐसे गुब्बारे बनाए गये जिन्हे मनुष्य इच्छानुसार जिस दिशा में चाहते थे उड़ा सकते थे। पर उनसे भी सन्तुष्टि नहीं हुई। सन् १८६७ में प्रथम वायुयान के दर्शन हुए। इसके पश्चात् सन् १८६६ में जेप्लिन नामक जर्मन ने 'जेप्लिन' नामक वायुयान का निर्माण किया। यह काफी

अच्छा वायुयान था। यूरोपीय महासमर में इस हवाई जहाज के कार्य देखकर लोग दंग रह गए। इसमे कुछ दोष अवश्य थे। इसमे गैस से भरे गुब्बारे रखने पड़ते थे जिनसे इसका आकार बड़ा हो जाता था और यह द्रुति गति से नही उड़ सकता था। धीरे-धीरे वायुयान मे उन्नति और सुधार होता गया। अन्त मे सन् १६०३ मे अमरीका के ओरविल राइट और विलवर राइट नामक दो भाइयो ने इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की। अतः वायुयान के आविष्कार का श्रेय इन्हीं दो भाइयो को मिला है।

वायुयान प्रायः लकड़ी का बनता है। पर अब लोहे का भी बनने लगा है। इसके कई भाग होते हैं जिनमे एंजिन सब से प्रधान है। यह पैट्रौल का होता है और इसमें ३५ से ४०० घोड़ों तक का बल होता है। एंजिन द्वारा वायुयान पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। यह चाहे जिस दिशा मे घुमाया और चलाया जा सकता है। हवाई जहाज के सिरे की ओर उसको चलानेवाले के लिए स्थान रहता है। जहाज के दोनो किनारो पर पंख होते है। इनकी संख्या २, ४ या ६ होती है। वायुयान में प्रोपैलर होता है जो इसे आगे-पीछे बढ़ा-हटा सकता है। दो पहिए भी होते है जो इस प्रकार रक्खे जाते है कि हवाई जहाज का मुख ऊपर को उठा रहे। हवाई जहाज का रूप चील का सा होता है। जिस समय यह उड़ता है उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो चील उड़ रही हो। उड़ाने के पूर्व पंखों को ठीक तरह से लगाते है और फिर एंजिन को चलाते है। इससे प्रोपैलर बड़े वेग से घूमने लगता है और वायुयान पहियो के ऊपर पृथ्वी पर दौड़ने लगता है। पंखो पर वायु का दबाव पड़ने से यह धरती से ऊपर उठकर वायु मे चलने लगता है।

वायुयान से अनेक लाभ हैं। इसकी गति २०० मील प्रति घण्टे से भी अधिक होती है जिससे महीनो का मार्ग दिनों में

समाप्त हो जाता है। इंगलण्ड से भारतवर्ष आने में ३-४ दिन लगते हैं। जिस द्रुत गति से वायुयान चल सकता है उस गति से न तो स्थल की कोई सवारी जा सकती है और न जल की कोई सवारी। आवागमन के साधनो मे वायुयान ने क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। द्रुत गति के अतिरिक्त यात्रा के इस साधन के लिए न सड़क बनवाने की आवश्यकता है और न पुल बनवाने की। इसको मार्ग में न पर्वतों की बाधा है और न जंगलो की, न नदी-नाले की रुकावट है और न समुद्र की। डाक भी वायुयान से बड़ी शीघ्र आती जाती है। आजकल देश-विदेश से डाक लाने और वहाँ ले जाने के लिए इसका दिन प्रतिदिन प्रयोग बढ़ता जा रहा है। युद्ध के समय संहार और रक्षा के लिए इसका बहुत व्यवहार होता है। यूरोपीय महासमर मे वायुयानो ने धूम मचा दी थी। शत्रुओ की सेना का निरीक्षण, परिस्थित की देख-भाल, विषैली गैसों का फैलाना, बम वर्षा, रसद-प्राप्ति आदि के लिए इनका उपयोग होता है। अब दुर्ग और खाई द्वारा शत्रु अपने प्राण नही बचा सकते। वायुयान मनुष्य को दुर्गम स्थान की सैर करा सकता है। आज तक जो स्थान मनुष्य के न पहुँच सकने के कारण अज्ञात थे अब इसके प्रताप से ज्ञात होने लगे हैं। हवाई जहाज के यात्रियो को सब प्रकार की सुविधाएँ रहती हैं।

इतने लाभ होते हुए भी वायुयान से कुछ हानियाँ हैं। अभी तक वायुयान की यात्रा भय-रहित नहीं है। कभी यह चट्टानो से टकराकर चूर-चूर हो जाता है। कभी दो वायुयान आपस में भिड़ जाते हैं। कभी वायुयान में आग लग जाती है। कभी इसका एंजिन काम करना बन्द कर देता है। प्रत्येक दशा मे यात्रियो की मृत्यु होती है और लाखो रुपयो पर पानी फिर जाता है। वायुयान युद्ध मे बड़ा घातक सिद्ध होता है। इसकी कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। यह लम्बे चौड़े मैदान या चौड़े जलाशय मे ही

उतर सकता है और इसमें यात्रा करने में बहुत रुपये व्यय करने पड़ते हैं। केवल धनिक ही यात्रा के इस साधन का उपयोग कर सकते हैं।

यह सब होते हुए भी वायुयान का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसका प्रचार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। भारत में भी कराची, कलकत्ता, बम्बई, देहली आदि अनेक नगरों में वायुयानों के स्टेशन बन गए हैं। वायुयानो की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। अब तक ५० यात्रियो तक को ले जाने वाले हवाई जहाज बन सके है और ३६ सहस्त्र फीट तक ऊँचे उड़ सके हैं। धीरे-धीरे इनमे यात्रा करने का भय और व्यय कम होता जा रहा है। यदि इसी प्रकार उन्नति होती गई तो वह दिन दूर नही हैं जब रेलों और मोटरों की भाँति ये भी स्थान-स्थान पर दिखलाई देंगे और संसार के दूर से दूर स्थान को एक दरिद्र के लिए भी घर-आँगन बना देंगे।

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता और उसका रूप

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता

(२) स्त्री-शिक्षा के लाभ—

(क) कूपमण्डूकता का न रहना

(ख) गृहस्थी के काम—काज करने में कुशलता प्राप्त करना

(ग) स्वच्छ-प्रियता

(घ) ललित कलाओं के ज्ञान से मनोरंजन की योग्यता प्राप्त करना

(३) स्त्री-शिक्षा का रूप

(४) उपसंहार—भारत में स्त्री-शिक्षा की कमी और उसके दुष्परिणाम

पुरुष जाति के साथ-साथ स्त्री-जाति को शिक्षित बनाना किस देश अथवा जाति के लिए आवश्यक न होगा ? स्त्री माता रूप मे हमारी गुरु और पत्नी रूप मे हमारी परामर्श-दात्री है। इसलिए उसका शिक्षित होना नितान्त वाञ्छनीय है, क्योकि शिक्षा के बिना मस्तिष्क का विकास और ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती। बिना मस्तिष्क के विकास और ज्ञान-भण्डार के गुरु के अथवा परामर्श देने के कार्य मे सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। पत्नी के अशिक्षित होने पर पति की शक्ति आधी रह जाती है और गृहस्थी का कार्य भी सुचारु रूप से नहीं चल सकता।

स्त्री-शिक्षा से अनेक लाभ हैं। मानसिक-विकास और ज्ञान की वृद्धि मे स्त्री की कूप-मण्डूकता जाती रहती है। निरक्षर होने के कारण वह न तो देश-विदेश की दशा से परिचित रह सकती है और न उनकी समस्याओ को ही समझ सकती है। वह अन्ध-विश्वासो और प्रचलित कुरीतियों की भक्त हो जाती है। आदि काल से लेकर अब तक जितना ज्ञान-प्रसार हुआ है उसका वह कुछ भी उपयोग नहीं कर सकती। शिक्षा ही वह शक्ति है जिसे प्राप्त करने पर स्त्री पारवारिक-जीवन में सुख की सुधा-धारा प्रवाहित कर सकती है तथा देश और समाज का कल्याण करने मे पर्याप्त योग दे सकती है।

शिक्षा से स्त्री में गृहस्थी के काम-काज करने की कुशलता आ जाती है। वह घर के सब काम-काज को बड़ी योग्यता और अच्छाई के साथ कर सकती है। वह अपने घर का हिसाब-किताब रख सकती है और खाने-पीने का समुचित प्रबन्ध कर सकती है। उसे घरेलू-चिकित्सा, सीना-पिरोना आदि का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है। वह बच्चो का पालन पोषण भी अच्छी तरह कर सकती है और उनमें अच्छे-अच्छे गुणो का सूत्रपात कर सकती है। वह बच्चो की सर्व-श्रेष्ठ गुरु बन सकती है। इतिहास

में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध है जिनमें माता ने अपने बच्चे को सर्वोत्कृष्ट मनुष्य बनाने की नींव डाली। शिवाजी को शिवाजी बनाने वाली उनकी शिक्षित जननी जीजाबाई थीं। उन्होंने बालक शिवाजी को रामायण, महाभारत आदि वीरता-पूर्ण ग्रन्थों का ज्ञान कराया और उन्हे हिन्दू-धर्म के साँचे में ढाल दिया।

यह भी देखा जाता है कि शिक्षा से स्त्री स्वच्छता-प्रिय हो जाती है। अशिक्षित स्त्रियाँ प्रायः अपने शरीर एवं वस्त्रों की सफाई की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देती। वे आभूषणों के लिए अपने प्राण तक दे सकती हैं, पर साफ-सुथरे वस्त्रो से उन्हें प्रेम नहीं। इसके अतिरिक्त वे अपने घरों को गंदगी का मूर्तिमान रूप दे देती हैं। उनके घरों में कहीं कूड़ा पड़ा रहता है, कहीं टूटे-फूटे बर्तन अटे रहते है, कहीं फटे-पुराने कपड़ो का ढेर लगा रहता है। घर की सारी वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षा से स्वच्छता की ओर प्रवृत्ति होती हैं।

शिक्षा द्वारा स्त्री संगीत आदि ललित कलाओ का ज्ञान प्राप्त करके पारिवारिक जीवन में मधुरता और सरसता का संचार कर सकती है, मनोविनोद की पर्याप्त सामग्री जुटा सकती है। वह अपना, अपने पति का तथा अपने बालकों का समान रूप से मनोरंजन कर सकती है। साहित्य के अध्ययन से उसके हृदय का परिष्कार होता है और उसमें हृदय को लुभानेवाले गुणों का संचार होता है।

अब प्रश्न उठता है कि स्त्री-शिक्षा का रूप क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया जाता है। कुछ लोगो का विचार है कि स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान शिक्षा मिलनी चाहिए। वे सह-शिक्षा के भक्त है और चाहते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के प्रत्येक

कार्य में भाग ले सके। दूसरे वर्ग के लोगों के अनुसार स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र विभिन्न हैं। अतः स्त्री की शिक्षा पुरुष की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिये। हमारी दृष्टि में पिछला विचार अधिक बुद्धि संगत प्रतीत होता है। निस्सन्देह स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं। स्त्री का क्षेत्र गृह है और पुरुष का संसार। गृह की स्वामिनी स्त्री है और सांसारिक क्षेत्र का स्वामी पुरुष। गृह के सभी कार्य—गृहस्थी का संचालन, बालकों का पालन-पोषण, भोजन की व्यवस्था, सिलाई, बुनाई, कशीदाकारी, तीमारदारी, संगीत, चित्र, नृत्यादि द्वारा मनोरंजन इत्यादि स्त्रियों के करने के हैं। पुरुष के कार्य जीविकोपार्जन सन्तान-शिक्षा, देश-सेवा, समाज-सेवा आदि हैं। अतः स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए जो उनके कार्यों में सहायक हो सके। कांग्रेस-नेता श्रीयुत भूलाभाई देसाई ने एक बार कहा था:—

"लड़कियों के लिए अलग शिक्षालयों की इसीलिए आवश्यकता नहीं कि वे लड़कों का मुकाबिला नहीं कर सकतीं, वरन् इसलिए कि लड़की लड़के से भिन्न है। प्रकृति उसे लड़के से भिन्न रखना चाहती है और इस कारण उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक गुणों की सर्वोत्तम संस्कृति और पूर्णतम विकास के लिये उसे विभिन्न परिस्थिति में रखना आवश्यक है। लड़कियों के लिये संगीत, बुनाई, गृह-प्रबन्ध, शिशु-मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र प्रभृति जिन विशेष विषयों के पढ़ाने की आवश्यकता है उनका समुचित प्रबन्ध लड़कों के शिक्षालयों में नहीं हो सकता।"

शायद पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी इस विचार से सहमत न हों। इस सम्बन्ध में हमें यही कहना है कि मनुष्य समाज का कल्याण स्त्री को गृह-स्वामिनी बनाने में ही है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि गृह-कार्यों के अतिरिक्त स्त्रियाँ अन्य कोई कार्य न

करें। वे अवकाशानुसार पुरुषों के कार्यों में भी हाथ बँटा सकती है, घर के काम-काज से छुट्टी पाते ही देश तथा समाज के कार्यों में भाग ले सकती हैं। पर उनका प्रधान क्षेत्र घर ही है।

अतः गृह को ही केन्द्र मानकर स्त्री की शिक्षा-दीक्षा का विधान होना चाहिये। गृहस्थी के काम-काज स्त्री-शिक्षा के विषय बनाये जायँ। जैसे सिलाई, बुनाई, कशीदाकारी, घरेलू चिकित्सा, तीमारदारी, भोजन बनाना, बच्चों का पालन-पोषण और सेवा-शुश्रूषा आदि।

इनके अतिरिक्त स्त्री को साहित्य, संगीत-चित्र, नृत्य आदि ललित कलाओं का भी परिचय हो। पिछले प्रकार के विषय यद्यपि इसके कार्य क्षेत्र मे किसी प्रकार सहायक नहीं तथापि मनोविनोदार्थ उनकी आवश्यकता है, इसमे सन्देह नहीं। इस समय दिल्ली का लेडी इरविन कालेज और पूना का कर्वे-महिला विश्वविद्यालय इस दिशा में स्तुत्य कार्य कर रहे हैं।

स्त्री-शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो। किसी भी देश के लिए शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होना अत्यन्त हानिकर है। उससे देशी सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात होता है, ज्ञानोपार्जन और ज्ञान-प्रसार में भी पर्याप्त रुकावट होती है। यदि हमें अपने देश को उन्नति के मार्ग में अग्रसर करना है तो क्या स्त्री-शिक्षा, क्या पुरुष-शिक्षा, दोनों का माध्यम मातृ-भाषा बनाना चाहिये।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान है। अतः स्त्री-शिक्षा में इन तीनो शक्तियो के विकास की व्यवस्था होनी चाहिये। लड़कियों के लिये खेल आदि व्यायाम का प्रबन्ध हो जिससे उनके शरीर नीरोग एवं भली-भाँति विकसित हों। जैसे घूमना, तैरना, नृत्य, बैडमिंटन, टैनिस आदि का खेल। आत्मिक उत्थान के लिए चारित्रिक शिक्षा की आवश्यकता है।

वर्तमान शिक्षा स्त्रियों के लिए हितकर नही है। इससे उन्हें गृहस्थी के काम-काज का कुछ भी ज्ञान नही हो पाता, प्रत्युत वे उनसे घृणा करने लगती हैं। वे अपव्ययी, फैशन की दासी और विलास-प्रिय हो जाती हैं। न उनमे शारीरिक गठन देखा जाता है और न चरित्र की महत्ता। अतः उसका निराकरण करना चाहिए।

हमारे देश में स्त्री शिक्षा की बहुत कमी है। भारतवर्ष के अतिरिक्त विश्व मे शायद ही कोई ऐसा अन्य देश होगा जहाँ स्त्री-शिक्षा की इतनी न्यूनता हो। जहाँ अधिकांश जन-समाज निरक्षरता की महा व्याधि से पीड़ित है, जहाँ पुरुष ही अशिक्षित है, वहाँ भला स्त्रियों का क्या कहना? अशिक्षा देवी की कृपा से हमारे यहाँ स्त्रियों मे कुरीतियाँ, अन्ध-विश्वास भय, पर्दा, आभूषण-प्रियता, गन्दगी आदि बातें पाई जाती हैं। हर्ष का विषय है कि इधर कुछ दिनों से इस समस्या की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

'जो तोकूँ काँटा बुवै ताहि बोइ तू फूल'

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—उक्ति का अर्थ और उसकी आदर्शता
(२) इस उक्ति के अनुसार आचरण करने से लाभ—
    (क) आत्मोद्धार
    (ख) संसार में आदर और यश
(३) इस उक्ति के अनुसरण से हानि—
    (क) आपत्तियाँ
    (ख) स्वाभिमान को धक्का
(४) उपसंहार—सारांश

इस उक्ति का अर्थ है कि जो बुराई करे उसके साथ भलाई करनी चाहिए। यह एक उच्च आदर्श है जिसका पालन करना कठिन है। प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य ही क्यों प्रत्येक जीव, प्रतिकार चाहता है चीटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणियो मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है। जिसे तंग कीजिएगा उसी मे प्रतिहिंसा की अग्नि धधक उठेगी। यह सृष्टि का एक साधारण नियम है। पर मनुष्य को जो सृष्टि का सिरमोर है चाहिए कि वह पशु-पक्षियो से अपने को ऊँचा उठाए, हृदय की कलुषित भावनाओ को दूर करे, जीवन के आदर्शों का प्रतिपालन करे। कीड़े-मकोड़ो का सा स्वभाव मनुष्य-जाति को शोभा नहीं देता। क्या मनुष्यता यह पाठ पढ़ाती है कि जो बुराई करे उसके साथ बुराई करनी चाहिए? जो मनुष्य बुराई के बदले भलाई करेगा उसे बहुत लाभ होगा। वह अपनी आत्मा का उद्धार कर सकेगा। वह अपनी आत्मा को उच्चता की चरम-सीमा पर पहुंचा सकेगा। वह आत्मा के पवित्र-पद से विभूषित हो सकेगा। बुराई के स्थान पर भलाई करना एक उत्कृष्ट तप है, जिसके सम्मुख सामान्य तप नही ठहर सकता। इसके समक्ष यज्ञ की कोई हस्ती नहीं, जप तुच्छ है, दान दीन है और योग आलसियों का व्यवसाय है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा उच्च से उच्च गुण प्राप्त किया जा सकता है। यह वह साधन है, जिससे अधिक से अधिक शक्ति जुटाई जा सकती है। यह वह साधन है जिससे मनुष्य देवता बन सकता है। जो मनुष्य प्रतिहिंसा की अग्नि में जलता रहता है, जो मनुष्य प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर रहता है उसकी आत्मा पतित हो जाती है। शत्रु से बदला लेने के लिए नाना प्रकार के दाँव-पेंच, कूट-नीति, छल-कपट किए जाते हैं, जिनसे आत्मा पिस जाती है, मनुष्य राक्षस बन जाता है।

बुराई के बदले भलाई करनेवाले, काँटे के बदले फूल बोने

वाले, व्यक्ति का संसार में आदर होता है। जिस व्यक्ति ने आपके साथ बुरा व्यवहार किया है उसके साथ यदि आप भला व्यवहार करते है तो उस पर आपका कितना प्रभाव पड़ेगा! वह आपके सद्व्यवहार के भार से कितना दब जायगा! उसके हृदय में आपके प्रति कितना आदर होगा! वह अपने आपको कितना धिक्कारेगा! उसके हृदय में तो आप घर करेंगे ही साथ में संसार के अन्य मनुष्यों के भी आप आदर-पात्र होंगे। वे उसकी निन्दा करेंगे और आप की बड़ाई। वे आपका हृदय से स्वागत करेंगे। आपकी प्रशंसा करने मे अपनी वाणी को धन्य समझेंगे। बुराई के स्थान पर भलाई करनेवाले मनुष्य को पूर्ण गौरव प्राप्त होता है। सभी उसकी श्रद्धा करते हैं। सभी उसका यश-गान करते हैं। सभी उसको मस्तक नवाते हैं। झोंपड़ी से लेकर राज-प्रासाद तक उसका सत्कार होता है। मृत्यु-पश्चात् ऐसे लोगो की यश-चन्द्रिका विश्व को आलोकित करती रहती है। इतिहास मे ऐसे व्यक्तियो के नाम स्वर्णाक्षरों मे लिखे जाते है। राम का उदाहरण ले लीजिये। कैकेई ने उनके साथ यह दुर्व्यवहार किया कि उन्हें १४ वर्ष का वनवास दिया, परन्तु राम ने इसका बदला सदैव सद्व्यवहार द्वारा ही दिया। फलतः वह आजीवन आत्मग्लानि के सागर में निमग्न रही। देखिए उसने स्वयं एक स्थान पर क्या कहा है :—

> युग-युग चलती रहे कठोर कहानी—
> 'रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।'
> निज जन्म-जन्म मे सुने जीव यह मेरा—
> धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'

राम के चरित्र की यह विशेषता उन्हें क्या राजा क्या रङ्क, क्या स्त्री क्या पुरुष, क्या वालक क्या वृद्ध सभी का हृदय-सम्राट् वनाती है।

बुराई के बदले भलाई करने से लाभ तो होते ही हैं, किन्तु कुछ हानि भी होती है। इस आदर्श का अनुयायी व्यक्ति आपत्तियो से घिरा रहता है। संसार में दुरात्माओं की संख्या बहुत है। जब कोई मनुष्य थप्पड़ का जवाब घूँसे से, तलवार का जवाब गोली से, नहीं देता तब दुष्ट लोग उसे कायर समझते हैं। वे स्थान-स्थान पर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। इससे कुछ समय के लिए विरोधियो एवं विपक्षियो को प्रोत्साहन मिलता है और वे अपने दुराचारो को बढ़ाते चले जाते हैं जिससे उसे अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। किन्तु यह दशा अधिक दिन तक नही रहती। लोकमत इसका नियन्त्रण करता है। अत्याचारियो तथा अन्यायियों का दमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त विपक्षियों के हृदय में भी परिवर्तन होता है। यह सम्भव नहीं कि नीच से नीच व्यक्ति भी सदैव आपके साथ बुराई ही करता जाय, जब आप उसका जवाब भलाई से देते है।

बुराई के स्थान पर भलाई करने से स्वाभिमान को भी धक्का लगता है। स्वाभिमान तो यह चाहता है कि जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। जो आपका आदर करे उसका आपको आदर करना चाहिये। जो आपका तिरस्कार करे उसका आपको तिरस्कार करना चाहिये। जो आप पर प्रहार करे उस पर आपको प्रहार करना चाहिये।

सारांश यह है कि सांसारिक दृष्टि से बुराई के बदले भलाई का व्यवहार करना उचित नहीं ठहरता है। परन्तु मनुष्य को तो निरा संसारी न बना रहकर अपना कल्याण-पथ ढूँढ़ना चाहिये। यदि कोई बात उस पथ में कंटक का काम करे तो उसे हटा देने में ही भला है। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है बुराई के बदले भलाई करना, काँटो के स्थान फूल बोना, मनुष्य के लिये कल्याण-पथ ही है।

ब्रह्मचर्य की महिमा

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—ब्रह्मचर्य की आवश्यकता
(२) शारीरिक पुष्टता एवं सौन्दर्य
(३) मानसिक विकास
(४) आत्मिक उत्थान
(५) कतिपय ब्रह्मचारियों के उदाहरण
(६) उपसंहार—सारांश

'न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्य्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः'

इस कथन के अनुसार ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट तप है । इससे मनुष्य देवता बन जाता है । ऐसे महान् ब्रह्मचर्य को ठुकराकर आज हम पद-दलित हो रहे हैं । ऐसे महान ब्रह्मचर्य का तिरस्कार करके आज हम अधोगति के गर्त मे पड़े हुए हैं । कहाँ तो हमारे वीर्यवान्, प्रतापी, शक्ति-सम्पन्न एवं दीर्घजीवी पूर्वज और कहाँ निस्तेज, दुर्बल, रुग्ण और अल्पायु हम ! कहाँ तो विश्व-विजयी हमारे पूर्वज और कहाँ पराधीन हम ! कहाँ तो बल, बुद्धि एवं अशिक्षित हम ! इस भयंकर पतन से उद्धार पाने के लिए हमें ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है । ब्रह्मचर्य ही हमें अपने पूर्व गौरव, पूर्व समृद्धि, पूर्व वैभव, को प्रदान कर सकेगा ।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से मनुष्य का शरीर हृष्ट-पुष्ट और नीरोग होता है । ब्रह्मचर्य से वीर्य-रक्षा होती है और वीर्य शरीर की नीरोगता एवं पुष्टता का कारण है । मुख पर कमनीयता और कपोलों पर गुलाबी छटा किसके प्रताप से देखी जाती है ? बैलों के से कन्धे और चौड़ी छाती किसकी देन है ? इस्पात के सदृश भुजदंड किसका प्रसाद है ? वाणी में सिंह-गर्जन के समान

तीव्रता किसके प्रताप से प्राप्त होती है ? इन सब प्रश्नों का एक मात्र उत्तर ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से शरीर को अद्भुत शक्ति तो मिलती ही है, पर अद्भुत कान्ति भी प्राप्त होती है।

मस्तिष्क की प्रौढ़ता एवं समुचित विकास के लिए भी ब्रह्मचर्य की कम महत्ता नहीं। बुद्धि को प्रखरता एवं शुद्धता प्रदान करने वाली वस्तु ब्रह्मचर्य ही है। यही कारण है कि विद्या प्राप्त करने वालों के लिए एक स्वर से सभी ने ब्रह्मचर्य पर जोर दिया है, विद्यार्थियो के लिए अविवाहित रहकर विद्या प्राप्त करने का महत्व स्वीकार किया है। यहाँ तक कि हमारे पूर्वजों ने सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों में विभाजित करके ब्रह्मचर्याश्रम मे ही शिक्षा का विधान किया है। परन्तु खेद का विषय है कि पाश्चात्य सभ्यता के झोको से हमारा यह सुन्दर विधान टूट गया है। आजकल यह अनिवार्य नही है कि विद्यार्थी-जीवन अविवाहित रहकर ही व्यतीत किया जाय। इससे जो हानियाँ हो रही हैं उससे सभी भली भाँति परिचित हैं। ब्रह्मचर्य से मनन शक्ति की भी वृद्धि होती है और मस्तिष्क कार्य करते-करते जल्दी नहीं थकता। इससे स्मरण-शक्ति भी बढ़ती है। प्राचीन काल मे ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हमारे पूर्वजों की स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र हो जाती थी कि जिस बात को वे एक बार सुन लेते थे अथवा जिस वस्तु को वे एक बार देख लेते थे उसे आजन्म नहीं भूलते थे। अनुपम साहस एवं निर्भीकता का जनक भी ब्रह्मच ही होता है।

ब्रह्मचर्य से आत्मिक-उत्थान भी होता है। क्यों न हो ? जब बुद्धि शुद्ध होगी तब आत्मिक-उत्थान अवश्यम्भावी है। शुद्ध बुद्धि अवश्य मनुष्य को ऐसे कार्यों में संलग्न करेगी जिससे उसकी आत्मा को शान्ति मिले और उसकी शक्ति बढ़े। ब्रह्मचर्य के प्रसाद से साधारण से साधारण मनुष्य भी अपनी आत्मा का

संस्कार करते हुए मुक्ति तक के अधिकारी हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य उत्तम तप है। जैसा कि आरम्भ में ही कहा जा चुका है—

'नतपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्'

ब्रह्मचर्य-व्रती की विश्व में कीर्ति-पताका फहराती है। हनुमानजी, भीष्मपितामह आदि ब्रह्मचारियों के यश से आज तक संसार अलोकित हो रहा है। इन महान पुरुषो के कार्य स्मरण करके मन मे अनुपम आनन्द की सृष्टि होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से भीष्म पितामह के सामने उनके महान प्रतापी गुरु परशुरामजी तक को हार माननी पड़ी। इतना ही नही श्री कृष्ण भगवान को भी उनके लिए मस्तक झुकाना पड़ा। हनुमानजी ने एक ही घूँसे से रावण को मूर्च्छित कर दिया। इतना ही नही वे एक सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघकर पार कर गए और उन्होने द्रोणाचल को लाकर लक्ष्मण जी की प्राण रक्षा की। यह शक्ति किसने प्रदान की ? ब्रह्मचर्य ने।

इतिहास से यह बात भली भाँति प्रमाणित होती है कि सचमुच ब्रह्मचर्य से असम्भव कार्य भी सम्भव हो सकता है। ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। ब्रह्मचर्य से हम सम्पूर्ण विश्व के अधिकारी बन सकते हैं। ब्रह्मचर्य से हम इस लोक एवं परलोक दोनो मे सुख के भागी हो सकते है। ब्रह्मचर्य ही हमारी विद्या, वैभव एवं उन्नति का एक मात्र साधन है। ब्रह्मचर्य ही हमारी भारतमाता की बेड़ियाँ काटने के लिए तीक्ष्ण छेनी है। ब्रह्मचर्य ही अपूर्व शक्ति संचार करने वाला रसायन है। ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना'

रूप-रेखा:—

(१) प्रस्तावना—उक्ति का अर्थ

(२) सुमति से शक्ति की प्राप्ति

(३) सुमति से ऐश्वर्य लाभ

(४) सुमति से लक्ष्मीजी की कृपा

(५) सुमति से सुख

(६) उपसंहार—हमारे देश में सुमति का अभाव और उसका दुष्परिणाम

जहाँ मेल जोल होता है वहाँ सब प्रकार का ऐश्वर्य छा जाता है! जिस घर में स्त्री-पुरुष मेल-जोल से रहते हैं, जिस घर में पति-पत्नी में कलह नहीं होता, वहाँ लक्ष्मीजी निवास करती हैं, वहाँ सब प्रकार का वैभव देखा जाता है। जिस समाज में लोग हिल-मिल कर काम करते हैं वह सम्पन्न हो जाता है। जिस देश में फूट-दानवी की दाल नहीं गलती, जो देश पारस्परिक झगड़ों से सुरक्षित हैं, जहाँ भिन्न-भिन्न जाति भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न वर्ग, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायक के लोग विचार विषमता के रहते हुए भी कलह की कीचड़ में नहीं फँसते, वह देश सब प्रकार से भरा-पूरा देखा जाता है। यही इस उक्ति का अर्थ है। इसके 'संपति' शब्द को विस्तृत एवं व्यापक अर्थ में लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत धन दौलत, वैभव, गौरव, यश, सुख, शक्ति आदि सभी का का समावेश हो जाता है।

अब हमें देखना है कि जिस प्रकार सुमति से नाना प्रकार की संपत्ति प्राप्त होती है। सुमित से शक्ति मिलती है। Unity is strength अर्थात् एकता बल है। कहावत भी है कि एक और एक ग्यारह होते हैं। सूत की एक अंटी लीजिए। यदि उसको कोई तोड़ने का प्रयत्न करे तो सफल नहीं हो सकता। क्यों? सूत के

कच्चे धागे जो पृथक् पृथक् बड़ी सरलता से तोड़े जा सकते हैं मिलकर ऐसी शक्ति धारण करते हैं जिनका सामना करना कठिन कार्य होता है। जब कच्चे धागों का यह हाल है तब मनुष्यों का क्या कहना ? सुमति से मनुष्य की शक्ति कई गुनी हो जाती है। एकता की रज्जु से बँधे हुए जन-समुदाय की ओर कौन आँख उठा सकता है ? सुमति के शस्त्र से सुसज्जित समाज का कौन बाल बाँका कर सकता है ? यह सुमति की ही शक्ति है कि मुट्ठी भर अँगरेजों ने भारत जैसे बृहत् देश पर आधिपत्य जमा रक्खा है। यह सुमति की ही शक्ति है कि केवल ६-७ करोड़ जर्मनों ने समस्त विश्व में तहलका मचा रक्खा है।

सुमति से धन-दौलत की भी प्राप्ति होती है। जब घर के लोग हिल-मिलकर काम करेंगे तब उस घर की आर्थिक दशा क्यों न सुधरेगी, तब लक्ष्मीजी उस पर क्यों न कृपा करेंगी ? जिस देश में एकता का साम्राज्य रहता है वहाँ धन-धान्य का अभाव नहीं रहता। क्या अमरीका, क्या इङ्गलैण्ड, क्या जापान, जितने भी समृद्धशाली देश हैं वहाँ सुमति का बोल बाला है। वास्तव में सुमति के प्रताप से दरिद्रता का बन्धन कट जाता है।

सुमति से ऐश्वर्य-लाभ भी होता है। जब शक्ति होगी, जब रुपया-पैसा होगा तब चारों ओर सिक्का जमेगा, चारों ओर प्रभुत्व स्थापित होगा, चारों ओर महिमा फैलेगी, चारों ओर गौरव छा जायगा। जिस जाति, जिस समाज, जिस देश के लोग मेल-जोल से रहते हैं, कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करते हैं, प्रत्येक समस्या को सुलझाने में हाथ बँटाते हैं, पारस्परिक मत-भेद में नहीं उलझते हैं वह जाति, वह समाज, वह देश विश्व में अपना नाम उज्ज्वल करता है। उसे यश मिलता है, उसका सर्वत्र आदर होता है। सभी उसकी महत्ता स्वीकार करते हैं। सभी उसका गुण-गान करते हैं।

सुमति के प्रसाद से शक्ति, धन-धान्य ऐश्वर्य आदि नाना प्रकार की सम्पत्ति उपलब्ध होती है जिससे सुख मिलता है, जीवन सरस हो जाता है। वस्तुतः जिस व्यक्ति का समाज में गौरव होगा, जो सबसे मिल कर रहेगा, जिससे दरिद्रता दूर रहेगी, जो सशक्त होगा, वह क्योंकर सुखी न होगा? दुःख का कारण असफलता होता है। सुमति के सम्मुख असफलता नहीं टिक सकती। जिस कार्य की ओर सहस्रों हाथ बढ़ेंगे उसमें कहाँ तक सफलता न मिलेगी? जिस कार्य के करने के लिए एक दूसरे की सहायता को सदैव कटिबद्ध रहेगा उसमें कहाँ तक कामयाबी न होगी?

खेद की बात है कि हमारे देश में लोगों में सुमति नहीं है, सभी जगह फूट की बेल फैली हुई है। एक कार्य में दूसरा सहायता नहीं देता, एक के साथ दूसरा सहयोग नहीं करता। प्रत्युत् एक दूसरे का गला काटने को तैयार रहता है, एक दूसरे की उन्नति देखकर जलता है, एक दूसरे के मार्ग में रोड़े अटकाता है। एक जाति दूसरी जाति से घृणा करती है। एक धर्मानुयायी दूसरे धर्मानुयायी को देखना नही चाहता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य औ शूद्र आपस में झगड़ते हैं। हिन्दू और मुसलमान आपस में शत्रुता का व्यवहार करते हैं। जिस देश की यह दशा हो वह स्वप्न में भी उन्नति नहीं कर सकता, वह स्वप्न में भी ऊँचा नहीं उठ सकता। भारतवर्ष में सुमति के अभाव से जो दुष्परिणाम हो रहे हैं वह किसी से छिपे नहीं। एकता की कमी का अनुचित लाभ विदेशी लोग उठा रहे हैं। उन्होंने हमारी स्वतन्त्रता का ही अपहरण नही किया है, हम लोगों के बीच एक चौड़ी खाई भी बना दी है। वे भारत के भिन्न-भिन्न वर्गों, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो. में मन मुटाव पैदा करते है, उन्हें आपस में लड़ाते रहते हैं, जिससे हम कभी एक राष्ट्र की स्थापना न कर

सकें। आपस मे लड़ा-भिड़ा कर इन विदेशियों ने हमारे धन पर भी हाथ साफ किया है। इस प्रकार divide and rule (फूट डालो और राज करो) की कूटनीति से अँग्रेजो ने भारतवर्ष की दयनीय दशा कर दी है। भारतवासियो को विपत्ति के समुद्र में डुबो दिया है। हम भारतवासियो को, जिनकी नसों में पुण्यात्माओं का रक्त प्रवाहित हो रहा है, चाहिये कि फूट का मुँह काला करें और अपने देश को समृद्धशाली बनाकर अपने पूर्वजों के नाम को उज्ज्वल करें।

दीर्घ-जीवी बनने के साधन

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—दीर्घ-जीवी बनने की आवश्यकता

(२) दीर्घ-जीवी बनने के साधन—

(क) स्वच्छता

(ख) सादा भोजन, मादक वस्तुओं का त्याग

(ग) व्यायाम

(घ) गहरी और पर्याप्त निद्रा

(ङ) नियमित जीवन

(च) ब्रह्मचर्य

(३) उपसंहार—वर्तमान भारत में दीर्घ-जीवियों का अभाव

प्रत्येक व्यक्ति दीर्घजीवी बनना चाहता है। क्यो?-सांसारिक सुखो के उपभोग के लिए। कतिपय महान् आत्माएँ मानव-समाज की सेवा और सुधार के लिए भी अधिक काल तक जीवित रहना चाहती हैं। पहला उद्देश्य स्वार्थपूर्ण है और दूसरा परमार्थ-पूर्ण। वास्तव में संसार के सुखो में लिप्त रहने के लिए दीर्घायु पाने की कोई आवश्यकता एवं महत्व नहीं। इससे न तो लोक सधता है और न परलोक। हाँ, परोपकार, समाज-सेवा आदि के लिए

दीर्घजीवन की नितान्त आवश्यकता है। इससे मनुष्य की इस लोक मे ख्याति एवं आदर होता है और परलोक में वह परमपद का अधिकारी बनता है। इसके अतिरिक्त दीर्घजीवन की इसलिए भी आवश्यकता होती है कि आश्रित परिवार को सुख मिले। अल्पजीवियों के सम्बन्धी एवं आश्रित उनके अभाव में शोक-सागर में निमग्न हो जाते हैं, संसार उनके लिए सूना हो जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि दीर्घजीवी कैसे बना जा सकता है, दीर्घजीवी बनने के क्या साधन हैं? स्वच्छता दीर्घजीवन के लिए एक साधन है। हमें चाहिये कि हम शुद्ध वायु, शुद्ध जल और शुद्ध भोजन का उपयोग करें, नित्य स्नान करें, वस्त्रों को स्वच्छ रक्खें और शरीर के प्रत्येक अंग की गन्दगी से रक्षा करें। दाँत, नाखून नाक और नेत्र इन शारीरिक अवयवों को सदैव मैल-रहित रखने का विशेष ध्यान रखना चाहिये। वस्तुतः स्वच्छता स्वास्थ्य की जननी है और स्वास्थ्य दीर्घजीवन का जनक है।

दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन सादा भोजन है। प्रत्येक मनुष्य को जो दीर्घकाल तक जीवित रहने का स्वप्न देखता है शीघ्र पचनेवाला, पुष्टिकारक और सादा भोजन करना चाहिये। मस्तिष्क की शक्ति और रुधिर की वृद्धि के लिए रोटी, दाल, भात, तरकारी और दूध से बढ़कर लाभदायक अन्य भोजन नहीं है। तरकारी पत्तेदार हो तो अत्युत्तम है। फल खाना भी आवश्यक है। कुछ कच्ची तरकारी भी खानी चाहिये। रोटी ऐसे आटे की बनवानी चाहिए जिससे भूसी अलग न की गई हो। दाल से छिलका नही हटाना चाहिये। चावल पकाने में माँड़ नही निकालना चाहिये। दूध धारोष्ण हो तो बड़ा अच्छा है। यदि धारोष्ण दूध न मिल सके तो उसको एक उबाल तक गर्म करके पीना चाहिए। खटाई, लाल मिर्च और मसालो का जहाँ तक हो सके कम प्रयोग करना चाहिये। शराब, अफीम, भाँग, चाय,

कहवा आदि मादक वस्तुओ से सर्वथा बचना चाहिये। इसके अतिरिक्त भोजन धीरे-धीरे चवा-चवाकर करना चाहिए जिससे वह शीघ्र पच जाय।

दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन व्यायाम है। व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। इससे शारीरिक अंगों की शक्ति स्थिर रक्खी जा सकती है और बढ़ाई भी जा सकती है। इससे हमारे शरीर के प्रत्येक अंग मे रुधिर-संचार समुचित रूप से होता है, क्योंकि इससे मांस की पेशियो पर दबाव पड़ता है और रुधिर तीव्र गति से दौड़ने लगता है। रक्त के तेज दौड़ने से शरीर मे स्फूर्ति और वल आता है। व्यायाम से पाचन-क्रिया भी ठीक रहती है जिससे शरीर रोग मुक्त रहता है। नीरोगता से मनुष्य दीर्घजीवी बनता है। जिस प्रकार घुन-कीट लकडी को खोखला करके नष्ट कर डालता है उसी प्रकार रोग शरीर को जर्जर बनाकर नष्ट कर देता है।

गहरी और पर्याप्त निद्रा दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह जल्दी सो जाय और जल्दी जग जाय। १० बजे के भीतर ही सो जाना चाहिए और ४ बजे तक जग जाना चाहिए। यह वह समय है जब कि निद्रा गहरी होती है। ४ बजे के पश्चात् उठनेवाला व्यक्ति दिन भर आलस्य मे डूबा रहता है। ४ बजे से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त मे जगनेवाला व्यक्ति स्फूर्तिवान्, स्वस्थ और शक्ति-सम्पन्न बनता है। कहा भी है— Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy and wise अर्थात् प्रातःकाल उठने से मनुष्य स्वस्थ, समृद्ध एवं बुद्धिमान बनता है।

नियमित जीवन दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन है। अनियमित जीवन व्यतीत करने से स्वास्थ्य का सत्यानाश हो जाता है और चित्त भी दुःखी रहता है। जो मनुष्य कभी १० बजे

भोजन करता है और कभी १२ बजे, कभी सायंकाल ५ बजे शौच को जाता है और कभी ८ बजे, कभी रात्रि को ६ बजे सो जाता है और कभी १२ बजे, कभी ५ बजे प्रातः काल सोकर उठता है और कभी ७ बजे, वह कैसे स्वस्थ रह सकता है। वह तो अपने हाथ अपने पैरों में कुल्हाडी मारता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कार्य नियमानुसार हो जिससे शरीर में कोई गड़बड़ न होने पाए।

ब्रह्मचर्य तो दीर्घ जीवन का मूलाधार ही है। इससे वीर्य-रक्षा होती है और वीर्य-रक्षा से आयु में वृद्धि होती है। हमारे पूर्वज ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सहस्रो वर्ष की आयु प्राप्त करते थे। यहाँ तक कि वे मृत्यु को जीत लेते थे। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि दीर्घ जीवन का इच्छुक व्यक्ति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे।

उपर्युक्त बातो को दृष्टिगत रखते हुए जीवन यापन करने से प्रत्येक मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है। खेद की बात है कि आजकल हमारे देश मे मनुष्य इन बातो को व्यवहार मे नहीं लाते। फलतः हम लोगों में कोई दीर्घजीवी नहीं होता। जिस देश मे लोग स्वच्छता का महत्व न जानते हों, बाल-विवाह द्वारा ब्रह्मचर्य पर कुठाराघात करते हों वहाँ दीर्घजीवी कैसे पैदा हों?

कलम और तलवार की पारस्परिक उपयोगिता

रूप-रेखा :—

(१) प्रस्तावना—दोनों का संसार में महत्व

(२) दोनों में भेद

(३) दोनों के कार्य-क्षेत्र

(४) तलवार की अपेक्षा कलम की श्रेष्ठता—

(क) सार्वजनिक सेवा

(ख) अहिंसात्मक कार्य

(ग) चिरस्थायी कीर्ति

(५) उपसंहार—सारांश

संसार मे कलम और तलवार दोनो का अपना-अपना महत्व है। किसी के भी बिना काम नहीं चल सकता। इन दोनों के क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। जहाँ तलवार काम करती है उस क्षेत्र मे कलम का प्रवेश नहीं। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करती हुई समाज की सेवा करती रहती हैं।

कलम और तलवार दोनो हमारे हाथ के हथियार हैं। एक का सम्बन्ध हमारे सम्पूर्ण हृदय से है और दूसरे का हृदय के एक अङ्ग से। कलम हृदय के समस्त भावो को प्रकट करती है और तलवार केवल क्रोध और वीरोत्साह को। कलम कागज पर क्रीडा करती है और तलवार शरीर पर। कलम की प्यास स्याही बुझाती है और तलवार की प्यास रक्त। कलम की सौम्य-मूर्ति है और तलवार की भयावनी। कलम सर्व-साधारण के प्रेम की पात्र होती है और तलवार केवल वीर के प्रेम की पात्र।

कलम और तलवार के कार्य-क्षेत्र भी भिन्न है। पहली का कार्य-क्षेत्र समाज है और दूसरी का रण-भूमि। पहली हृदय पर प्रहार करती है और दूसरी अङ्ग पर। पहली अन्याय, पाप, कुरीति, अत्याचार आदि को भगाती है और दूसरी शत्रु की सेना को। पहली शान्ति, प्रेम, सहानुभूति आदि की स्थापना करती है और दूसरी साम्राज्य की। पहली स्थायी कीर्ति पाती है और दूसरी धन, देश आदि की विजय। पहली का कार्य-क्षेत्र समस्त मानव-जाति है और दूसरी का इसका केवल एक अङ्ग। अतः पहली का कार्य-क्षेत्र विस्तृत है और दूसरी का संकुचित।

तलवार की अपेक्षा कलम कहीं श्रेष्ठ है। कलम सार्वजनिक सेवा का अच्छा साधन है। कभी-कभी तलवार भी सार्वजनिक सेवा करती है पर उसकी सेवा क्षणिक और अस्थायी होती है। कलम कभी हमको आनन्द से भर देती है, कभी हमें मौन सान्त्वना देती है, कभी हमे उत्साहित करती है, कभी हमें कुमार्ग से बचाती है, कभी हमे ऊँचा उठाती है, कभी हमें दयार्द्र करती है, कभी हमे भक्ति की पीयूष-धारा में मज्जन कराती है और कभी हमें प्रेम के पवित्र लोक मे विचरण कराती है। कलम की करामात ने वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास, तुलसी, सूर आदि स्वर्गीय महान आत्माओं के विचारो और भावो से हमें परिचित कराया है। यदि कलम न होती तो आज हम वाल्मीकि की रामायण, भवभूति के उत्तर रामचरित और मालती-माधव, कालिदास के मेघदूत, शकुन्तला और कुमारसम्भव, तुलसी का राम-चरितमानस, सूर का सूरसागर कैसे देख सकते? धन्य है कलम जिसने हमारे पूर्वज महानुभावो के अनुभवो, विचारों और भावों को हमारे लिए सुरक्षित कर रक्खा है।

कलम का कार्य अहिंसात्मक होता है और तलवार के सभी कार्य हिंसात्मक होते है। कलम पकड़नेवाला लेखक या कवि किसी की हत्या नहीं करता, किसी की गर्दन नहीं उड़ाता। वह तो शान्तिपूर्वक अपनी कोठरी मे बैठा हुआ ऐसी वस्तु तैयार करता है जिससे वह कार्य भी सरल हो जाता है जिसे करोड़ों तलवार पकड़नेवाले हिंसावादी भी नही कर सकते। गोस्वामी तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' से असंख्य अत्याचारी और दुष्ट सुधर गए। क्या यह कार्य तलवार के भय से हो सकता था? कदापि नहीं। भय से कभी कोई नहीं सुधारा जा सकता। शिक्षा, उपदेश आदि से जब किसी के हृदय पर प्रभाव पड़ता है तभी वह सुधरता है।

तलवार कीर्ति देनेवाली है और कलम भी कीर्ति देती है। तलवार के वल से अत्याचारियों का दमन किया जाता है एवं शान्ति और साम्राज्य की स्थापना की जाती है। कलम के वल से समाज की सेवा की जाती है, समाज से दुर्गुणों और कुरीतियों को दूर किया जाता है, समाज में मर्यादा और आदर्श की प्रतिष्ठा की जाती है। इन सव कार्यों से कीर्ति मिलती है। पर तलवार से जो कीर्ति मिलती है उसकी अपेक्षा कलम से मिलने वाली कीर्ति श्रेष्ठतर है। बड़े-बडे साम्राज्य स्थापित करने वाले राजा-महाराजाओं की कीर्ति भी अधिक समय तक नहीं वनी रहती, क्योंकि भविष्य मे उनसे समाज का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जव तक किसी राजा का साम्राज्य रहता है तभी तक उसका यश-मयंक अपनी विमल चन्द्रिका फैलाता रहता है। परन्तु लेखक या कवि के विषय में यह वात नहीं कही जा सकती। जव तक समाज जीवित रहता है तव तक कलम की सहायता से काम करनेवाले मनुष्य का यश वना रहता है। निस्सन्देह तलवार की कीर्ति अस्थायी है और कलम की स्थायी। गोस्वामी तुलसीदास का नाम आज तक चला आ रहा है। ३०० वर्ष वीत जाने पर भी सारे भारतवर्ष में उनका यश फैला हुआ है। किन्तु उन्हीं के समकालीन सम्राट् अकवर की कीर्ति आज नहीं दिखाई देती। क्या आज संसार में अँग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर की कीर्ति फैली हुई है अथवा उनके समकालीन राजाओं की?

सारांश यह है कि यदि हम कलम और तलवार की तुलना करते हैं तो कलम का पलड़ा नीचे झुका हुआ दिखाई देता है और तलवार का ऊपर उठा हुआ। यद्यपि संसार के लिए दोनों की आवश्यकता है तो भी कलम की अधिक। महात्मा गांधी के संसार में, कहना न होगा, तलवार की कोई आवश्यकता नही,

कलम की ही आवश्यकता है। गांधीजी का विचार है कि संसार का प्रत्येक कार्य जो तलवार से किया जाता है कलम और वाणी से हो सकता है। अहिंसा के इस पुजारी ने यह करके भी दिखला दिया है। गांधीजी का स्वराज्य के लिए किया गया अहिंसात्मक युद्ध इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

निबन्धों की विस्तृत रूप-रेखाएँ

समय का सदुपयोग

(१) प्रस्तावना—समय का महत्व।

समय का महत्व कौन स्वीकार न करेगा? समय एक बड़ी शक्ति है जो राजा को भिखारी और भिखारी को राजा बना देती है, किसी का अन्त करती है और किसी की उत्पत्ति, किसी को सम्मान देती है और किसी को अपमान, किसी को सुख देती है और किसी को दुःख। सारे विश्व में उलट-फेर करनेवाला समय ही है।

(२) समय का सदुपयोग।

(क) श्रेष्ठ कार्यों में लगाना चाहिए।

मनुष्य को चाहिए कि सदैव अपने समय का सदुपयोग करे। उसे ऐसे कार्यों में लगाए जिनसे अपना, अपने समाज का, अपने देश का, कल्याण हो।

(ख) भगवद्भजन मे लगाना चाहिए।

जो भगवान् जन्म से मृत्यु तक हमारी रक्षा करता है उसकी आराधना करना मनुष्य मात्र का प्रधान धर्म है।

(ग) मनोरंजन में लगाना चाहिये।

कुछ समय सिनेमा, नाटक, खेल-कूद, ताश, शतरंज, गाना, बजाना आदि मनोरंजनों के साधनों को देना चाहिये जिससे जीवन मे मिठास आ जाय।

(घ) आलस्य से दूर रहना चाहिए।

आलस्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवनति की जड़ है। आलसी मनुष्य कभी अपना कल्याण नहीं कर सकता।

(ङ) व्यर्थ गप-शप में समय व्यतीत करना उसका दुरुपयोग है।

(च) समय की पाबन्दी उसका सदुपयोग है, क्योंकि उससे समय नष्ट नहीं होता और सब काम सुचारु रूप से होते रहते हैं।

(३) उपसंहार—समय के सदुपयोग से लाभ।

विश्व में गौरव मिलता है। चित्त को सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान होता है। समाज का कल्याण होता है।

अछूतोद्धार

(१) प्रस्तावना—हिन्दू-समाज की उन्नति के लिए अछूतोद्धार की आवश्यकता।

हिन्दू-समाज की आज दुर्दशा है। हिन्दू-समाज आज छिन्न-भिन्न हो रहा है। इसमें अनेक बुराइयों ने अपना घर बना लिया है, जिनमे अछूतो का निम्न स्थान भी एक है। जब तक हिन्दू-समाज अछूतो का उद्धार नहीं करता, जब तक उन्हे नहीं अपनाता, तब तक उसकी उन्नति नहीं हो सकती। वास्तव में संगठन उन्नति की जड़ है।

(२) हिन्दू-समाज में अछूत कौन हैं?

'अछूत' से तात्पर्य 'न छूने योग्य' है। हिन्दुओं मे चमार, भंगी, जुलाहे, रैदासी, डोम, कबीरपंथी, धोबी, खटीक आदि लोग अछूत गिने जाते हैं। इनकी संख्या लगभग ६ करोड है।

(३) अछूतों के प्रति उच्च जातियों के हिन्दुओ के अत्याचार —

उच्च जाति के हिन्दू अछूतों को कुओं से जल नहीं लेने देते, मन्दिरो में प्रविष्ट नहीं होने देते, पाठशालाओं में पढ़ने नहीं देते, घृणा करते है, उनसे मिलते-जुलते नही और उनके साथ मनुष्योचित व्यवहार नही करते।

(४) अछूतो के प्रति अत्याचारो से दुष्परिणाम—

(क) हिन्दू-जाति की शक्ति कम हो गई है। समाजिक उन्नति में बाधा हुई है। अगलित अछूत उच्च जातियों के अत्याचारो से तंग होकर हिन्दू-जाति को छोड़कर अन्य जातियों में जा मिले हैं। जो अभी तक हिन्दू-जाति को अपनाये हुए है उनका जीवन कष्टपूर्ण है।

(५) अछूतोद्धार के साधन—

(क) अछूतों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार और उनकी सहायता।

(ख) अछूतो के साथ समानता बर्ताव।

अछूतो को कुओं से जल भरने देना चाहिये, मंदिरों में प्रविष्ट होने देना चाहिए, स्कूलो मे पढ़ने देना चाहिए, उनसे मिलना-जुलना चाहिए और उन्हें समाजिक उत्सवों में सम्मिलित करना चाहिए।

(ग) अछूतो की दरिद्रावस्था में सुधार।

धनिकों को चाहिए कि अछूतों को दान दें, उनके बालकों को पढ़ाने के लिए छात्र-वृत्तियाँ दें। उनकी मजदूरी भी बढ़ाई जाय।

(घ) राज-काज मे अछूतों का हाथ।

सरकारी पदों पर अछूतों की नियुक्ति होनी चाहिए। कौंसिल, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, म्यूनिसिपैलिटी आदि में उनको चुनना चाहिए।

(६) उपसंहार—आजकल अछूतोद्धार के कार्य की प्रगति।

हर्ष का विषय है कि आजकल हिन्दू-समाज के प्राण महात्मा गांधी के प्रयत्न एवं परिश्रम के फलस्वरूप अछूतोद्धार का कार्य

द्रुत गति से हो रहा है। महात्माजी ने अस्पृश्यता नामक समाज के इस कलङ्क को दूर करने के लिए कुछ समय पूर्व प्राणों तक की बाजी लगा दी थी। यह उन्हीं का प्रभाव है कि आजकल अछूतों की दशा बहुत सुधर गई है। उन्हें मन्दिर-प्रवेश, शिक्षा आदि की सुविधाएँ मिल गई हैं और उनके साथ अच्छा बर्ताव होने लगा है। किसी कवि ने अछूतों की दुर्दशा से खिन्न होकर ठीक ही कहा है—

सुरसरि औ अन्त्यज दुहूँ अच्युत पद संभूत।
भयौ एक क्यों छूत औ दूजौ रह्यौ अछूत ?

रेडियो

(१) प्रस्तावना—विज्ञान की करामात और रेडियो।

(२) रेडियो क्या है ?

रेडियो एक मशीन है जिसके द्वारा बिना तार की सहायता से कितनी ही दूरी की ध्वनि सुनी जा सकती है। इसका उपयोग संदेश, व्याख्यान और संगीत सुनने के लिए किया जाता है। किसी बड़े नगर में रेडियो का स्टेशन होता है। जहाँ से समाचार व्याख्यान या संगीत भेजा जाता है।

(३) रेडियो का जन्म और विकास।

सन् १९२१ में मारकोनी नामक इटली के एक वैज्ञानिक ने रेडियो का आविष्कार किया। सबसे पहले इंगलैंड मे ब्रॉड-कास्टिंग अर्थात् इधर-उधर संदेश आदि भेजने का स्टेशन स्थापित किया गया। तब से अब तक इसमें निरंतर सुधार और उन्नति होती रही है।

(४) रेडियो से लाभ—

(क) सुदूर देशों के समाचार और व्याख्यान मिनटों में सुन लिए जाते हैं। न्यूयार्क के मनुष्य का भाषण कुछ ही मिनटों

में आगरे में बैठे सुन लीजिए। इसके अभाव मे पहले इस कार्य में बहुत समय लगता था।

(ख) रेडियो मनोरंजन का श्रेष्ठ साधन है। इससे संसार के अच्छे से अच्छे गायक का गायन घर पर ही सुना जा सकता है।

(ग) रेडियो से समुद्र-यात्रा डर रहित हो गई है। खतरे के सिगनल उन जलयानो को जिनमें रेडियो लगा रहता है शीघ्र भेज दिए जाते है।

(घ) रेडियो शिक्षा-प्रचार का भी अच्छा साधन है। थोड़े से व्यय में रेडियो द्वारा जन-साधारण को शिक्षित बनाया जा सकता है। किसी रेडियो स्टेशन पर विभिन्न विषयो पर विद्वानों के व्याख्यान कराए जाएँ और उन्हें स्थान-स्थान को भेज दिया जाय।

(ङ) रेडियो से सुधार की योजना भी की जा सकती है। किसी बुरी बात के विरुद्ध रेडियो-स्टेशन पर किसी प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली व्यक्ति का भाषण करा दिया जाय और दूर-दूर तक देश-विदेशों में उसे लोगों को सुनाया जाय।

(५) उपसंहार—रेडियो का भविष्य।

रेडियो का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इससे देश की उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है। भारतवर्ष में ग्राम-सुधार के लिए इसकी आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। अब तक रेडियो से समाचार, व्याख्यान और संगीत ही भेजे जाते थे, परन्तु अब इसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक चित्र भी आने-जाने लगे हैं।

सैनिक और शिक्षक में से देश को किसकी अधिक आवश्यकता है

(१) प्रस्तावना—देश के लिए सैनिक और शिक्षक दोनों की आवश्यकता। सैनिके द्वारा देश की रक्षा। शिक्षक द्वारा देश की ज्ञान-वृद्धि और मानसिक तथा आत्मिक विकास।

(२) देश के लिए शिक्षक का महत्व अत्यन्त अधिक है। बालक भविष्य का नागरिक होता है। शिक्षक ही उसे उपयुक्त और आदर्श नागरिक अथवा दुष्ट और देश के लिए भार-स्वरूप व्यक्ति बना सकता है। सैनिक पर समाज का बनना या बिगड़ना निर्भर नहीं।

(३) शिक्षक के कार्य—

(क) देश की ज्ञान-वृद्धि और मानसिक विकास।

(ख) चरित्र-निर्माण।

(४) सैनिक के कार्य—

(क) देश की संरक्षा।

(ख) विजयों द्वारा देश की सुख-समृद्धि से बढ़ती।

(५) सैनिक के कार्यों की अपेक्षा शिक्षक के कार्य कहीं अधिक हितकर होते हैं। पहले का प्रभाव अल्प-कालीन होता है। दूसरे का प्रभाव चिरस्थायी होता है।

(६) अपने कार्य को करने में सैनिक को हिंसा का सहारा लेना पड़ता है, पर शिक्षक को नहीं। सैनिक अपने कार्य की पूर्ति के लिए युद्ध करता है जिसमे अनेक प्राणियों की हत्या होती है। शिक्षक शान्ति के साथ किसी प्राणी को कष्ट दिए बिना ही अपना कार्य सम्पन्न करता है। अतः जहाँ सैनिक से देश को लाभ होता है वहाँ हानि भी होती है।

(७) उपसंहार—अतः स्पष्ट है कि सैनिक की अपेक्षा देश के लिए शिक्षक की अधिक आवश्यकता है। यद्यपि दोनों से ही देश का हित होता है तो भी जो महत्वपूर्ण लाभ शिक्षक से होते हैं वे क्या सैनिक से सम्भव हैं? कदापि नहीं। कोई देश सैनिक के अभाव में तो उन्नति कर भी सकता है, पर शिक्षक के अभाव में उन्नति का नाम भी असम्भव है।

हिन्दू-मुसलिम-एकता

(१) प्रस्तावना—हिन्दू-मुस्लिम-एकता के अभाव से भारतवर्ष के राष्ट्र-निर्माण में बाधा।

(२) हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभाव से अन्य हानियाँ—

(क) साम्प्रदायिक झगड़े और उनसे धन तथा जन का नष्ट होना।

(ख) भारतीयों की दुर्दशा।

(ग) उन्नति के मार्ग में कठिनाइयाँ।

(३) हिन्दू-मुस्लिम-एकता के साधन—

(क) धार्मिक कट्टरता और धार्मिक हस्तक्षेप का निराकरण

(ख) उत्सवों और त्यौहारो के अवसरो पर दोनों जातियों का आपस मे मिलना जुलना।

(ग) संस्थाओं के नाम जाति के अनुसार न होना। जैसे -मुस्लिम यूनीवर्सिटी, हिन्दू यूनीवर्सिटी आदि नाम साम्प्रदायिकता फैलाकर हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर कुठाराघात करते हैं।

(घ) गौ-हत्या का बन्द होना।

(ङ) एक जाति का दूसरी जाति के प्रति समानता और सहानुभूति का व्यवहार।

(च) शुद्धि और तबलीग का निवारण।

(५) उपसंहार—हिन्दू-मुस्लिम-एकता से लाभ। भारतवर्ष का कल्याण। किसी ने कितना ठीक कहा है, देखिए—

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा।

मधुर भाषण

(१) प्रस्तावना—मधुर भाषण की आवश्यकता।

कोयल काको देत है, कागा कासो लेत।
तुलसी मीठे वचन सों, जग अपनों कर लेत॥

मीठा बोलना एक अमूल्य वस्तु है। यह वशीकरण मन्त्र है जिससे मनुष्य के हृदय पर अधिकार जमाया जा सकता है। जीवन-यात्रा को सुखी बनाने के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है।

(२) मधुर भाषण से लाभ—

(क) सर्वप्रियता और सहानुभूति की प्राप्ति।

(ख) अपने को और अन्य व्यक्ति को शान्ति मिलना।

(ग) झोपड़ी से लेकर राजमहल तक मृदुभाषी का आदर-सत्कार।

(घ) संसार में यश की प्राप्ति।

(ङ) मृदु भाषण से द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि भावों की संसार में कमी होना।

(च) जीवन में सफलता की उपलब्धि।

(छ) आत्मिक उत्थान।

(३) कटु वाणी से हानियाँ—

(क) दूसरों का जी दुखना। उनके हृदय में कड़वी वाणी का तीर की भाँति छिदना।

(ख) लोगों का कटुभाषी से घृणा करना और उससे दूर रहना।

(ग) कड़वी बोली से संसार में अपयश फैलना।

(घ) कटुभाषी के लिए स्थान-स्थान पर द्वेषी हो जाना।

(४) संसार के महान् पुरुष प्रायः सभी मृदुभाषी हुए हैं। कृष्ण भगवान् ने सर्वथा इस गुण को अपनाया है। कौरवों के कठोर वचनों को उन्होंने मृदु मुसकान के साथ सहा। भगवान् राम ने परशुरामजी की कटु वाणी का उत्तर मीठी वाणी में दिया। आजकल गांधीजी मधुर भाषण की साक्षात मूर्ति हैं।

(५) उपसंहार—सारांश।

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥

प्रातःकाल का पर्यटन

(१) प्रस्तावना—प्रातःकालीन प्राकृतिक छटा।

उषा की छवि। पक्षियों का कलरव। शीतल और सुगन्धित समीर। विकसित कुसुमों का सौन्दर्य। पेड़-पौधों का रमणीय दृश्य।

(२) प्रातःकाल के पर्यटन के आनन्द—

(क) सुन्दर-सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों को देख कर नेत्रों को आनन्द।

(ख) पक्षियों के कलरव से श्रवणों को आनन्द।

(ग) सुगन्धित वायु से नासिका को आनन्द।

(३) प्रातःकाल के पर्यटन से लाभ—

(क) शरीर में स्फूर्ति आती है।

(ख) प्रातःकालीन स्वच्छ वायु के सेवन से रक्त शुद्ध होता है।

(ग) पर्यटन से शरीर का व्यायाम होता है।

(घ) अजीर्ण आदि शारीरिक व्याधियों से शरीर बचा रहता है।

(ङ) मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, उसे शान्ति मिलती है।

(च) आलस्य पर विजय होती है।

(छ) सदाचार और धार्मिक भावो की वृद्धि होती है।

(४) प्रात:कालीन पर्यटन का उपयुक्त समय।

जाड़े के दिनों में ६॥ से ७॥ बजे तक। गरमी के दिनों में ४॥ से ५॥ बजे तक।

(५) उपसंहार—हमे नियमित रूप से प्रात:काल पर्यटन करना चाहिए। इससे हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियो का समुचित विकास होगा।

आज्ञा-पालन

(१) प्रस्तावना—समाज-व्यवस्था के लिए आज्ञा-पालन की आवश्यकता।

समाज में कुछ व्यक्ति बड़े होते हैं और कुछ छोटे। माता, पिता, पति, स्वामी, गुरु आदि बड़े और पुत्र, पुत्री, पत्नी, शिष्य, नौकर आदि छोटे माने जाते हैं। बड़ाई का तात्पर्य आयु की अधिकता के अतिरिक्त पद की उच्चता भी है। समाज में यदि छोटे बड़ों के कहने के अनुसार कार्य न करें तो उसकी मर्यादा भंग हो जाय, वह कदापि फूले-फले नहीं और उसमें सदैव अशान्ति बनी रहे।

(२) बड़ों की आज्ञा पालना छोटो का धर्म है।

मनुष्यता यह चाहती है कि हम अपने से बड़े लोगो के कथनानुसार कार्य करें। जो मनुष्य अपने माता-पिता, गुरु आदि पूज्य व्यक्तियों की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं।

(३) आज्ञा-पालन से लाभ—

(क) आज्ञा-पालन आत्म-नियन्त्रण का मूल मन्त्र है। इसमें मनुष्य को अपनी इच्छाओं को दबाना पड़ता है।

(ख) आज्ञा-पालन से समाज का संगठन होता है। यदि नेता की आज्ञा नहीं मानी जायगी तो समाज कभी एक सूत्र में नहीं पिरोया जा सकेगा।

(ग) आज्ञा-पालन से समाज में सुख और शान्ति का साम्राज्य रहता है।

(घ) उच्चता की ओर अग्रसर होने के लिए आज्ञा पालन अच्छा साधन है।

(ङ) आज्ञा पालक व्यक्ति सर्वप्रियता प्राप्त करता है।

(४) भारतवर्ष के कुछ आज्ञापालक व्यक्तियों के उदाहरण—

भगवान् रामचन्द्रजी ने पिता दशरथजी की आज्ञापालन की और १४ वर्ष वन में रहे। भीष्मजी ने पिता के इच्छानुसार आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की। परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से अपनी माता रेणुका का वध किया।

(५) आज्ञा-पालन से आज्ञा के औचित्य या अनौचित्य के विचार की आवश्यकता नही। 'रामचरितमानस' मे गोस्वामीजी ने लिखा है:—

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहि पितु वयन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति अयन॥

(६) उपसंहार—सारांश।

हमें अपने गुरुजनों की आज्ञा माननी चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

मितव्ययता

(१) प्रस्तावना—मितव्ययता का रूप और आवश्यकता।

थोड़ा व्यय करने का गुण 'मितव्ययता' कहलाता है। भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन-संचयार्थ मितव्यता अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अपव्ययता से हानियाँ—

(क) जीवन दुःखी हो जाता है।

(ख) अपव्ययी मनुष्य सदैव दूसरे का मुख ताकता है।

(ग) अपव्ययता मनुष्य को दुर्गुणों की ओर अग्रसर करती है।

(३) मितव्ययता से लाभ—

(क) जीवन सदा सुखी रहता है।

(ख) सब कार्य सुचारु रूप से चलते हैं।

(ग) मितव्ययी को किसी के सामने हाथ नहीं पसारना पड़ता।

(घ) मितव्ययता से जीवन में सादगी आती है।

(ङ) मितव्ययता से सद्वृत्तियों की प्राप्ति होती है।

(च) आत्म-संयम का गुण आता है।

(छ) मितव्ययी अपने धन से देश और समाज की सेवा कर सकता है।

(४) मितव्ययता की उपलब्धि के साधन—

(क) आय-व्यय के लेखे की आवश्यकता

(ख) भविष्य के सुख का ध्यान

(ग) अनावश्यक कार्यों में धन कभी न व्यय किया जाय

(घ) ऋण कभी न लिया जाय।

(५) उपसंहार—सारांश

हमें मितव्ययी होना चाहिये जिससे हम अपना और समाज का कल्याण कर सकें।

परिशिष्ट

(पत्र-लेखन)

पत्र लिखने की प्रत्येक पढ़े-लिखे मनुष्य को आवश्यकता पड़ती है। अतः यहाँ पर पत्र लेखन के विषय मे कुछ ज्ञातव्य बातें बतलाई जाती हैं।

पत्र तीन प्रकार के होते हैं—(१) छोटे की ओर से बड़े को (२) बड़े की ओर से छोटे को और (३) बराबर वाले को। दूसरे प्रकार से भी पत्रो का वर्गीकरण किया जाता है। एक वर्ग के पत्र वे होते हैं जो जान-पहचानवालों के लिए लिखे जाते है। दूसरे वर्ग के पत्र वे होते हैं जो अपरिचित लोगो को काम-काज के कारण लिखे जाते हैं। पहले वर्ग के पत्रों में प्रेम भाव रहता है और दूसरे वर्ग के पत्रों में इसका अभाव। उनमें केवल काम की बातें लिखी जाती हैं।

पत्र के प्रधान चार अंग होते हैं—

(१) पत्र भेजनेवाले का ठिकाना और पत्र लिखने की तिथि। (२) प्रशस्ति या पत्र-सम्बन्धी शिष्टाचार (आदि और अन्त में) (३) पत्र का विषय और (४) पानेवाले का पता।

पत्र लिखने की हिन्दी में दो प्रथाएँ या प्रणालियाँ प्रचलित हैं। एक को प्राचीन प्रणाली कहते हैं और दूसरों को नवीन प्रणाली। हमारे देश में पहले पत्र प्राचीन प्रणाली के अनुसार ही लिखे जाते थे। पर आजकल इस प्रकार के पत्रों का चलन दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है और उनका स्थान नवीन प्रणाली के पत्र ले रहे हैं। वर्तमान काल में इसी प्रकार के पत्रों का अधिक प्रचार है। प्राचीन और नवीन प्रथाओं के अनुसार लिखे गए

पत्रों की रचना में भिन्नता है। आगे दोनों के विषय में आवश्यक बातें लिखी जाती हैं।

प्राचीन प्रणाली के अनुसार पत्र-रचना

प्राचीन प्रणाली के अनुसार पत्र लिखने में सबसे पहले आरम्भ में किसी देवी, देवता या ईश्वर को नमस्कार लिखते हैं। जैसे—श्रीकृष्णायनमः, श्रीशारदायनमः, श्रीरामायनमः, श्रीगणेशायनमः इत्यादि। इसके पश्चात् प्रशस्ति लिखी जाती है। प्रशस्ति के आदि में बड़ों के लिए 'सिद्धि' और बराबर वालों या छोटों के लिए 'स्वस्ति' शब्द लिखे जाते हैं। यह भी देखा जाता है कि कुछ लोग बड़ों के लिए भी 'स्वस्ति' शब्द लिख देते हैं। ऐसा करना बुरा नहीं। फिर 'श्री' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'श्री' के आगे इस दोहे के अनुसार कोई अङ्क लिख दिया जाता है।

श्री लिखिये षट गुरुन को, पाँच स्वामि रिपु चारि।
तीन मित्र द्वै भृत्य को, एक पुत्र अरु नारि॥

अर्थात् गुरु को ६, स्वामी (या बड़े) को ५, शत्रु को ४, मित्र (या बराबर वाले) को ३, नौकर को २ और पुत्र तथा स्त्री (या छोटे) को १ श्री लिखनी चाहिये। राजा या परमेश्वर को श्री के आगे १०८ का अङ्क लिखा जाता है। हमारी समझ में श्री के आगे कोई अङ्क नहीं लिखना चाहिये। इसके बाद पत्र पहुँचनेवाले स्थान का नाम 'शुभस्थान' सहित लिखा जाता है।

फिर प्रशंसा-सूचक किसी उपयुक्त विशेषण के साथ जिसको पत्र लिखा जाता है उसका नाम लिखते हैं। बड़ों का नाम न लिखकर 'पिताजी' या 'माताजी' या 'चाचाजी' या 'चाचीजी' या गुरुजी आदि नाता लिखा जाता है। बड़ों के लिए 'सर्वोपरि विराजमान', 'सकलगुण-निधान', 'पूज्यपाद', 'सर्वगुणालंकृत'

आदि विशेषण प्रयुक्त होते हैं। बराबरवालों के लिए 'प्रियवर', 'कृपासागर', 'अति हितैषी', 'आनन्दरूप' आदि विशेषण लिखे जाते हैं। छोटों को 'प्रेमपात्र', 'चिरंजीवी', 'स्नेहभाजन' आदि विशेषणों का प्रयोग होता है। अपरिचित व्यक्तियों को 'भाई' आदि विशेषण लिखे जाते हैं।

फिर पत्र लिखने का स्थान लिखा जाता है। तब लेखक अपना नाम लिखता हुआ बड़े को प्रणाम, दण्डवत् आदि, बराबरवालों को 'नमस्ते' या 'जयरामजी की' और छोटे को आशीर्वाद लिखता है। वह अपरिचित व्यक्ति को 'राम राम' आदि लिखता है।

इसके बाद क्षेम-कुशल आदि लिखने का नियम है। जैसे—अत्रकुशलं तत्रास्तु, मैं यहाँ कुशल हूँ आपकी कुशलता परमेश्वर से सदा चाहता हूँ, आदि।

फिर समाचार लिखकर पत्र समाप्त कर दिया जाता है। पत्र के अन्त में 'इति शुभम्' और मिती लिख दी जाती है। यही संक्षेप में पुरानी प्रथा के पत्र लिखने का ढंग है। प्राचीन प्रणाली के पत्र का एक नमूना देखिए।

पिता को

श्रीरामायनमः

सिद्ध श्री शुभस्थान मथुरा सर्वोपरि विराजमान पूज्यपाद पिताजी को योग्य लिखी आगरे से आज्ञाकारी गिरजाशंकर का प्रणाम पहुँचे। मैं आपके आशीर्वाद से कुशल हूँ। आपकी कुशलता की परमेश्वर से सदा अभिलाषा करता हूँ। बहुत दिनों से आपका पत्र नहीं आया। इसलिए चित्त को चिन्ता रहती है। आगे समाचर यह है कि स्कूल और छात्रालय की इस माह की फीस मुझे १५ वी तारीख को देनी पड़ेगी और अभी मैंने मैस का

पिछले माह का हिसाब भी नहीं चुकाया है। अतः आप २०) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दीजिएगा। यदि किसी कार्यवश आपको आगरा आना पड़े तो साथ ही रुपये लेते आइएगा। मुझे आपके शुभ दर्शन भी मिल जायँगे। एक पंथ दो काज होंगे। चि० हरिशंकर को प्यार और पूज्य माताजी को चरण-स्पर्श पहुँचे। अधिक क्या लिखूँ। इति शुभम्। मिती अगहन शुक्ल पूर्णिमा सं० १९९४ विक्रमी।

नवीन प्रणाली के अनुसार पत्र-रचना

नवीन प्रथा के अनुसार पत्र-रचना में सबसे पहले पत्र लिखने के कागज की दाईं ओर के कोने पर वह ठिकाना लिखा जाता है जहाँ से पत्र भेजा जाता है। उसके नीचे तारीख लिखी जाती है।

फिर बाईं ओर प्रशस्ति लिखी जाती है। बड़ों को 'मान्यवर' 'पूज्यवर' आदि, बराबरवालों को 'प्रियवर', 'प्रिय' आदि और छोटों को 'चिरंजीवी', 'प्रिय' आदि विशेषणों का प्रयोग होता है। इन विशेषणों के साथ बड़ों का तो केवल नाता और बराबर-वालों तथा छोटों का नाम अथवा नाता लिखा जाता है। जैसे—पूज्यवर चाचाजी, प्रियवर हरी, प्रिय शिष्य इत्यादि।

फिर जो समाचार लिखना होता है वह लिखा जाता है। पत्र के अन्त में कागज की दाहिनी ओर बड़ों को 'आपका आज्ञाकारी', 'स्नेह-भाजन', 'आपका कृपाकांक्षी', 'भवदीय सेवक आदि, बराबरवालों को 'आपका स्नेही', 'आपका सुहृद' 'आपका मित्र', 'भवदीय', 'आपका' आदि और छोटों को 'तुम्हारा हितैषी', 'तुम्हारा शुभचिन्तक', तुम्हारा आदि लिख कर नीचे अपना नाम लिख देते हैं।

अपरिचित लोगों के लिए प्रशस्ति 'महोदय' 'प्रिय महोदय' आदि लिखी जाती है। अन्त में 'भवदीय' लिखकर अपना नाम

लिखते हैं। अधिकारियों के लिए प्रशस्ति 'श्रीमान्' या मान्यवर लिखी जाती है। अन्त में 'प्रार्थी' 'श्रीमान् का आज्ञाकारी सेवक' आदि लिखकर अपना नाम लिखते हैं। यह भी ध्यान रहे कि अधिकारी-वर्ग को लिखे गए पत्रों के आरम्भ मे अपना ठिकाना न लिखकर अधिकारी का पता लिखते हैं। जैसे—'श्रीमान् कलक्टर साहब, आगरा जिला, आगरा' 'श्रीमान हैडमास्टर साहब, डी० ए० वी० हाई स्कूल अतरौली', इत्यादि। पत्र के समाप्त होने पर कागज की बाईं ओर अपना ठिकाना और तारीख लिखी जाती है।

यही संक्षेप में नवीन प्रथा से पत्र लिखने का ढङ्ग है। एक नमूना देखिए—

मित्र को

गोकुलपुरा, आगरा

प्रिय नरेन्द्र, २० दिसम्बर, सन् १६३७ ई०

आज १० बजे आपका पत्र मिला। पढ़कर चित्त को बड़ा आनन्द हुआ। बहुत दिनों से आपके पत्र की बाट देख रहा था। कभी-कभी सोचता था कि कहीं आप मुझ से अप्रसन्न न हो गए हों। पत्र से मुझे ज्ञात हुआ है कि आप बड़े दिन की छुट्टियों में अपने भाई के साथ बम्बई की सैर करने जा रहे हैं। यह आपका सौभाग्य है। मैं आज अपने पिताजी को पत्र भेज रहा हूँ यदि उनकी आज्ञा मिल जाय तो मैं भी उक्त यात्रा का आनन्द लूटूँगा। पर मुझे अधिक आशा नहीं है। आपको एक कष्ट अवश्य दूँगा। बम्बई से मेरे लिए वैस्ट एण्ड वाच कम्पनी की पच्चीस रुपये तक की एक हाथ की घड़ी आपको लानी पड़ेगी। ईश्वर करे आपकी यात्रा सकुशल समाप्त हो।

आपका सुहृद्,
सुरेन्द्रकुमार शर्मा

विशेष—नवीन प्रथा के पत्रों के अन्य नमूने आगे देखिए।

पत्र या तो कागज पर लिख कर लिफाफे में बन्द कर दिया जाता है या पोस्टकार्ड पर लिखा जाता है। लिफाफे या पोस्ट कार्ड की पीठ पर पत्र पानेवाले का पता लिखते हैं। पते मे सबसे पहले पानेवाले का नाम उसकी उपाधि-सहित लिखा जाता है। नाम के नीचे उसका निवास स्थान लिखते हैं। यदि पत्र डाक से भेजना हो तो स्थान के नीचे डाकखाना और डाकखाने के नीचे जिला लिखते है। यदि निवास-स्थान प्रसिद्ध नगर हो तो डाकखाना और जिला लिखने की आवश्यकता नहीं। लिफाफे के बाएँ किनारे पर भेजनेवाला कभी-कभी अपना भी पता लिख देता है। जिससे यदि पत्र पानेवाले का पता न लगे तो पत्र उसके पास लौटाया जा सके। पते के नमूने देखिए—

(१) लिफाफे का पता

अथवा

टिकट

सेवा में—

श्रीमान् चेयरमैन साहब,

शिक्षा-विभाग,
डिस्ट्रिक्ट बोर्ड,
आगरा

कृपाशंकर गुप्त
सिद्धाकुर,
आगरा,

(२) पोस्टकार्ड का पता

पिता को पत्र

(अपने स्कूल का वर्णन)

गवर्नमेण्ट हाईस्कूल होस्टल, आगरा
१ सितम्बर, सन १९२८ ई०

पूज्यपाद पिताजी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने पत्र मे मेरे स्कूल के बारे में कुछ जानने की इच्छा प्रकट की है। अतः मै इस पत्र में अपने स्कूल का वर्णन लिखकर आपकी सेवा मे भेजता हूँ।

हमारा स्कूल शाहगंज के निकट स्थित है। इसके पास ही ट्रेनिग कालेज और नौर्मल स्कूल हैं। राजामण्डी अथवा ईदगाह स्टेशन से यह पास पड़ता है।

यह स्कूल गवर्नमेंट ने सन् १९१० में स्थापित किया था। तब से अब तक यह निरन्तर उन्नति करता रहा है और संयुक्त-प्रान्त के प्रसिद्ध स्कूलो में इसकी गणना है। स्कूल की इमारत आलीशान है। सरकार को इसके निर्माण मे कम से कम २-३ लाख रुपये तो व्यय करने ही पड़े होंगे। इमारत में कई कमरे हैं जिनमे भिन्न-भिन्न क्लासो की पढ़ाई होती है। मध्य में एक विशाल हॉल है। इसमे स्कूल के उत्सव, व्याख्यान आदि होते हैं। इसके उत्तर में हैडमास्टर साहब का कमरा और स्कूल-दफ्तर हैं। हॉल से भिन्न-भिन्न कमरो में जाने के लिए गैलरी बनी हुई हैं। इसके निकटवर्ती एक कमरे मे स्कूल के अध्यापकों के बैठने के लिए प्रबन्ध है और दूसरे में पुस्तकालय है। इतिहास, भूगोल, ड्राइंग, नेचर-स्टडी और कामर्स पढ़ाने के लिए अलग-अलग कमरे नियत हैं। विज्ञान का भवन स्कूल के प्रधान भवन से पृथक् बना हुआ है। मैनुअल-ट्रेनिग की भी पढ़ाई के लिए एक इमारत अलग है।

इन परीक्षाओं के प्राप्तांकों के आधार पर लड़के को पास या फेल किया जाता है। प्राप्तांक लड़के के अभिभावक के पास भेजे जाते हैं जिससे यदि लड़का पढ़ने में कमजोर हो तो अभिभावक इसका प्रबन्ध करे।

हमारे स्कूल में विद्यार्थियों की वाक्-शक्ति का विकास करने के लिए प्रति माह एक वाद-विवाद प्रतियोगिया होती है। बसंत-पंचमी के अवसर पर वार्षिकोत्सव मनाया जाता है जिसमें कविता, वाद-विवाद, खेल-कूद और निबन्ध की प्रतियोगिताएँ होती हैं। हमारे स्कूल में एक स्काउट-ट्रुप भी है। मैं उसका एक सदस्य हूँ। समय-समय पर स्कूल मे व्याख्यानों की भी आयोजना की जाती है।

सारांश यह है कि हमारा स्कूल आगरे के स्कूलों में ऊँचा स्थान रखता है। प्रतिवर्ष विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या इसकी सर्व-प्रियता का आभास देती है। प्रबन्ध की दृष्टि से, पढाई की दृष्टि से, आमोद-प्रमोद की दृष्टि से, स्वाध्य की दृष्टि से, मुझे अपना स्कूल बहुत प्रिय है।

आशा है आप मेरे स्कूल का वर्णन पढकर प्रसन्न होंगे और कभी पधारकर इसे अवश्य देखने का कष्ट करेंगे।

सरला और सुशील को प्यार तथा पूज्य माताजी और आपको प्रणाम।

आपका स्नेह भाजन,

रमेश

माता को पत्र

(विद्यार्थी को छात्रालय में रहना अच्छा है या घर में ?)

सनातन धर्म कालेज होस्टल,

कानपुर।

२० अगस्त, सन् १९३२ ई०

मान्यवर माताजी,

बहुत दिनो बाद आज आपका पत्र पाकर हर्ष हुआ। आपके आदेशानुसार मैं इस पत्र में 'विद्यार्थी' के लिए छात्रावास में रहना अच्छा है या घर में' इस विषय पर अपने विचार प्रकट करता हूँ।

वास्तव में छात्रालय के जीवन से जहाँ लाभ है वहाँ हानियाँ भी हैं। इसी प्रकार घर के जीवन से जहाँ लाभ है वहाँ हानियाँ भी हैं। दोनों मे से एक भी प्रकार का जीवन विद्यार्थी के लिए पूर्णतः कल्याणकर नहीं। तो भी छात्रालय का जीवन घर के जीवन की अपेक्षा अधिक अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं।

सबसे बडी बात तो यह है कि छात्रावास में विद्यार्थी को विद्योपार्जन का सुभीता रहता है। वहाँ उसे पढ़ने में जो सुविधाएँ मिलती हैं वे घर में कदापि नहीं प्राप्त हो सकतीं। घर पर उसका पर्याप्त समय इधर-उधर घूमने में नष्ट हो जाता है। कभी उसके पिता उसे अनाज खरीदने बाजार भेजते हैं तो कभी उसकी माता उसे साग लेने को साग वाले की दुकान पर भेजती हैं। कभी उसके चाचा उसे स्टेशन पर भेजते हैं तो कभी उसके भाई उसे दरजी की दुकान पर। छात्रावास में वह इन व्याधियो से पूर्णतः मुक्त रहता है और अपना अधिकांश समय पढने में लगा सकता है। साथ में अपनी या अपनी से ऊँची कक्षा के विद्यार्थियो से वह अपनी कठिनाइयो को दूर करा सकता है।

इसके अतिरिक्त छात्रावास के जीवन से स्वास्थ्य-लाभ भी होता है। घर पर रहने वाला विद्यार्थी खेल-कूद और व्यायाम के उन साधनो से वंचित रहता है जो छात्रालय मे रहने वाले विद्यार्थी को उपलब्ध होते हैं। घर पर उसे खेलने को कहाँ फुटबॉल मिल सकती है कहाँ वोलीबॉल मिल सकती है, कहाँ हॉकी मिल सकती है, और कहाँ क्रिकेट मिल सकती है? छात्रावास

मितव्ययता और संस्कारिता के दर्शन हों। तभी विद्यार्थियों का जीवन छात्रालय में कल्याण-प्रद हो सकता है।

आशा है यदि आपके विचार भिन्न होगे तो आप मुझे अवश्य सूचित करेंगी।

पूज्य पिताजी तथा आपको प्रणाम और स्नेहलता को प्यार।

आपका वात्सल्य-भाजन,

चन्द्रशेखर

मित्र को पत्र

[गरमी की छुट्टियों का प्रोग्राम—कार्य-क्रम]

शारदा-भवन,

बिठूर।

१० अप्रेल, सन् १९४२ ई०

प्रिय नरेन्द्र,

चिरकाल से आपका पत्र नहीं मिला। इसलिए चित्त खिन्न है मालूम पड़ता है आप मुझसे अप्रसन्न हैं। मेरी परीक्षा के पूर्व अवश्य आपका पत्र आया था जिसका उत्तर मैं परीक्षा-भार के कारण नहीं दे सका था। क्या इसलिए अप्रसन्न हो गए हो ? यदि हाँ, तो क्षमा माँगता हूँ। आपने उस पत्र मे मुझसे गरमी की छुट्टियों का प्रोग्राम पूछा था अतः लिखे भेजता हूँ।

७ अप्रैल को मेरी हाईस्कूल परीक्षा समाप्त हुई ८ अप्रैल को मै घर आ पहुँचा। कल छुट्टियों का प्रोग्राम बनाया था। सबसे पहले तो मुझे अपना स्वास्थ्य सुधारने की चिन्ता है। घर आने पर माता-पिता ने जब मेरी तन्दुरुस्ती देखी तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। बोले—परीक्षा क्या दी है तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर डाला है। स्वास्थ्य सुधारने के लिए मैंने यह निश्चय किया है कि नित्य प्रातःकाल ४॥ बजे जगकर शौच से निवृत्त होकर गंगाजी के किनारे-किनारे २ मील तक पर्यटन के

लिए बाहर निकल जाया करूँगा। फिर लौटकर गंगाजी में आध घण्टे तक तैरा करूँगा। तत्पश्चात् धारोष्ण-दुग्ध का एक गिलास पीया करूँगा। फिर एक घण्टे बाद ठण्डाई पीया करूँगा।

८ बजे से १० बजे तक अँगरेजी की योग्यता बढ़ाने के लिए अँगरेजी उपन्यास पढ़ा करूँगा और प्रति सप्ताह एक निबन्ध लिखकर भाई साहब को दिखलाया करूँगा। १० बजे भोजन करके सो जाया करूँगा। फिर जगकर २ बजे से ४ बजे तक संगीत, शतरंज, ताश आदि से मनोरंजन किया करूँगा। ४ से ५॥ तक 'सार्वजनिक पुस्तकालय' में समाचार-पत्र और पुस्तकें पढ़ा करूँगा। फिर शौच से निवृत्त होकर 'नवयुवक-क्लब' में जाया करूँगा। वहाँ मित्रों से गप-शप उड़ा करेगी और खेल-कूद होगा। सूर्यास्त के समय पुनः गंगा-स्नान और तैरने का आनन्द लिया जायगा। फिर भोजन करके पुनः गाना-बजाना होगा। १० बजे मैं सो जाया करूँगा। यही संक्षेप में मेरी दिनचर्या होगी।

पर मुझे भय है कि मैं सारी छुट्टियों में इस दिनचर्या का अनुसरण नहीं कर सकूँगा। १० मई को मामाजी के लड़के का विवाह है। बरात लखनऊ जायगी। मेरी इच्छा तो वहाँ जाने की न थी। पर मामाजी ने अभी से कहला भेजा है कि मैं अवश्य विवाह में सम्मिलित होऊँ। अतः मुझे लखनऊ जाना पड़ेगा। सुना है लखनऊ बड़ा अच्छा नगर है। वहाँ का अजायबघर, पशु-पक्षीघर (Zoo), अमीनाबाद पार्क वाजिद-अलीशाह का हरम, कौंसिल-भवन और यूनीवर्सिटी-भवन देखने योग्य हैं। हर्ष है ये सब चीजें देखने को मिलेंगी। और भाई एक ही स्थान पर बहुत दिनों तक तबीअत भी नहीं लगती। इस विवाह में जाने से कुछ दिन बाहर घूमना हो जायगा।

फिर पिताजी की इच्छा है कि जून के महीने में मसूरी चला जाय। मैं मसूरी जाने को तैयार हूँ। वहाँ की जल-वायु बड़ी स्वास्थ्य-वर्द्धक है। वहाँ यहाँ की सी गरमी नहीं पड़ती, प्रत्युत् ठण्ड पड़ती है। अँगरेज लोग गर्मियों के दिनों में मसूरी बहुत जाते हैं। कहते हैं यहाँ के प्राकृतिक दृश्य बड़े मनोरंजक हैं। कहीं जल-स्रोत कल-कल नाद करते हुए प्रवाहित होते रहते हैं। कहीं पुष्पोद्यान की छटा दर्शनीय है। चारों ओर हरियाली देखी जाती है। हिमालय के हिमाच्छादित शृङ्ग अपनी निराली ही छटा प्रदर्शित करते हैं। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे पहाड़ों की अनुपम शोभा देखने को मिलेगी। यदि आप भी आजायँ तो बड़ा आनन्द रहे। मसूरी में पिताजी के साथ भ्रमण करने में उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहेगी जितनी आपके साथ। मित्र के साथ घूमने-फिरने मे और ही आनन्द है।

मसूरी से लौटने के बाद बहिन के घर जाना पड़ेगा। उन्होंने मेरे आने से पहिले ही पिताजी को पत्र भेज दिया था कि छुट्टियों में भैया जरूर मेरे घर हो जायँ, मुझे भैया से मिलने की बड़ी लालसा है। मैने निश्चय किया है कि १५ दिन इलाहाबाद जाकर बहिन के घर निवास करूँगा।

मैंने 'लीडर' में पढ़ा है कि बनारस यूनीवर्सिटी २१ जुलाई को खुल रही है। अतः मैं १६ जुलाई को बनारस पहुँच जाऊँगा और कॉलेज खुलने के प्रथम दिन ही अपना दाखिला करा लूँगा।

अन्त में भाई मसूरी-यात्रा का अवश्य साथी बनना। हम ३ जून को घर से चल देंगे। इसलिए आप २ जून तक हमारे घर पधारने की कृपा कीजिए।

आशा है आप आनन्दयुक्त होंगे।

आपका दर्शनाभिलाषी,

महेन्द्र

छोटे भाई को पत्र

(खेल-कूद आदि व्यायाम से लाभ)

विद्यामन्दिर,
प्रयाग
१८ अगस्त, सन् १६५२ ई०

प्रिय हरी,

कल तुम्हारे छात्रालय का विद्यार्थी मदनमोहन अपने मामा से मिलने यहाँ आया था। मैंने उससे तुम्हारे अध्ययन, व्यायाम आदि के विषय में पूछा। व्यायाम के बारे में उसने कहा कि तुम न तो कसरत करते हो और न खेल-कूद में भाग लेते हो। शायद तुम खेल-कूद आदि व्यायाम के महत्त्व को नहीं जानते। मैं इस पत्र द्वारा तुम्हें सूचित करना चाहता हूँ कि खेल-कूद आदि व्यायाम से क्या लाभ हैं।

खेल-कूद आदि व्यायाम से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। इनके द्वारा हम अपने शारीरिक अङ्गों की शक्ति को स्थिर रख सकते हैं और बढ़ा भी सकते हैं। व्यायाम या खेल-कूद से हमारे शरीर के प्रत्येक अंग में रुधिर-संचार समुचित रूप से होता है, क्योंकि इससे माँस की पेशियों पर दबाव पड़ता है और रुधिर तीव्र गति से दौड़ने लगता है। रक्त के तेज दौड़ने से शरीर में स्फूर्ति और बल आता है। विद्यार्थी के ६-१० घण्टे तक सिर और कमर झुकाकर बैठे बैठे पुस्तकें पढ़ते रहने से उनकी नाड़ियों का रक्त स्तम्भित होने लगता है जिससे शरीर कमजोर हो जाता है।

दण्ड-बैठक करने अथवा हॉकी, फुटबॉल, वौलीबॉल आदि खेल खेलने अथवा टहलने, तैरने, दौड़ने, कूदने आदि से मनुष्य को कभी रोग नहीं हो सकता, उसकी पाचन-क्रिया ठीक रहती है।

व्यायाम से पाचन में सहायता मिलती है। प्रायः देखा जाता है कि अनेक विद्यार्थियों को अजीर्ण की शिकायत रहती है। जरा भारी खाना उन्होंने खाया नहीं कि उन्हें अजीर्ण हुआ नहीं। इसका कारण यह है कि वे कोई व्यायाम नहीं करते। कुछ विद्यार्थी सदैव पुस्तकों के कीड़े बने रहते है। कुछ गप-शप उड़ाते रहते हैं। कुछ बाइसिकल पर बाजार घूमते रहते है। अजीर्ण से उन्हें तरह-तरह के रोग हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि किसी का मुख पीला पड़ जाता है। किसी के नेत्र कमजोर हो जाते हैं। किसी का शरीर अस्थि पंजर बन जाता है। किसी को २ मील भी चलना कठिन हो जाता है। उनके मुख पर कान्ति नहीं देखी जाती। वे उदास रहते है।

खेलने, कूदने और कसरत करने से शारीरिक ही नहीं मानसिक लाभ भी होता है। जिसका शरीर ही स्वस्थ न होगा, जिसे कोई न कोई रोग सदा सताएगा, उसका मस्तिष्क कैसे ठीक रह सकता है? मस्तिष्क के ठीक रखने के लिए शारीरिक स्वास्थ्य नितान्त आवश्यक है। इसलिये मनुष्यों को और विशेपतः विद्यार्थियों को, जिन्हे मस्तिष्क से बहुत काम करना पड़ता है, चाहिए कि वे किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम करते रहे। जिसको टहलना रुचे वह टहले। जिसे दौड़ना अच्छा लगे वह दौड़े। जिनको दण्ड-बैठक रुचिकर हों वह दण्ड-बैठक करे। जिसको हॉकी, फुटबॉल आदि खेलों मे आनन्द आए वह इन खेलो को खेलें। ऐसा करने से शरीर नीरोग होगा और शरीर के नीरोग रहने से मस्तिष्क ठीक-ठीक कार्य करेगा। यह कभी न होगा कि जरा-सा मानसिक परिश्रम किया नहीं कि सिर-दर्द हुआ नहीं।

संसार में जितने प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं वे किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम नियमपूर्वक करते थे। गोस्वामी तुलसीदास नित्य प्रातःकाल २-३ मील दूर शौच के लिए जाते थे। इससे उनका

अच्छा व्यायाम हो जाता था। महाराज पृथ्वीराज शिकार खेलने के लिए दूर-दूर जाते थे। छत्रपति शिवाजी भी घोड़े की सवारी का व्यायाम करते थे। महात्मा गांधी नियमित रूप से पर्यटन करते हैं।

व्यायाम से जीवन आनन्द-पूर्वक व्यतीत होता है। जीवन के मिठास का वही आस्वादन कर सकता है जो नियमित व्यायाम करता है। कठिन से कठिन परिश्रम करने की शक्ति उसमें होती है। वह वालू से भी तेल निकाल सकता है। उसके लिये कोई कार्य असम्भव नही होता। देखो हनुमानजी को। उन्होंने व्यायाम के प्रताप से समुद्र लाँघकर पार किया और द्रोणाचल लाकर लक्ष्मणजी की प्राण-रक्षा की। संसार में यश-प्राप्ति और परोपकार के लिए व्यायाम कितना आवश्यक है, यह सभी जानते है।

अतः तुम्हे चाहिये कि व्यायाम जैसी आवश्यक वस्तु से मुख न मोड़ो। प्रातःकाल और सायंकाल अपनी शक्ति के अनुसार जो रुचे वह व्यायाम नियमपूर्वक करो। मैं समझता हूँ तुम्हारे लिए टहलना और खेलना-कूदना अच्छे व्यायाम रहेगे। तुम्हारे विद्यार्थी-जीवन के लिये खेल-कूद आदि व्यायाम अमृत का काम देंगे।

आशा है मेरी शिक्षा का तुम पर अवश्य प्रभाव होगा। यदि तुम आगामी पत्र द्वारा अपने व्यायाम के सम्बन्ध मे कुछ विवरण लिख भेजोगे तो मुझे वड़ी प्रसन्नता होगी।

तुम्हारा प्रिय भ्राता,

गणेशप्रसाद

बधाई-पत्र

[छोटे भाई के जन्म-दिवस (वर्ष-गाँठ) पर]

अमीनाबाद पार्क,
लखनऊ
१६ मार्च, १६४२ ई०

प्रिय हरी,

आशीर्वाद ।

आज तुम्हारे जन्म-दिवस पर तुम्हें बधाई देते हुए मुझे अपार हर्ष है । उपहार-स्वरूप एक फाउण्टेनपैन और गुप्तजी की 'भारत-भारती' भेज रहा हूं ।

ईश्वर करे तुम चिरंजीव हो और जन्म-दिवस के अनेक उत्सवों का आनन्द लूटो, यही मेरी शुभ कामना है । सस्नेह,

तुम्हारे हितेच्छु,
जगदीशचन्द्र

शोक-पत्र

(मित्र को उसकी पत्नी की मृत्यु पर)

गोकुलपुरा,
आगरा ।
१७ मार्च, १६४२ ई०

प्रिय रामगोपालजी,

सप्रेम नमस्ते ।

आज आपकी पत्नी की मृत्यु का दुःखद संदेश सुनकर अपार शोक हुआ । ईश्वर की गति कौन जानता है ! अभी एक सप्ताह पूर्व जब मैं आपके यहाँ आया था तब वे पूर्ण स्वस्थ थीं । उनका सा अच्छा स्वास्थ्य मैंने कम स्त्रियों का देखा है । सचमुच आपके

ऊपर विशाल वज्रपात हुआ है। आपकी इस क्षति की पूर्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। आपकी पत्नी सरलता, शिष्टता, सौजन्य एवं सदाचार की साक्षात् मूर्ति थीं। उनकी विनोद-प्रियता, मधुर भाषण और आदर-सत्कार का स्मरण करके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। अपने पति पर सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाली आदर्श महिलाओं में उनका उच्च स्थान था।

ऐसे रमणी-रत्न के खो जाने पर मैं आपके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस असह्य दुःख सहने की शक्ति और दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

भवदीय शुभाकांक्षी
हरिहरनिवास

(उत्तर)

लक्ष्मी-भवन,
मेरठ
२० मार्च, १६४० ई०

प्रिय हरिहरनिवासजी,

सप्रेम वन्दे।

आपके समवेदना-सूचक पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। इससे मुझे पर्याप्त सान्त्वना मिली है। पत्नी की मृत्यु ने तो मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया है, आप लोगों की सहानुभूति मुझे शक्ति प्रदान कर रही है।

आपका,
रामगोपाल

विवाह का निमन्त्रण-पत्र

॥ ॐ ॥

श्रीगणेशायनमः

सिद्धसदन करिवर-बदन, बुद्धिराशि गणराज।
विघ्न-हरन मंगल करन, सफल करहु मम काज॥

महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे अपार हर्ष है कि परब्रह्म परमात्मा की असीम अनुकम्पा से चिरंजीवी गुलाबराय के सुपुत्र हरदयाल का पाणिग्रहण संस्कार बुलन्दशहर के ईंटारोड़ी मुहल्ला निवासी डाक्टर गौरीशङ्करजी की सुपुत्री शान्तिदेवी के साथ शुभ मिती वैसाख शुक्ला ११ मंगलवार संवत् १९९९ वि० तदनुसार ता० १० मई सन् १९४२ ई० को होना निश्चित हुआ है। अतः विनम्र प्रार्थना है कि आप इस शुभ अवसर पर अपने इष्ट जनो के साथ पधार कर विवाह की शोभा बढ़ाइयेगा और हमे अनुगृहीत कीजिएगा।

इगलास, अलीगढ़

आपके दर्शनाभिलाषी—
कुञ्जबिहारीलाल मगनीराम गुप्त

वैवाहिक कार्य-क्रम

प्रीति-भोज—वैशाख शुक्ल १० सोमवार, ता० ९ मई सायङ्काल ६ बजे।

बरात-प्रस्थान तथा पाणिग्रहण संस्कार—वैशाख शुक्ला ११ मंगलवार, ता० १० मई।

बढ़हार—वैशाख शुक्ल १२ बुधवार, ता० ११ मई।

विदा—वैशाख शुक्ल १३ गुरुवार, ता० १२ मई।

प्रीति-भोज का निमंत्रण-पत्र

महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे अपार हर्ष है कि मेरे सुपुत्र प्रेमनारायण ने इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की है। इसके उपलक्ष में मैंने एक प्रीति-भोज ता० २८ जून सन् १६४२ ई० को सायंकाल ७॥ बजे देने का निश्चय किया है अतः आपसे सविनय निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधारकर मुझे अनुगृहीत कीजियेगा।

शान्तिकुटीर, फीरोजाबाद — आपका दर्शनाभिलाषी, अमृतलाल

पुस्तकालय के संचालक को पत्र

इगलास,
अलीगढ़
१७ मई, सन् १६४२ ई०

श्री संचालकजी,
साहित्य-रत्न-भण्डार,
ठण्डी सड़क, आगरा।

प्रिय महोदय,

मैं इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की मध्यमा परीक्षा मे बैठ रहा हूँ। अतएव मुझे निम्नाङ्कित पुस्तकों की आवश्यकता है। कृपया उचित कमीशन काटकर शीघ्र से शीघ्र इन पुस्तको को वी० पी० पार्सल से भेज दीजिएगा।

(१) व्रजमाधुरीसार (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)
(२) कवितावली (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)
(३) प्रिय-प्रवास (खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर)
(४) उत्तर-रामचरित (रत्नाश्रम, आगरा)

(५) तुलसीदास (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
(६) भूषण-ग्रन्थावली (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)

भवदीय,
गंगाप्रसाद सारस्वत

समाचार-पत्र के सम्पादक को पत्र

श्री सम्पादकजी,
'दैनिक प्रताप,'
कानपुर

महोदय,

कृपया आप मुझे अपने पत्र द्वारा सरकार का ध्यान अपने गाँव बिठूर के किसानों की उस करुणाजनक दुर्दशा की ओर आकर्षित करने की आज्ञा दीजिएगा जो इस वर्ष अनावृष्टि के कारण उनकी हुई है।

बिठूर के किसानो के दुर्भाग्य से इस वर्ष बिठूर में वर्षा नहीं हुई है। आषाढ़ के अन्त मे कुछ पानी बरस गया था। तभी किसानो ने खेत बो दिए थे। उसके पश्चात् आज तक वर्षा नहीं हुई है। परिणाम यह हुआ कि खेत सूख गए है। मवेशी के लिए घास का नाम-निशान नहीं दिखलाई पड़ता। चारों ओर गाँव में 'त्राहि-त्राहि' मची हुई है। किसान भूखे मर रहे हैं। उनके बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसते हैं। खेती की शोचनीय दशा देखकर गाँव के महाजन उन्हें कौड़ी भी कर्ज देना नहीं चाहते। वे विचारे कैसे अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालें? उनकी दुर्दशा देखकर छाती फटती है। इतना होने पर भी जमींदार लोग लगान वसूल करने के लिए उन्हें अनेक प्रकार से तंग कर रहे हैं।

(चिकित्सालय के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन को प्रार्थना-पत्र)

जगनेर,
आगरा
२१ जनवरी, १९४२ ई०

सेवा में—
श्रीमान् चेयरमैन साहब,
आगरा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड,
आगरा

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि हमारे गाँव में एक चिकित्सालय की अत्यन्त आवश्यकता है। आसपास पाँच-पाँच मील तक कोई चिकित्सालय न होने से ग्रामीण जनता को कुत्ते की मौत मरना पड़ता है। हमारे गाँव की जनसंख्या ५-६ हजार है। इतनी जन-संख्या की जीवन-रक्षा के लिए एक केन्द्रीय चिकित्सालय अवश्य होना चाहिए जिससे निकटस्थ-ग्राम-निवासी भी लाभ उठा सकें। ५-६ वर्ष पूर्व यहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अँगरेजी अस्पताल था, परन्तु आर्थिक कठिनाई के कारण बोर्ड ने उसे तोड़ दिया। यह हम लोगो का दुर्भाग्य है कि बोर्ड का यह वज्रपात हमारे ऊपर ही हुआ।

क्या हम आशा करें कि आप पुनः हमारे यहाँ एक चिकित्सालय की स्थापना करके हम लोगों के कष्ट दूर करेंगे। इस अनुग्रह के लिए हम आपके सदैव आभारी रहेंगे।

हम हैं,
श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक,
(१)..................
(२)..................
(३)..................
(४)..................
इत्यादि।

कलक्टर साहब को लगान माफ कराने का प्रार्थना-पत्र

श्रीमान् कलक्टर साहब,
आगरा जिला,
आगरा

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि इस वर्ष अनावृष्टि के कारण हम मलपुरा के दीन किसानों के खेतों मे कुछ भी पैदावार नहीं हुई है। आजकल हम भूखे मर रहे हैं। हमारे बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसते हैं। इधर हमारी मवेशी के लिए चारे का कोई प्रबन्ध नही है। ऐसी दशा में हम आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते है कि खरीफ का लगान हम पर अवश्य माफ कर दिया जाय।

आशा है आप हमारी करुणावस्था पर अवश्य ध्यान देंगे और खरीफ का लगान माफ करके हम दीन-दुखियों की रक्षा करेंगे। इस कृपा के लिए हम आप के आजन्म आभारी रहेंगे।

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक—

मलपुरा,
आगरा
२ नवम्बर, सन् १९४२ ई०

(१) रामप्रसाद, लम्बरदार
(२) कालीचरण, मुखिया
(३) रामनारायण
(४) सुखलाल
इत्यादि

पोस्ट-मास्टर की शिकायत

श्रीमान् सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब,
पोस्ट आफ़िसज,
अलीगढ़

मान्यवर,

हम जगनेर (जिला आगरा) ग्राम-निवासी आपकी सेवा में सविनय निवेदन करते हैं कि स्थानीय ब्रांच पोस्ट-मास्टर साहब का व्यवहार जनता के साथ बहुत बुरा है। वे नियत समय पर डाकखाने का कार्य नहीं करते हैं। जब इच्छा होती है डाकखाना खोलते हैं और जब इच्छा होती है उसे बन्द करते है। सेविङ्ग बैंक मे रुपये जमा करने अथवा उससे रुपये निकालने मे काफी समय लगता है। पत्र और मनीआर्डर समय पर नही मिलते। जिस दिन डाक आती है उससे दूसरे दिन बाँटी जाती है। पोस्ट-मास्टर साहब मनीआर्डर के रुपयो को अपने कामो मे लगा देते हैं। बेचारे गरीब कई दिन डाकखाने का चक्कर काटते है, तब उन्हे कहीं मनीआर्डर के रुपये मिलते हैं। इस प्रकार जनता बड़ी दुःखी है।

हम चाहते थे कि हमे शिकायत न करनी पड़े। इसलिए गाँव के कुछ प्रतिष्ठित महानुभाव पोस्टमास्टर साहब से मिले और उन से डाकखाने का कार्य ठीक ढङ्ग से करने की प्रार्थना की। परन्तु उन्होंने प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अब हम उनके व्यवहार से तङ्ग होकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी आपत्तियाँ शीघ्र से शीघ्र दूर कर दी जायँ।

आशा है आप हमारे पत्र पर ध्यान देंगे और हमारे दुःखों को दूर करके हमें अनुगृहीत करेंगे।

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक—

जगनेर,
आगरा
१ अक्टूबर, सन् १९४० ई०

(१) रामस्वरूप, लम्बरदार
(२) भजनलाल, पंच
(३) लखमीचन्द, जमींदार
इत्यादि।

थानेदार की शिकायत

अजितमल,
इटावा
१८ मार्च, १९४० ई०

श्रीमान् पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब,
इटावा जिला,
इटावा

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि स्थानीय थानेदार साहब का व्यवहार जनता के प्रति अत्यन्त आपत्तिजनक है। वे यहाँ के निवासियों पर अनुचित दबाव डालते रहते हैं। जो उनके दबाव में नहीं आता उसके विरुद्ध झूठी कार्यवाही करते हैं। उनका यह रवैया देखकर सिपाही और चौकीदार भी जनता को बहुत तङ्ग करते हैं। ये लोग दूकानदारों से उधार सौदा ले जाते हैं और उधार के रुपये माँगते समय आँखें दिखाते हैं। आप इन बातों की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही सब-इंस्पेक्टर साहब के दुर्व्यवहार से जनता की रक्षा करने की कृपा कीजिए।

श्रीमान् का आज्ञाकारी सेवक—
चण्डीप्रसाद शर्मा

स्टेशन-मास्टर की शिकायत

श्रीमान डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब,
जी० आई० पी० रेलवे,
झाँसी डिवीजन,
झाँसी

मान्यवर,

सेवा में निवेदन है कि कल मैं ताँतपुर से आगरे आ रहा था। ताँतपुर स्टेशन पर मुझे आगरे तक का टिकट नहीं मिल सका। इसलिए केवल धौलपुर तक का टिकट लेना पड़ा! जब मैं डी० बी० आर० से धौलपुर आया, तब मुझे जी० आई० पी० आर० की पैसेंजर गाड़ी आगरे आने को तैयार मिली। परन्तु मेरे पास आगरे तक का टिकट नहीं था। अतएव मैंने धौलपुर के स्टेशन-मास्टर से प्रार्थना की कि वे मुझे शीघ्र टिकट दे दें, किन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। फलतः मैं उस गाड़ी से न आ सका और दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा में मुझे लगभग दो घंटे का समय नष्ट करना पड़ा। क्या धौलपुर के स्टेशन मास्टर का यह व्यवहार अनुचित नहीं है? जनता के हित में यह आवश्यक है कि या तो ताँतपुर स्टेशन पर ही जी० आई० पी० रेलवे के स्टेशनो के लिए टिकट मिलने का प्रबन्ध किया जाय अथवा धौलपुर पर डी० बी० आर० से मिलान करने वाली गाड़ी के लिए टिकट देने का स्टेशन-मास्टर को आदेश दिया जाय। ऐसा न होने से जनता को बड़ा कष्ट होता है।

आशा है आप शीघ्र उचित व्यवस्था करेंगे।

राजामण्डी,
आगरा
१०-७-४२

निवेदक—
मदनमोहन

(उत्तर)

कार्यालय डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट,
जी० आई० पी० रेलवे,
झाँसी डिवीजन,
झाँसी

श्री मदनमोहन

महाशय,

आपके तारीख १०-७-२६ के पत्र के उत्तर में आपको सूचित किया जाता है कि धौलपुर के स्टेशन-मास्टर को इस सम्बन्ध में आदेश कर दिया गया है। भविष्य में यात्रियों को इस प्रकार की असुविधा नहीं उठानी पड़ेगी। हमें खेद है कि ताँतपुर पर जी० आई० पी० रेलवे के स्टेशनों के लिए टिकट मिलने का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता।

सी० के० ब्राउन,
डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट

प्रमाण-पत्र या प्रशंसा-पत्र

शिवप्रसाद अग्रवाल
एम. ए., एल-एल. बी , हिन्दी साहित्य विद्यालय,
साहित्यरत्न, आगरा
प्रधानाध्यापक । २५ जनवरी, १६३८ ई०

मुझे श्री सीताराम शर्मा की योग्यता एवं चरित्र की उत्तमता प्रमाणित करते हुए अत्यन्त हर्ष है। ये गत वर्ष से हमारे विद्यालय के विद्यार्थी हैं। इस वर्ष इन्होंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की उत्तमा परीक्षा दी है और आशा की जाती है कि ये उस परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करेंगे। इसी विद्यालय से इन्होंने यू० पी० शिक्षा-विभाग की विशेष-योग्यता और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

की मध्यमा दोनों परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं। ये हमारे सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थियों में से एक हैं। ये बड़े मेधावी, अध्यवसायी, उत्साही, जिज्ञासु एवं शिष्ट नवयुवक हैं। इन्हें साहित्य से विशेष प्रेम है और इनका साहित्यक ज्ञान बहुत गहरा है।

शर्माजी का चरित्र आदर्श है। अध्यापक और विद्यार्थी गण समान रूप से इनके व्यवहार की प्रशंसा करते हैं। ये एक विश्वसनीय व्यक्ति हैं और इनकी प्रकृति शान्त, मधुर तथा विनम्र है। मुझे विश्वास है कि ये जिस किसी पद पर रहेंगे उस पर बड़े उत्तरदायित्व के साथ कार्य करेंगे। मेरी कामना है कि इनको जीवन में सफलता और सुख प्राप्त हो।

सूचना-पत्र (विज्ञापन)

सर्व-साधारण को विदित हो कि रविवार १७ दिसम्बर सन् १९३९ को श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा के पदाधिकारियों का चुनाव सभा के भवन मे सायंकाल ३ बजे होगा। चुनाव मे वे ही सज्जन भाग ले सकेंगे जिनका सभा की सदस्यता का वार्षिक चन्दा २ रुपये १५ दिसम्बर तक अग्रिम आ जायगा। सदस्यों को कृपया ठीक समय पर पधारना चाहिए।

मंत्री,

८ दिसम्बर, १९३९ ई० श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा

अपील

इस वर्ष राजपूताने मे भीषण अकाल पड़ा है जिससे वहाँ के मनुष्यों, विशेषकर गायो की बड़ी दुर्दशा है। इन अकालपीड़ित गौओं की सेवा के लिए कलकत्ते में श्री जयदयालजी गोयन्दका के सभापतित्व में एक राजपूताना-अकाल-सेवा-समिति बनी है।

इस समिति की ओर से गौ-रक्षा का कार्य हो रहा है। इस काम को तथा अकालपीड़ित गायों की दशा देखने के लिए मैं स्वयं राजपूताना गया था। वहां की दशा का मैं वर्णन नहीं कर सकता, गौएँ भूखी मर रही हैं। हजारों बड़ी करुणाजनक दशा में पड़ी हुई मौत के मुँह में जा रही हैं। स्थान-स्थान पर गौएँ मरी पड़ी हैं। जहाँ-तहाँ अस्थियो के ढेर लगे है। कौए जीती गायो को बुरी तरह नोंच-नोंचकर खा रहे हैं, परन्तु उनमें इतनी शक्ति नहीं कि वे पूँछ हिलाकर कौओं को उड़ा सके। सैकड़ो गाएँ एक-एक तिनके के लिए बिलबिलाती फिरती हैं। कड़ाके की सर्दी के मारे सैकड़ों ठिठुर-ठिठुर कर मर रही हैं। सारांश यह है कि गौओं पर महान संकट छाया हुआ है। हिन्दू-मात्र का कर्तव्य है कि गौ-माता की रक्षा करे। देश के करोड़ों हिन्दुओं से मेरी अपील है कि वे गौओं के इस महान संकट पर ध्यान दे और मुक्त-हस्त से गौ-रक्षा के पवित्र कार्य में अपने धन का सदुपयोग करें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक,
'कल्याण'
१६ जनवरी, १६३६ ई० गोरखपुर।

शोक-प्रस्ताव

हिन्दी-साहित्य-विद्यालय, आगरा के अध्यापको एवं विद्यार्थियों की यह सभा हिन्दी के उत्कृष्ट कवि, नाटककार, कहानी तथा उपन्यास लेखक बाबू जयशंकर 'प्रसाद' की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह शोक-संतप्त परिवार को यह असह्य दुःख सहने के लिए शक्ति तथा दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

आगरा,
२० नवम्बर, १६३७ ई०

विदाई-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् एफ० जे० फील्डन
प्रिंसिपल, आगरा कालेज,
आगरा

मान्यवर,

आज सायंकाल हम अत्यन्त शोक के साथ आपको विदा देने के लिए इस हॉल में एकत्रित हुए हैं। आपने आगरा कालेज की जो सेवाएँ की हैं और हम विद्यार्थियों के साथ जैसा प्रशंसनीय व्यवहार किया है उसके विवरण के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। हममें से अनेक आपके चरण-कमलों में बैठकर पढ़े हैं और जानते हैं कि आपमें कैसी अद्वितीय विद्वत्ता, योग्यता, विचार-मौलिकता और अध्यापन-कुशलता है। आगरा विश्व-विद्यालय के इस प्रसिद्ध और प्राचीन विद्यामन्दिर में प्रिंसिपल के पद पर कार्य करते हुए आपने सद्बुद्धि, शिष्टता, न्याय, प्रबंध-कुशलता से क्या विद्यार्थी, क्या अध्यापक, क्या नागरिक, सभी के हृदयों पर अधिकार जमा लिया है।

अध्यापक से भी अधिक हम आपका मनुष्य रूप में आदर करते हैं। निस्सन्देह आप ईसाई धर्म के सर्वोत्कृष्ट गुणों की साक्षात् मूर्ति हैं। प्रत्येक मनुष्य जिसे आपके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, आपकी प्रकृति की भूरि-भूरि सराहना करता है। आपका मुसकराता हुआ मुख, मधुरवाणी, स्नेह कोमलता, दयालुता और सहानुभूति आपकी सर्वप्रियता के कारण हैं। आप सदाचार को अत्यन्त महत्त्व देते हैं और आपका सम्पर्क आत्म-संस्कार का अच्छा साधन है। आपकी सी सहिष्णुता अन्यत्र कम देखी गई है। कठिन से कठिन परिस्थिति में

आपने शान्ति के साथ कालेज और छात्रों की प्रतिष्ठा रक्खी है। आज तक कभी आपके मुख पर क्रोध की झलक नहीं देखी गई है। हमारे साथ आपका वैसा ही व्यवहार रहा है जैसा किसी का अपनी सन्तान के प्रति होता है।

आज यह हमारा दुर्भाग्य है कि आप हमको छोड़कर अलीगढ़ विश्वविद्यालय जा रहे है। आपकी मधुर स्मृति सदैव हमारे मस्तिष्क में रहेगी। आप नेत्रों के सामने से भले ही चले जाएँ, परन्तु स्मृति से कभी बाहर नहीं हो सकते। हमें पूर्ण आशा है कि आपकी स्मृति में भी आगरा कालेज और इसके वे विद्यार्थी जिनके साथ आपने अपनी आयु के लगभग १२ वर्ष व्यतीत किये है सर्वदा बने रहेंगे। आपको विदा देते हुए इस समय हमारे हृदय विदीर्ण हो रहे हैं, हमारे नेत्रों में अश्रु-धारा रोकने से नहीं रुकती और हमारे कण्ठ रुद्ध हो रहे हैं।

हम हैं,

आगरा	श्रीमान् के आज्ञाकारी—
२३ दिसम्बर, सन् १९३७ ई०	आगरा कालेज के विद्यार्थी।

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् महामना मदनमोहनजी मालवीय

मान्यवर,

आज सायंकाल हम अत्यन्त हर्ष के साथ आपका अपने नगर में अभिनन्दन करते हैं। आप आर्य-कुल-तिलक, हिन्दू-जाति-पालक, भारतीय मान-मर्यादा के रक्षक, विद्या के दृढ़ स्तम्भ, देश के सच्चे सपूत और हिन्दी तथा हिन्दू-धर्म के जीवनदाता हैं।

काशी विश्वविद्यालय जैसा विशाल विद्यामन्दिर स्थापित करने का श्रेय आप ही को है। आपके सतत उद्योगों से विश्व-विद्यालय ने जो अनुपम उन्नति की है उसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है और आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न होती है। धन्य है आपका अध्यवसाय। आपका विश्वविद्यालय भारतीय नवयुवकों में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के भाव भरने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है, वह आपका अक्षय कीर्ति स्तम्भ है।

आपने हमारी मातृ-भाषा हिन्दी के उत्थान और प्रचार में जो सराहनीय कार्य किया है उसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। सचमुच आपने हिन्दी को जीवनदान दिया है। अदालतों में हिन्दी का जो कुछ थोड़ा बहुत प्रचार देखा जाता है उसका सूत्रपात आपके कर-कमलो से ही हुआ था।

आप हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के प्राण हैं। आपने इनकी अगणित सेवाएँ की हैं, कठिन से कठिन परिस्थित में इनकी प्रतिष्ठा रक्खी है, दोषों से इनका परिष्कार किया है। आप हिन्दू-जाति के उज्ज्वल रत्न हैं। धर्म का जैसा ज्ञान आपको है वैसा भारत में शायद ही किसी व्यक्ति को हो।

इस पराधीन देश की स्वतन्त्रता के लिए आपने बहुत अधिक कार्य किया है। परतन्त्रता की बेड़ियाँ काटने के लिए आपने अनेक प्रयत्न किए हैं। आप सरीखे महानुभावो के परिश्रम का ही प्रसाद है कि हमारे देश में इतनी जागृति हुई है। आपका त्याग, आपका देश-प्रेम, धन्य है।

आप हिन्दी भाषा, हिन्दू-जाति, हिन्दू-धर्म और हिन्दुस्तान के अनन्य प्रेमी हैं। आपके श्रेष्ठ गुणों और सेवाओं को देखकर

हमारे मस्तक स्वतः आपके लिए झुक जाते हैं। इस वृद्धावस्था में भी आप बड़े परिश्रम से देश और समाज के कल्याण में संलग्न हैं। आपकी सौम्य मूर्ति, आपकी सरलता, आपकी शिष्टता, धन्य है। हम आपका हृदय से स्वागत करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरायु बनाए जिससे आप चिरकाल तक हमारे समाज तथा देश का कल्याण करते रहें।

हम हैं,
श्रीमान् के शुभाकांक्षी—
आगरे के हिन्दू।

आगरा
४ जनवरी, १९३५ ई०